4

क्षय

क्षयरोग = क्षय रोग

निः स्रोतस ग्रन्थि रोग

क्षय रोग :- Tuberculosis, Consumption:-

क्षय जीवाणु :-Tubercle Bacillus:-

क्षयजीवाणु मुख्यतया दो प्रकार का है। मनुष्य सुलभ क्षय जीवाणुओं को मानव क्षय जीवाणु (Mycobacterium Tuberculosis Hominis) कहते हैं। जो ९५ प्र०श० में पुफुस रोग का कारण होता है। Robert Koch ने १८८२ में इसका पता ही नहीं लगाया जिसमें यह बढ़ सके उस माध्यम का तथा उसके द्वारा पशुओं में रोग उत्पन्न करके भी दिखाया। पशु सुलभ क्षय जीवाणु को जान्तव क्षय जीवाणु (Mycobacterium Tuberculosis Bovis) कहते हैं। अस्थियों, सन्धियों के क्षय रोगियों में से ३०प्र०श० में तथा ७५ प्र०श० ग्रन्थि क्षय Grandular रोगियों में उनके रोग का यह कारण होता है। इसका पता Thomus Smith ने १८९६ में लगाया। मानव क्षय जीवाणु पतला, ८-५ माईक्रोन लम्बा, शलाकाकृति, अगतिशील, कृमि होता है। जो रोगी की थूक से बनी स्लाइड पर देखने से परस्पर एक दूसरे से कोण बनाते हुये अथवा जहां इनके ढेर होते हैं वहां एक दूसरे के समानान्तर पड़े हुये मिलते हैं। Ziehl-Neelsen के तरीके से रंगे जाते हैं अर्थात् Carbolfuchsin से रंगे जाने पर इनका रंग २० प्रतिशतक सल्फ्यूरिक एसिड (H_2SO_4) से या अलकोहल में ३ प्रतिशतक मात्रा में घुले हाईड्रोक्लोरिक एसिड (H cl) से नहीं उतरता। इसलिये इसे Acid Fast भी कहते हैं। धूल में विद्यमान थूक के बिल्कुल सूख जाने पर भी धूल में जीवाणु महीनों तक जीवित रहता है। इसी प्रकार यह जीवाणु बर्फ के टेम्प्रेचर पर भी जीवित रहता है। परन्तु सूर्य की किरणों या धूप से यह जीवाणु शीघ्र मर जाता है।

यह जीवाणु एक तो वसामय पदार्थ (Lipid) से जो इसमें ५० प्र०श० होता है बना है। इसी पदार्थ से इसका बाह्यावरण बना है। इसी के कारण यह (१) Acid Fast होता है, (२) औषधियों से जल्दी प्रभावित नहीं होता, (३) Phogocytes के अन्दर पड़ा हुआ भी चिरकाल तक हजम नहीं होता, (४) अवयवों के लिये अधिक विदाहक नहीं होता जिससे आसपास के सैलों की प्रतिक्रिया मन्द रूप में ही होती है।

दूसरा यह एक प्रोटीन से बना है जिसे Tuberculin या Tuberculoprotein कहा जाता है। यही इसका विषपदार्थ है। इसी के कारण ग्रस्त अवयव में इसके लिये एक असात्म्यता या Allergy या असहिष्णुता (Sensitivity) उत्पन्न हो जाती है।

तीसरा इसमें एक कार्बोहाईड्रेट या Polysacchari[illegible]e पदार्थ है जिसके कारण इसके शरीर में प्रविष्ट होने पर इसके आसपास Poly-[illegible]rph[illegible] अधिक मात्रा में एकत्रित हो जाते हैं।

Tuberculin :-

मांस रस, पेप्टोन, साल्ट और ग्लिसरीन के माध्यम में बढ़ाये हुये, गाढ़े किये तथा छने हुये (Filtered) मृत क्षय जीवाणुओं के घोल को Koch ने Tuberculin का नाम दिया था। इसमें मृत हुये जीवाणुओं में से उत्पन्न होने वाले Endotoxins होते हैं। Koch का कहना था कि इसमें विद्यमान Proteins ही इसका क्रियाशील पदार्थ हैं। इसलिये १६३४ में मृत हुये क्षय जीवाणुओं में से उत्पन्न होने वाले Tuberculo Protein को विशुद्ध रूप में पृथक किया गया और इसे Purified Protein Derivative of Tubercule Bacillus (P.P.D) का नाम दिया गया। यह चूर्ण रूप में मिलता है तथा कई वर्ष तक रक्खा हुआ भी वीर्य हीन नहीं होता। Koch ने इसे अन्य Vaccines के समान क्षय रोग के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न करने के लिये तैयार किया था। परन्तु परीक्षणों ने सिद्ध किया कि मृत हुये क्षय जीवाणुओं के घोल से क्षय रोग प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न नहीं की जा सकती। हां अति मृदु किये हुये जीवित जीवाणुओं के घोल से यह शक्ति उत्पन्न की जा सकती है। इसलिये फिर जान्तव (Bovine) क्षय जीवाणुओं को अति मृदु करके उनका घोल बनाया गया जिसे B.C.G. कहते हैं उसके द्वारा अब प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न करने का काम लिया जाता है। इस समय Tuberculin से क्षय रोग के पहचानने का काम लिया जाता है। जिस व्यक्ति के शरीर में क्षय जीवाणु ने कभी प्रवेश नहीं किया अर्थात् जिसके शरीर में न प्रसुप्त रूप में ना ही जागृत रूप में यह जीवाणु है, उसकी त्वचा में इसके प्रविष्ट करने पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। परन्तु जिस व्यक्ति के शरीर में इस जीवाणु ने कभी प्रवेश किया हो अर्थात् जिस शरीर में यह प्रसुप्त या जागृत रूप में विद्यमान हो उसकी त्वचा में इसके प्रविष्ट करने पर, प्रवेश स्थान पर दो तीन दिन में एक छोटा कठोर लाल रंग का कोठ Inflammatory Papule निकल आता है अर्थात् एक तो रक्त की प्रतिक्रिया (Vascular Reaction) होती है। दूसरा सैलों की प्रतिक्रिया (Cellular Reaction) होती है। रक्त प्रतिक्रिया या Vascular Reaction अर्थात् लाली (Erythema) २४-४८ घन्टों के अन्दर अन्दर प्रकट हो जाती है और तीसरे दिन के बाद जाती रहती है। परन्तु अत्यधिक सैलों का जो वहां जमाव (Infiltration) होता है अर्थात् वहां पर जो कठोरता उत्पन्न होती वह ४८ घन्टों बाद आरम्भ होती है और उत्पन्न होकर ४ दिन तक रहती है। जब यह कठोर चकत्ता ५ से १० मिलिमिटर व्यास का होता है तो एक Plus १० से २० मिलिमीटर का होता है तो दो Plus और इससे बड़ा हो तो तीन Plus लगाकर उसका उल्लेख किया जाता है।

फुफ्फुस अन्दर या अन्यत्र जहां कोई क्षय रोग का पुराना क्षत (Lesion) प्रसुप्त रूप में हो तो उसके आसपास के सैलों में भी प्रतिक्रिया की युक्त प्रक्रिया (Hyperaemia व Cellular Proliferation की प्रक्रिया

हो जाती है। अर्थात् उसके चारों ओर भी एक घेरा पड़ जाता है (Encapsulation हो जाता है) ऐसा प्रतीत होता है कि जब दाय जीवाणु प्रथम बार शरीर में प्रविष्ट होता है तो शरीर में एक ऐसा पदार्थ जिसे Antibody कह सकते हैं, उसके विपरीत उत्पन्न होता है और अवयवों के सेलों में पड़ा रहता है। अब ये साधारण सेल नहीं रहते अब ये परिवर्तित सेल या दाय ग्रस्त सेल (Tuberculous Cells) कहा सकते हैं। जब Tuberculin दिया जाता है इसके इन सेलों के साथ मिलते ही कोई विषैला पदार्थ उत्पन्न होता है जिसके विपरीत उपरोक्त प्रतिक्रिया होती प्रतीत होती है।

Tuberculin की मात्रा :-

Standard Tuberculin को १० हजार में १ की मात्रा में हलका करके (1-10000 Dilution) उसकी •१ सी०सी० में जितनी इसकी मात्रा होती है, उसे Tuberculin की एक मात्रा (Unit) कहते हैं। इस प्रकार Standard Tuberculin को एक हजार में एक की मात्रा में हलका किया जाय तो उसके •१ सी०सी० में १० Tuberculin Units आ जाते हैं तथा यदि Standard Tuberculin को १०० में १ की मात्रा में हलका किया जाय तो उसके •१ सी०सी० में १०० Tuberculin Units आ जाते हैं। १०० Tuberculin Units १ मिलिग्राम Tuberculin के बराबर होते हैं। इसलिये १० Tuberculin Units •१ मिलिग्राम Tuberculin तथा १ Tuberculin Unit •०१ मिलिग्राम Tuberculin के बराबर होता है।

Tuberculin देने की विधि :-

Intracutaneous Method अथवा The Mantoux Test अथवा Intradermal Test:- अग्रबाहु के बन्द होने वाले पृष्ठ (Flexor Surface) पर एक प्रदेश को ईथर या अलकोहल से कृमि हीन करके १ Tuberculin Unit अर्थात् Tuberculin के १० हजार में १ की मात्रा में बने घोल की •१ सी०सी० मात्रा त्वचा की बहिस्तर में दी जाती है। सिरिंज में इतनी मात्रा ले ली जाती है अथवा त्वचा में इतनी मात्रा दे दी जाती है जिससे ८-१० मिलिमीटर व्यास का उभार हो जाये। दो तीन दिन बाद उपरोक्त विधि से जितना बड़ा चकत्ता बना हो उसका उल्लेख कर लिया जाता है। परन्तु यदि कठोर चकत्ता न उत्पन्न हो अर्थात् परिणाम Negative हो तो १० Tuberculin Units या १०० Tuberculin Units की मात्रा अर्थात् १००० में १ की मात्रा के Tuberculin या १०० में १ की मात्रा के Tuberculin की •१ सी०सी० की मात्रा त्वचा के अन्दर पूर्ववत दे दी जाती है। यदि १०० Tuberculin Units देने पर भी परिणाम नैगेटिव (Negative) हो तो ऐसे व्यक्ति को दाय रोग के लिये नैगेटिव (Negative) घोषित कर दिया जाता है। क्योंकि जिस व्यक्ति के अन्दर दाय जीवाणु होता है वह यदि सर्व प्रथम हलकी मात्रा में पौज़िटिव नहीं

हो तो इस परम मात्रा में Tuberculin देने पर अवश्य ही पोज़िटिव हो जाता है।

Cutaneous Test-Von Pirquet Test अग्रबाहु के अग्र पूर्व पृष्ठ के एक प्रदेश को ईथर या अलकोहल से कृमि हीन करके उसके दो मिलीमीटर प्रदेश पर Tuberculin की १ बुन्द डाल दी जाती है। इस प्रदेश से २ इंच दूरी पर एक बुन्द Normal Saline की भी डाल दी जाती है। फिर एक Rotary Lancet के द्वारा पहले Normal Saline वाले प्रदेश पर फिर Tuberculin वाले प्रदेश में लेखन कर्म (Scarification) करके उस द्रव को वहां १० मिनट रहने दिया जाता है। Normal Saline का बून्द केवल तुलना (Control) के प्रयोजन से डाला जाता है। Inflammatory Papule दो दिन बाद निकले तो इसे पोज़िटिव कहा जाता है। इस टेस्ट में पिछले टेस्ट से यह भेद है कि इसमें Tuberculin को हलका किया ही नहीं गया है, उसके गाढ़े घोल की ही १ बुन्द त्वचा पर रख दी जाती है।

Tuberculin - का प्रयोजन :-

जिन व्यक्तियों में क्षाय जीवाणु कभी भी प्रविष्ट नहीं हुआ होता है एवं जिनमें इस जीवाणु के प्रति असात्म्यता (Allergy) उत्पन्न होने का अवसर ही नहीं हुआ है, उनमें Tuberculin Test Negative होता है अर्थात् जिन व्यक्तियों में यह टेस्ट नेगेटिव हो उनमें क्षाय जीवाणु इस समय नहीं है, तथा पहले भी कभी नहीं रहा है, ऐसा निश्चय किया जाता है। यदि टेस्ट पोज़िटिव हो तो समझना चाहिये कि उसमें या तो क्षाय जीवाणु अब भी विद्यमान है अथवा क्षाय जीवाणु पहले उसके शरीर में कभी प्रविष्ट हो चुका है। क्षाय जीवाणु का प्रवेश तो मनुष्यों की एक बहुत बड़ी संख्या में होता है, यद्यपि व्यक्त रूप में क्षाय रोग उनमें से बहुत स्वल्प व्यक्तियों में ही प्रकट होता है। परीक्षा करने वाले बताते हैं कि क्षाय जीवाणु मनुष्य समाज में इतना अधिक व्याप्त (Ubiquitous) है कि बहुत कम व्यक्ति ही ऐसे होंगे जिनके अन्दर इसने कभी न कभी प्रवेश न किया हो अर्थात् अज्ञात (Subclinical) रूप में प्रवेश न किया हो। कहा जाता है कि ५ वर्ष तक की आयु के बालकों में से चतुर्थांश में Tuberculin Test Positive पाया जाता है। १० वर्ष तक की आयु के बालकों में आधे से भी अधिक में यह टेस्ट पोज़िटिव होता है तथा ४५ वर्ष तक पहुंचते पहुंचते तक तो ६५ प्रतिशतक व्यक्तियों में यह टेस्ट पोज़िटिव हो जाता है। घनी बस्तियों या कारखाने वाली बस्तियों में तो यह संख्या इससे भी अधिक होती है। कथन का अभिप्राय यह है कि क्षाय जीवाणु के संक्रमण से बच सकना असम्भव प्रतीत होता है। पर सौभाग्य की बात है कि यदि क्षाय जीवाणु का संक्रमण भारी मात्रा में और बार बार न हो तो शरीर में यह बढ़ नहीं पाता तथा शारीरिक रक्षक तत्वों के द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। इसलिये जितने व्यक्तियों में इस जीवाणु का संक्रमण हो

है। उनके एक प्रतिशतक से भी कम में क्षय रोग प्रकट हो पाता है। तथापि यह रोग इतना अधिक होता है कि सभी के लिये यह एक महान् चिन्ता का विषय बना हुआ है। सभी विचार शील लोग मनुष्य जाति के इस महानतम शत्रु का सामना करने के उपाय सोच रहे हैं। हमारे देश में होने वाली प्रत्येक १० मृत्युओं के पीछे एक मृत्यु क्षय रोग के कारण होती है। संसार में प्रतिवर्ष ३० से ५० लाख व्यक्ति केवल इसी रोग के द्वारा अकाल में काल कवलित हो रहे हैं। बड़े बड़े शहरों में सहस्त्रों इस रोग के कारण शय्याशायी होकर पड़े हैं, और सहस्त्रों यद्यपि चल फिर रहे हैं, इस रोग के दुःख और चिन्ता से ग्रस्त रहते हैं तथा लाखों व्यक्तिओं में इस रोग या इस रोग के जीवाणु ने अपना अड्डा (Focus) तो बनाया हुआ है पर वहां यह प्रसुप्त रुप में पड़ा हुआ है और न जाने कब किसी स्वल्प कारण से जागृत हो जाय। इसीलिये Tuberculin टेस्ट मनुष्यों की एक भारी संख्या में पाज़िटिव पाया जाता है। बार बार इस जीवाणु का स्वल्प मात्रा में संक्रमण होने से यह टेस्ट पाज़िटिव बना रहता है। प्रतीत होता है कि जब शारीरिक प्रतिरोधक शक्ति अधिक हीन हो जाय और किसी रोगी से जीवाणु का संक्रमण भारी मात्रा में हो या बार बार हो तब इसे शरीर में वृद्धि करने का अवसर मिल जाता है।

बालकों में Tuberculin Test का विशेष महत्व है। क्योंकि यदि ४-५ वर्ष के नीचे की आयु के बालकों में यह टेस्ट पाज़िटिव हो तो बहुत कुछ इस बात की आशंका करनी चाहिये कि उनमें इस जीवाणु ने प्रवेश किया है तथा इसके कारण उनमें यह रोग जागृत (Clinical) या Primary infection - प्राथमिक संक्रमण - रुप में विद्यमान है। जितने ही छोटी आयु के बालक में टेस्ट पाज़िटिव हो उतना ही उसमें रोग की उपस्थिति की आशंका अधिक होनी चाहिये। इसी प्रकार जितनी ही हलकी मात्रा से यह टेस्ट पाज़िटिव हो उतना ही रोग की आशंका अधिक होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त बालकों में इस टेस्ट का और भी महत्व है। उनमें जो नैगेटिव होते हैं उनमें क्योंकि इस रोग के प्रति प्रतिरोधक शक्ति नहीं होती, इसलिये उन्हें यदि क्षय जीवाणु का भारी संक्रमण हो जाय तो इस रोग के होने का भारी भय रहता है। अतः उनमें B.C.G. के रुप में इस जीवाणु का मृदुतर प्रवेश करके उनमें इसके विपरीत प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न कर दी जा सकती है। B.C.G. के द्वारा नैगेटिव बालकों को पौज़िटिव कर दिया जाता है। क्योंकि यदि कोई बालक या युवक Tuberculin के लिये पौज़िटिव हो पर X-Ray की परीक्षा के द्वारा उसके फुफ्फुस में यह रोग जागृत रुप में नहीं हो तो समझना चाहिये कि क्षय जीवाणु के स्वल्प संक्रमण होने पर भी वह बच जायगा।

<u>क्षय प्रतिरोधक शक्ति :-</u>

ऊपर कहा गया है कि शरीर में एक बार क्षय जीवाणु प्रविष्ट हो जाय तो अवयवों में इसके लिये एक प्रकार की असात्म्यता (Allergy)

उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण Tuberculin Test Positive हो जाता है। परन्तु Koch ने यह भी देखा कि यदि किसी प्राणी में पहले पहल क्षय जीवाणु स्वल्प मात्रा में प्रविष्ट किया जाय तो दो सप्ताह तक उस स्थान पर कोई विशेष प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता xxxx पर इस समय के अन्त में वहां एक (Nodule) गांठ सी निकल आती है जिसमें बहुधा व्रण भाव भी हो जाता है। फिर वहां से क्रमश: यह जीवाणु लसीका वाहिनियों (Lymphatics) के द्वारा प्रादेशिक लसीका ग्रन्थियों (Regional Lymph Glands) में संक्रमण कर जाता है जिससे वे सूज जाती हैं और बाद में नरम भी हो जाती हैं अर्थात् उनमें पनीर भाव या मृदुभाव Caseation भी हो जाता है। इसीलिये ग्रन्थियों (Lymph Glands) के शोथ को देखकर जान लिया जाता है कि संक्रमण कहां से हुआ है अर्थात् यदि कंठ प्रणाली और श्वास प्रणालियों के समीपवर्ती ग्रन्थियों (Tracheobronchial Glands) में शोथ हो और खांसी हो तो फुफ्फुस के किसी प्रदेश में से क्षय जीवाणु आया है, ऐसा समझना चाहिये। यदि कोष्ठ गत लसीका ग्रन्थियों (Mesenteric Glands) में शोथ हो तो आंतों से क्षय जीवाणु के संक्रमण होने का सन्देह करना चाहिये। ग्रीवा में लसीका ग्रन्थियां सूजी हों तो मुख (Tonsil) से संक्रमण होने का सन्देह करना चाहिये। फिर इन ग्रन्थियों में से क्षय जीवाणु क्रमश: शरीर के सब विभिन्न अंगों में प्रसरण कर जाता है। इस प्रकार ऐसा पता लगता है कि उस प्राणी में इस जीवाणु के प्रतिरोधकरसकने की शक्ति नहीं है। दूसरे शब्दों में २ सप्ताह बाद इस व्यक्ति में इस जीवाणु के लिये एक असात्म्यता Allergy उत्पन्न हो गई लगती है। अबयदि इसी प्राणी में प्रथम जीवाणु संक्रमण के २०-३० दिन बाद दोबारा क्षय जीवाणु प्रविष्ट किया जाय तो इसके एक दो दिन के अन्दर अन्दर ही उस प्रदेश का $\frac{1}{2}$,१ सैन्टीमीटर का अवयव कठोर हो जाता है। उसमें व्रण भाव हो जाय तो वह तुरन्त भर भी जाता है। वहां से जीवाणु प्रदेशिक लसीका ग्रन्थियों में जाता है पर वहां भी वह रोहण नहीं कर पाता जिससे उनमें कोई शोथ की प्रक्रिया नहीं होती और वहां से आगे यह शरीर में भी प्रसरण नहीं करता। इससे पता लगता है कि शरीर में प्रथम संक्रमण के बाद कोई ऐसी प्रतिरोधक शक्ति (Resistance) आ गई है कि जीवाणु प्रवेश स्थान में ही रोग दिये गये हैं जो कुछ एक लसीका ग्रन्थियों तक पहुंचे भी हैं, वे वहां वृद्धि नहीं कर पाये। जीवाणुओं के प्रवेश स्थान पर भी Polymorphonuclear Cells तथा Mononuclear Cells का तथा रक्त के द्रव भाग का संचय विशेष होता है। इस प्रतिक्रिया को Kochs Phenomenon कहते हैं। अत: क्षय जीवाणु का शरीर में एक बार मृदु सा संक्रमण हो जाय तो शरीर में उसके विपरीत एक प्रतिरोधक शक्ति (Immunity) उत्पन्न हो जाती प्रतीत होती है। यद्यपि व्रणभाव इस जीवाणु के प्रति Allergy उत्पन्न होने का सूचक होता है। शहरों तथा घनी बस्तियों में रहने वाले व्यक्तियों में जिनमें पहले

कभी न कभी क्षाय जीवाणु का मृदु संक्रमण हो चुका होता है बाद में इसका बार बार संक्रमण होने पर भी क्षाय रोग नहीं होता । क्योंकि उनमें पर्याप्त प्रतिरोधक शक्ति होती है । प्रतीत होता है कि यदि इसके संक्रमण से प्रतिरोधक शक्ति हो उत्पन्न हो इसके प्रति असात्म्यता Allergy उत्पन्न न हो तो इस जीवाणु के प्रवेश होने पर भी रोग नहीं होता । इस प्रकार बहुत से व्यक्तियों में तो इस रोग का संक्रमण होने पर उनमें इसके प्रति प्रतिरोधक शक्ति (Immunity) उत्पन्न हो जाती है इसके विपरीत कुछ एक व्यक्तियों में इसके संक्रमण होने पर इसके प्रति असात्म्यता Allergy उत्पन्न हो जाती है । सम्भवत: उनमें वंश परम्परा गत किसी असहनशीलता के कारण यह Allergy उत्पन्न होती है या जिनमें पहले इसके लिये प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न नहीं हो पाई उनमें इस रोग का अति संक्रमण होने पर Allergy ही उत्पन्न हो जाती है जिससे वे रोग ग्रस्त हो जाते हैं । देखा जाता है कि पहाड़ों या दूरवर्ति जंगलों या छोटे छोटे ग्रामों में रहने वाले व्यक्ति जब सहसा एक बड़े घने बसे शहर में आ बसते हैं तो उनको कई बार यह रोग जल्दी पकड़ लेता है क्योंकि उन्हें अपने अन्दर पहले प्रतिरोधक शक्ति के उत्पन्न करा लेने का अवसर कभी नहीं मिला होता है । उनमें इसके लिये Allergy ही उत्पन्न होती है प्रतिरोधक शक्ति नहीं होती ।

बाल सुलभ क्षाय रोग :- Primary Tuberculous Infection :-

यद्यपि नये उत्पन्न शिशु में क्षाय जीवाणु कभी नहीं पाया जाता तथा फिर माता का दूध पीते समय भी सम्भवत: माता से प्रतिरोधक शक्ति मिलती रहने के कारण इसमें यह रोहण नहीं कर पाता परन्तु दूध छोड़ने के बाद की आयु में अर्थात् दो तीन वर्ष की आयु तथा इससे बड़ी आयु के बालकों में भी और मध्यमायु तक पहुंचते पहुंचते तो ९०-९५ प्रतिशतक व्यक्तियों के फुफ्फुस में क्षाय रोग से उत्पन्न हुआ चिन्ह पाया जाता है । यद्यपि इन्हें क्षाय रोग नहीं होता परन्तु ऐसा लगता है कि अति मन्द रूप से इस जीवाणु का संक्रमण बाल्यकाल में ८० प्रतिशतक व्यक्तियों को हो जाता है जिसे इस रोग का प्रारम्भिक संक्रमण या Minimal Infection या Primary Infection कहते हैं ।

श्वास के द्वारा क्षाय जीवाणु किसी सूक्ष्म श्वासनाली (Bronchiole) में पहुंच जाता है । वहां श्लेष्म कला में प्रविष्ट होकर रोहण करता है । क्योंकि बालक में इसके लिये प्रतिरोधक शक्ति सर्वथा नहीं होती है । वहां क्षायांकुर (Tubercleus) बनते तो हैं परन्तु यह प्रतिक्रिया अपर्याप्त होती है। जिससे वहां का प्रदेश शीघ्र मृदु हो जाता है (Caseation हो जाता है) प्राय: दक्षिण फुफ्फुस के ऊपर के खण्डों (Lobes) में विशेषत: मध्यम खण्ड में Pleura के साथ लगते प्रदेश में पिन के नक्के से लेकर एक बड़े आकार (½,१ सैन्टीमीटर) तक का यह व्रण होता है । इस लघु क्षाय-जनित-फुफ्फुस शोथ (Tuberculous Broncho Pneumonia) को प्रारम्भिक क्षत Primary Focus कहते

हैं। यह बहुधा अति स्वल्प जीवाणु संक्रमण से होता है। इसलिये प्राय: स्नायु तन्तु की वृद्धि (Fibrosis और अधिकत: Calcification) होकर इस व्रण का रोहण हो जाया करता है। केवल X-Ray के द्वारा एक गोलाकृति छोटी सी Opacity के रूप में इसका पता लगता है।

इस प्रारम्भिक क्षत (Primary Focus) के उत्पन्न होने के दो मास के समय के बाद इस स्थान की श्वास नाली (Bronchus) से सम्बन्धित पुफुस मध्य लसीका ग्रन्थियों (Mediastinal Glands) में लसीका वाहिनियों के द्वारा जीवाणु संक्रमण कर जाता है। जिससे वहां पर एक या दो ग्रन्थिओं में भी मृदुता (Caseation) की प्रक्रिया हो जाती है और फिर प्राय: कुछ महीनों में रोहण (Fibrosis और अधिकत: Calcification) की प्रक्रिया होकर ये ग्रन्थियां भी ठीक हो जाती हैं। एक प्रारम्भिक क्षत (Primary Focus) से अनेक लसीका ग्रन्थियां Tracheobronchial Glands जो कण्ठ नाली (Trachea) के विभक्त होने के स्थान पर रहती हैं या Paratracheal ग्रन्थियां सूज सकती हैं। बालकों में इन लसीका ग्रन्थियों (Mediastinal Glands) में क्षय जनित शोथ विशेषता से होता है। व्यवहार में क्षय रोग के प्राथमिक अड्डे (Primary Focus) और लसीका ग्रन्थियों (Mediastinal Glands) के शोथ दोनों को मिलाकर Primary Complex के नाम से बोलते हैं तथा केवल प्रारम्भिक क्षत को Pulmonary Component of the Primary Complex कहते तथा केवल लसीकाग्रंथियों -Glands- के शोथ को Glandular component of the Primary Complex कहते हैं। समीपस्थ कई ग्रन्थियों के सूज जाने से यह Component बालकों में बहुत बड़ा भी हो सकता है। X-Ray द्वारा लिये चित्र में इन शोथ युक्त ग्रन्थियों की छाया Hilum में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इनके अन्दर क्षय जीवाणु जीवित नहीं रहते।

बालकों में पुफुस में पाये जाने वाले प्रारम्भिक क्षत (Primary Focus) को पहले पहल Ghon ने १६१२ में देखा था। इसलिये इसे Ghon का क्षत (Ghon Lesion) भी कहते हैं। इसके उत्पन्न होने के दो मास के लगभग समय के बाद जब पुफुस मूल में विद्यमान लसीका ग्रन्थियों में भी यह रोग हो जाता है तब बालक Tuberculin के लिये पाज़िटिव हो जाता है तथा इसके अतिरिक्त कभी कभी उसमें Phlyctanular Conjunctivitis होने का लक्षण भी पाया जाता है। इसके अतिरिक्त कभी कभी बालक में Erythema Nodosum या Nodal Fever भी होता है। यह लक्षण ५-१० वर्ष की आयु के निर्बल बालकों या नवयुवकों में देखा जाता है। इसमें अधो जंघा की त्वचा पर आधे इंच से दो ढाई इंच तक के व्यास के उठे हुऐ रक्त वर्ण कठोर से उभार (Nodules) निकल आते हैं। जिनका दीर्घ व्यास ऊपर नीचे की दिशा में होता है। ये एक सप्ताह तक लुप्त हो जाते हैं। त्वचा पर इनका भुरा सा रंग रह जाता है। एक समूह के बाद दूसरा समूह भी इन

चकत्तों का निकल सकता है । ये चकत्ते बहुधा Tuberculo Protein के प्रति असात्म्यता (Allergy) के सूचक होते हैं । कभी कभी ये पूय संक्रमण या Streptococcal Infection के द्योतक भी होते हैं । इसलिये Phlyctanular Conjunctivitis अथवा Erythema Nodosum को देखकर बालक में क्षय रोग के Primary Infection का सन्देह करना चाहिये । Mediastinal Glands में क्षय जनित शोथ बहुधा स्वयमेव रोहण प्रक्रिया (Fibrosis) के द्वारा ठीक हो जाता है । परन्तु यदि इनमें शोथ (Mediastinal Adenitis) का रोग बढ़ जाय जैसे कि कई बार बालकों में होता है तो किसी एक ग्रन्थि समूह के फूल जाने से उसके साथ सम्बन्धित श्वास नाली (Bronchus) दब जाती है जिससे उसके साथ सम्बन्धित फुफ्फुस का भाग वायु रहित हो जाता या बन्द हो जाता है (Atelectasis) अर्थात् वह श्वास प्रश्वास में भाग नहीं लेता । उसमें या तो फिर स्नायुभाव (Fibrosis) हो जाता है वा उसमें श्वास प्रणाली शैथिल्य (Bronchiectasis) का विकार हो जाता है । ऊपर अवरोध अपूर्ण होने से नीचे के फुफ्फुस में Emphysema भी हो सकता है ।

बालकों में आंत में से क्षय जीवाणु शरीर में प्रवेश कर सकता है । आंत में किसी लसीका मय प्रदेश (Lymphoid Tissue) में उत्पन्न क्षय व्रण तो स्नायुभाव (Fibrosis) से ठीक हो जाता है पर आंत के उस भाग से सम्बन्धित ग्रन्थियों (Mesenteric Glands) में क्षय जीवाणु के संक्रमण के कारण जो कठोर शोथ होता है अर्थात् जो Glandular Component of the Primary Complex होता है वह बड़ा भी हो सकता है । उसे स्पर्श द्वारा अनुभव किया जा सकता है ।

बाल सुलभ क्षय रोग या Primary Tuberculous Infection के लक्षण :

बहुधा तो इस प्रारम्भिक दात के कारण इतना मन्द सा रोग या ज्वर होता है कि वह बालक के लिये विशेष कष्टदायक नहीं होता परन्तु कभी कभी तीन चार वर्ष के ऐसे बालक का इतिवृत्त यह होता है कि कुछ काल से उसका भार घटता जाता है । वह उदासीन सा रहता है । उसकी भूख कम होती जाती है, तथा उसे ९९ या १०० डिग्री का मन्द ज्वर हो जाता है । उसे रात्रि स्वेद भी होता है । परन्तु उसका प्रधान लक्षण खांसी का होता है । किसी Mediastinal Gland के फूल जाने से इतनी छोटी आयु के बालक में एक बड़ी श्वास नाली (Bronchus) के दब जाने से घोष या शब्द के साथ खांसी होती है तथा अन्त: श्वास के साथ सीटी की सी आवाज (Stridor) होती है । एक दो वर्ष की आयु के बालक में अन्त: श्वास के साथ सीटी की आवाज कुछ काल जारी रहे तो Mediastinal Glands में क्षय जनित शोथ का सन्देह करना चाहिये । इन ग्रन्थियों के सूजकर फूल जाने से तथा इनके द्वारा किसी श्वास नाली के दब जाने से फुफ्फुस का एक भाग बन्द (Collapsed) हो जाता है । इसके कारण उरोस्थि के Manubrium पर तथा पीछे Scapulae

के बीच के प्रदेश पर टकोर की आवाज मन्द हुई २ प्रतीत होती है । श्रवण यन्त्र द्वारा पीठ पर सुनने से श्वास प्रश्वास की आवाज दूसर Thoracic Spine तक ही Tracheal या Broncheal किस्म की होती है । पर यदि कोई Mediastinal Gland फुला हुआ हो तो चौथे Thoracic Spine तक भी वह इसी प्रकार सुनाई पड़ती है । यदि एक तरफ Clavicle के नीचे या पीछे Spine और Scapula के बीच में टकोर की आवाज मन्द हो तो वह भी बालक में पुफुस मध्य क्षाय रोग या Intrathoracic Tuberculosis का सूचक होती है। एक बाजू से X-Ray परीक्षा करने पर Trachea के विभक्त होने के स्थान पर Posterior Mediastinum में एक बड़ी बदली (Opacity) दिखाई पड़ती है । इनके पेट के द्रव - Gastric lavage - या कण्ठ द्रव - Laryngeal swab - से T.B. culture परीक्षा भी होनी चाहिये। E.S.R. भी बढ़ा हुआ भी मिलता है।

बालक में इसी प्रकार यदि Primary Infection आंत से हुआ हो तो कोई कोष्ठ ग्रन्थि (Mesenteric Gland) क्षाय रोग के कारण कठोर हुई अनुभव होती है जिसके कारण बालक का भार नहीं बढ़ता, कभी कभी निष्कारण अतिसार हो जाते हैं तथा पेट में दर्द भी रहती है ।

कभी कभी Mediastinal Adenitis का रोग बढ़ता जाता है अर्थात् एक ग्रन्थि में पूय भाव हो जाता है । अब यदि यह ग्रन्थि एक श्वास नाली (Bronchus) में खुल जाती है तो पुफुस के एक भाग में क्षाय जीवाणुओं के प्रसरण कर जाने से Tuberculous Broncho Pneumonia का रोग हो जाताहै जो प्राय: घातक होता है । यदि पूय युक्त ग्रन्थि, समीप की रक्तवाहिनी में फटती है तो क्षाय जीवाणु मस्तिष्क, प्लीहा, वृक्क, अस्थि, सन्धि आदि नाना अंगों में प्रसरण कर जाता है । सर्वत्र छोटे छोटे क्षायांकुर (Tubercles) उत्पन्न हो जाते हैं । तो भी बहुधा यह रोग या तो पुफुस में या Meninges में या पेट (Peritoneum) में कहीं पर प्रकट हो सकता है । इसे व्यापक क्षाय रोग (Generalized Miliary Tuberculosis) कहते हैं । यह रोग भी प्राय: घातक होता है । Mesenteric Glands में से भी क्षाय जीवाणु रक्त द्वारा संक्रमण करके व्यापक क्षाय रोग Miliary Tuberculosis का कारण हो जाता है ।

इस प्रकार ३-४ वर्ष की आयु तक होने वाला बाल सुलभ क्षाय रोग (Primary Infection) या तो शीघ्र ही ठीक हो जाता है या रोमान्तिका, संक्रामक कास, श्लेष्म ज्वर आदि के द्वारा बढ़कर बालक के लिये मारक हो जाता है । क्योंकि इससे व्यापक क्षाय रोग (Miliary T.B.) या मस्तिष्क क्षाय (Meningitis) हो सकते हैं । इसलिये इस आयु के बालकों में क्षाय रोग जीर्ण (Chronic) रूप में नहीं होता । थोड़ा काल रहकर या तो ठीक हो जाता है या बढ़कर घातक हो जाता है । ३-४ वर्ष से ऊपर की आयु के बालकों में जब क्षाय रोग के लिये कुछ प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाती है तब क्षाय रोग केवल Lymph-

Gland में या अस्थि में या सन्धि में या त्वचा में किसी एक प्रदेश में सीमित रह जाता है, व्यापक रुप में नहीं होता, तथा इस नवयुवावस्था में क्षय रोग वैसा शीघ्रकारी नहीं होता जैसा कि वह प्रथम ३-४ वर्षों में होता है। बाल सुलभ तीव्र क्षय रोग का संक्षिप्त वर्णन आगे किया जायगा।

क्षय रोग के कारण :-

ऊपर कहा ही गया है कि क्षय जीवाणु हमारी घनी बस्तियों में इतना अधिक व्यापक है कि इसके संक्रमण से बच सकना कठिन है। प्रत्युत इसका अति स्वल्प मात्रा में संक्रमण (Minimal Infection) होने से संक्रान्त व्यक्तियों में न्यूनाधिक प्रतिरोधक शक्ति ही उत्पन्न होती है। जिसके बल पर फिर बड़ी मात्रा में इसका संक्रमण होने पर भी व्यक्ति इस रोग से बचा रहता है। तथापि जो यह रोग हो जाता है उसका प्रधान कारण मनुष्य की सामान्य रोग क्षम शक्ति की न्यूनता है। उदाहरणत: घृत, दुग्ध, फल आदि द्वारा प्रोटीन्स Vitamin "A" तथा "C" और केल्सियम बहुत कम मात्रा में मिलें जैसे कि अन्न संकट काल में बहुधा होता है तब यह रोग अधिक होता है। इसी प्रकार चिन्ता, निराशा, दु:ख, क्लेश, तथा प्रवल मानस आघातों के कारण भी जब शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है इस रोग के होने का भय रहता है। जब बाल्यावस्था में शुद्ध वायु, सूर्य का प्रकाश, उचित मात्रा में न मिल सकें जैसे कि बड़े नगरों की अन्धेरी गलियों में रहने वाले निर्धन लोगों के परिवारों में होता है तो उनमें भी इस जीवाणु के विपरीत रोधक शक्ति कम होती है। छोटे बालकों में रोमान्तिका (Measles) तथा संक्रामक कास (Whooping Cough) के कारण Mediastinal Glands में शोथ हो जाता है। यदि उनमें पहले ही Tuberculous Adenitis हो तो वह इन रोगों के कारण से पुन: जागृत हो उठता है। बड़े व्यक्तियों में मधुमेह हो तो उसके कारण भी क्षय जीवाणु की प्रतिरोधक शक्ति विशेष घट जाती है। इसलिये मधुमेह का प्रतिकार न करने पर मधुमेही में यह रोग सुगमता से संक्रमण कर जाता है। छाती पर प्रवल आघात लगने के बाद भी कई बार यह जीवाणु सम्भवत: Primary Infection में पुन: जागृत हो उठता है। पत्थर का काम करने वालों में पत्थर की धूल (Cilica) के अति मात्रा में श्वास मार्ग में जाने (Silicosis) से भी फुफ्फुस में कोई क्षति पहुंचती है जिससे ऐसे व्यक्तियों में यह रोग अधिक होता है। अन्त में यह भी प्रतीत होता है कि कुछ एक परिवारों में स्वभावत: यह रोग अधिक होता है, उनमें इस रोग की प्रवृत्ति जन्म से आती है, इन परिवारों को क्षय प्रकृति के परिवार कह सकते हैं। निर्बल शरीर की स्त्री में वारम्बार या शीघ्र शीघ्र गर्भ स्थिति एवं प्रसव होने के कारण भी क्षय जीवाणु का संक्रमण सुगमता से हो जाता है। Schizophrenia नामक मानस रोग से-कि जिसमें व्यक्ति बाहर के वास्तविक जगत से हटकर अपने काल्पनिक जगत में रहता है तथा जो १५-३० वर्ष की आयु में होता है-ग्रस्त व्यक्तियों में भी यह रोग अधिक होता है। परन्तु इस

१९५० तक हमारे देश का सबसे प्रमुख घातक रोग मलेरिया था दूसरा नम्बर क्षयरोग का था परन्तु अब घातक रोगों में प्रथम नम्बर क्षयरोग का है। देश की आबादी ५० करोड़ की कल्पना की जाए तो उनमें से २० करोड़ में Mantoux test पाजिटिव पाया जाता है ५० लाख के फेफड़ों में x Ray के द्वारा यह रोग पाजिटिव पाया जाता है। २० लाख की थूक में इस रोग के जीवाणु पाये जाते हैं। तथा ५-१० लाख के लगभग लोगों की मृत्यु हर साल इस रोग से होती है।

रोग का सबसे प्रधान कारण घर में या कारखाने आदि में काम करने के स्थान पर चिरकाल तक किसी खुले क्षाय रोगी के सम्पर्क में निवास करना है। कहा जाता है कि एक क्षाय रोगी के थूक के द्वारा एक दिन में १ हजार मिलियन क्षाय जीवाणु पुफ्फुस में से बाहर आते हैं। ऐसे खुले क्षाय रोगी के सम्पर्क में यदि कोई Tuberculin Negative बालक जिसमें इस रोग के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न नहीं हो पाई है तथा जिसमें किसी प्रकार की शारीरिक निर्बलता भी हो तो उसमें इस रोग के संक्रमण हो जाने का भय रहता है। कारखाने आदि में चलने फिरने वाले खुले क्षाय रोगियों के सम्पर्क में आते रहने से वहां यह रोग अधिक होता है।

बाल्यावस्था में क्षाय जीवाणु का संक्रमण बहुत होता है पर यदि वह अधिक मात्रा में न हो तो उससे प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न होकर फिर १५, १६ वर्ष की आयु तक इस जीवाणु का संक्रमण प्राय: करके नहीं होता। उसके बाद लगभग २५ वर्ष की आयु तक जब फिर सम्भवत: प्राप्त की प्रतिरोधक शक्ति घट जाती है तो Primary Complex के Glandular Component से अर्थात् पुफ्फुस मूल में विद्यमान किसी रुग्ण ग्रन्थि से रक्त द्वारा चिरकाल से प्रसुप्त रूप में विद्यमान इस जीवाणु का संक्रमण हो जाता है अथवा बाहर से किसी रोगी में से अति मात्रा में जीवाणु के संक्रमण करने (Exogenous Reinfection) से यह रोग हो जाता है।

विकृति :-

जीवाणु संक्रमण :-

श्वास वायु के द्वारा यह जीवाणु पहले श्वास नाली (Bronchus) फिर श्वास प्रणालिका (Bronchiole) के सिरे तक पहुंच जाता है परन्तु इन सूक्ष्म प्रणालिकाओं के सिरे इतने संकुचित होते हैं कि वहां १० माईक्रोन का कण ही ठहर सकता है। इतने कण में दो क्षाय जीवाणु ही रह सकते हैं। अथवा सम्भव है कि ऊर्ध्व श्वास मार्ग के अन्तस्तर (Epithelium) में प्रवेश करके क्षाय जीवाणु, लसीका वाहिनियों (Lymphatics) के द्वारा पुफ्फुस मध्य ग्रन्थियों या Mediastinal Glands में जाता है। वहांसे फिर यह लसीका वाहिनियों (Lymphatics) के द्वारा पुफ्फुस के Interstitial Tissue में प्रसरण करता है, अथवा हो सकता है धूल आदि के द्वारा यह Tonsils में प्रवेश कर जाता है वहां से यह Cervical Glands में और वहां से फिर Mediastinal Glands में पाया जाता है। इस प्रकार यह जीवाणु विशेषत: Lymphoid Tissue में रहता है और यदि पुफ्फुस आन्त्र आदि के सूक्ष्म लसीका स्थान (Lymphoid Tissues) इसे नष्ट न कर सकें तो लसीका ग्रन्थियां (Lymph Glands) इसे नष्ट कर देती हैं। वहां भी यह नष्ट न हो तो शिराओं (Veins) द्वारा यह शरीर में प्रसरण करता है और दूर दूर के अंगों जैसे अस्थियों, सन्धियों आदि में प्रकट हो सकता है।

क्षायांकुर :- Tubercle :-

अबजिस व्यक्ति में इस जीवाणु के लिये पूर्ण प्रतिरोधक

शक्ति नहीं है उसके फुफ्फुस, कोष्ठ आदि किसी अंग के Interstitial Tissue में विद्यमान लसीका प्रणालियों (Lymph Space) में जब यह पहुंचता है तो जैसे फिरंग जीवाणु अथवा कुष्ठ जीवाणु के विपरीत स्थानिक प्रतिक्रिया होकर वहां Granuloma बनता है वैसे ही इस क्षय जीवाणु के विपरीत स्थानिक प्रतिक्रिया होकर जो अर्ध पारदर्शक, श्वेत वर्ण, बाजरे जितना, दाना बनता है उसे श्वेत क्षयांकुर (Grey Miliary Tubercle) कहते हैं। यह बाजरे जितना या पिन के नक्के जितना दाना अनेक Giant Cell Systems के कि जिनका वर्णन आगे किया जाता है मिलने से बना होता है। कुछ काल बाद जब इस दाने का केन्द्र भाग नरम (Caseated) हो जाता है तब इसे पीत क्षयांकुर या (Yellow Tubercle) कहते हैं। इस क्षयांकुर के अन्दर की सूक्ष्म रक्तवाहिनी की आभ्यन्तर श्लेष्म कला (Vascular Endothelial Layer) में अति वृद्धि (Hyperplasia) होकर रक्तवाहिनी का स्रोत बन्द हो जाया करता है इसलिये क्षयांकुर में रक्त नहीं होता।

सेलों की प्रतिक्रिया तथा क्षयांकुर का बनना, Cellular Reaction तथा Tubercle Formation :-

जब प्रथम बार क्षय जीवाणु अवयव (Lymph Space) या किसी सिरा की अन्तस्तर (Endothelium) में प्रवेश करता है तब भी Polymorphonuclear Leucocytes वहां एकत्रित हो जाते हैं और उसे अपने अन्दर घेर कर उसके प्रसार को रोक देते हैं। परन्तु उनकी यह प्रतिक्रिया निर्बल रूप में होती है, + जीवाणु नष्ट नहीं होता। जिससे Primary Infection में वह स्थान जीवाणु के दुष्प्रभाव से शीघ्र नरम पड़ जाता है। परन्तु जब यही जीवाणु दुबारा संक्रमण करता है (Reinfection होता है) तब Polymorphs की प्रतिक्रिया प्रबल रूप में होती है, । जिससे संक्रमण रुक जाता है। दोनों अवस्थाओं में ही इनके वहां जमा हो जाने के २४ घन्टे के अन्दर अन्दर इनके स्थान पर Mononuclear Cells जिन्हें Monocytes, Macrophages या Large Lymphocytes कहते हैं तथा जिनकी उत्पत्ति लसीका वाहिनियों, रक्तवाहिनियों के अन्तःस्तर (Endothelial,Layer) या Reticuloendothelial Cells में से होती है वहां एकत्रित होने लगते हैं। इनका अति मात्रा में एकत्रित होना इस रोग की एक विशेषता है। परीक्षक लोग बताते हैं कि क्षय जीवाणु के इंजेक्शन देने के एक मिनट के अन्दर अन्दर ये सेल वहां पर भारी मात्रा में जमा होने लगते हैं और पांच मिनट के अन्दर अन्दर इनके जमा हो जाने के कारण वहां एक Tubercle भी बन जाता है। जीवाणु के विपरीत होने वाली उनकी यह प्रतिक्रिया जीवाणु पर चढ़े हुए वसामय खोल (Fatty Envelop) के विपरीत होती है। Reticulo Endothelial System के ये सेल प्रबल जीवाणु भक्षी (Phagocytic, Phagein = खा लेना) होते हैं। इसीलिये ये वहां पर आये क्षय जीवाणुओं को और उन Polymorphs को कि जिनमें जीवाणु

पकड़े हुऐ पड़े होते हैं खा लेते हैं । इनके द्वारा जीवाणुओं के खण्डित (Break Down) होने से उनमें से जो वसामय पदार्थ (Lipid) निकलता है वह इन Monocytes के Cytoplasm में बिखर जाता है । इसका परिणाम यह होता है कि ये Monocytes लसिका वाहिनियों की अन्दर की झिल्ली की सेलों की तरह के (Endothelial Cells की तरह) बड़े बड़े प्रोटोप्लाज़्म वाले दीखने लगते हैं जिससे इन्हें हम Epithelioid Cells कहते हैं । इन सेलों का बन जाना इस रोग का विशेष लक्षण है । देखने में यह Epithelioid Cell फीके रंग का बड़े आकार का और एक बड़े न्युक्लियस वाला सेल होता है । Epithelial सेलों के Cytoplasm, जैसे Reticuli या सूत्रों द्वारा जुड़े होते हैं वैसे ही ये Epithelioid Cells भी Reticuli या सूत्रों द्वारा परस्पर जुड़े होते हैं । जब रोगी में प्रतिरोधक प्रक्रिया विशेष होती है तब ये सेल भी प्रभूत मात्रा में उपस्थित होते हैं तथा इनके आ जाने के बाद इनके जीवाणु भक्षी या Phagocytic हो जाने के कारण क्षय जीवाणु इतने नष्ट हो जाते हैं कि संक्रान्त स्थान पर उनका देख सकना कठिन हो जाता है । कुछ एक Epithelioid Cells के मिलकर एक हो जाने से कुछ बड़े बड़े सेल भी बन जाते हैं जो इस स्थान पर दिखाई पड़ते हैं, इन्हें Giant Cells कहते हैं जिन सेलों के मिलने से ये सेल बनते हैं उनके Nuclei भी इसके किनारे किनारे पर पड़े हुऐ देखने में आते हैं । ये बड़े सेल तब बनते हैं जब इस प्रदेश में कुछ अवयव-मृत (Necrosed) हो जाता है । ये बड़े बड़े सेल उस मृत अवयव को तथा जीवाणुओं को पकड़ कर हजम कर लेते या वहां से हटा लेते हैं । इसलिये इन सेलों का उत्पन्न हो जाना रोगी की प्रतिरोधक शक्ति का द्योतक होता है । Miliary Tuberculosis या बाल सुलभ क्षय रोग में जब क्षय जीवाणु के विपरीत बालक की प्रतिरोधक शक्ति कम होती है तब ये Giant Cells नहीं मिलते ।

क्षय जीवाणु के संक्रमण के एक सप्ताह बाद रक्तवाहिनी के आसपास के (Perivascular) Lymph Space से Lymphocytes वहां आने लगते और उस स्थान के चारों ओर घेरा डाल देते हैं । देखने में ये छोटे छोटे सेल होते हैं पर काले रंग के बड़े बड़े Nuclei के कारण ये काले काले दीखते हैं । रक्त के Lymphocytes की तरह के ही होते हैं । इन सेलों में से जो Gamma Globulins उस स्थान पर मुक्त होते हैं उन्हें प्रतिरोधक पिण्ड (Immune-Bodies) माना जाता है । Lymphocytes के साथ साथ fibroblasts भी आ जाते हैं जो immunological प्रतिक्रिया करते हैं।

इस प्रकार के अनेक अदृश्य Giant Cell Systems के मिलने से जो एक दृश्य मान बाजरे के दाने जितना अंकुर बनता है उसे ही Tubercle कहते हैं । प्रत्येक Giant Cell Systems में केन्द्र प्रदेश में एक Giant Cell होता है । इसके चारों ओर Epithelioid Cells और उनके बाहर की ओर शोथ सूचक सेल या Inflammatory Cells अर्थात् Lymphocytes तथा Plasma Cells होते हैं ।

Caseation मृदु भाव, पनीर भाव :-

क्षय जीवाणु के संक्रमण के लगभग १५ दिन बाद यदि शरीर की प्रतिरोधक शक्ति कम हो अथवा जीवाणु का संक्रमण अधिक मात्रा में हुआ हो तो इस क्षयांकुर के केन्द्र भाग में क्षय जीवाणु के विष या Tuberculo-Protein या Exotoxin के दुष्प्रभाव से मृत्यु (Coagulation Necrosis या Fat Necrosis) की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। अर्थात् इन सेलों के प्रोटोप्लाज्म के टूटने से उत्पन्न पाचक तत्व (Intracellular Enzymes) के द्वारा इनका प्रोटोप्लाज्म पनीर जैसे पदार्थ में परिवर्तित हो जाता है, सेलों की परस्पर पृथकता लुप्त हो जाती है, उनकी मीगियां नष्ट हो जाती हैं और उनके स्थान पर पनीर जैसे पदार्थ का एक ढ़ेर दीखने लगता है। क्षय विष के कारण ही सूक्ष्म रक्त वाहिनियाँ के अवरुद्ध हो जाने से उसमें आक्सिजन के न जा सकने से वहां क्षय जीवाणु न बढ़ सकता, न जीवित रह सकता है, अत: वह वहां अब नहीं मिलता। साधारण शोथ से युक्त प्रदेश में तो श्वेत कणों (Leucocytes) को अपनी ओर खींचने का गुण होता है। (वह Chemotactic होता है) जिससे उनके मृत हुये शरीर में से उत्पन्न Proteolytic Enzyme के द्वारा शोथ युक्त अवयव पक कर पूय रुप में परिवर्तित हो जाता है। परन्तु क्षय जनित मृदु भाव (Caseation) से युक्त प्रदेश वैसा Chemotactic नहीं होता, इसलिये वह पूय में परिवर्तित नहीं होता। इस प्रकार अब क्षयांकुर के केन्द्र भाग में मृदुभाव (Caseation) की अवस्था होती है, उसके चारों ओर पहले फीके से रंग का Epithelioid Cells तथा Giant Cells का घेरा होता है, और उसके बाहर गहरे रंग के Lymphocytes का घेरा होता है।

अब यदि यह रोग यहीं समाप्त हो जाता अर्थात् Caseation के बाद कोई परिवर्तन न होता तो भी वहां जीवाणुओं के न रह सकने से यह रोग आपत्तिजनक न होता परन्तु बहुधा यह पनीर सदृश पदार्थ (Caseated Matter) द्रव रुप हो जाता है और जब यह द्रव रुप होता है तब वहां क्षय जीवाणु की वृद्धि भी अधिक होती है। यह पनीर-सदृश घना पदार्थ द्रव रुप क्यों होता है अर्थात् उसमें मृदुता (Softening) क्यों होती है इसका कोई समाधान अभी तक नहीं मिला। यह क्षयांकुर फुफ्फुस में हो तो यह मृदु हुवा द्रव किसी श्वास प्रणालिका में खुलकर बहने लगता है जिसके साथ क्षय जीवाणु फिर दूर तक प्रसरण कर जाता है। क्षयांकुर के अन्दर से इस द्रव भाग के बहने से उसमें एक रिक्त स्थान उत्पन्न हो जाता है जिसे गुहा भाव (Cavitation) की प्रक्रिया कहते हैं। इसीलिये यदि थूक के द्वारा पतला पूय सदृश द्रव निकलने लगता है तो समझा जाता है कि फुफ्फुस में कहीं पर गुहा (Cavity) बन गई है।

Tuberculous Abscess:- उस वेदना रहित चिरस्थायी

विद्रधि को जिसके अन्दर पनीर जैसा यह पदार्थ भरा होता है जिसके चारों और की दीवार में Grey Tubercles छाये होते हैं क्षाय विद्रधि (Tuberculous Abscess) कहते हैं । यह त्वचा के नीचे हो तो आकृति में त्वचा से जुड़ जाता है, तथा त्वचा रक्त वर्ण हो जाती है । इस रक्त वर्ण प्रदेश में इस विद्रधि के खुल जाने से एक नाड़ी व्रण (Sinus) बन जाता है । यह विद्रधि गहराई में हो तो इसका पूय किसी मांसावरण Fascia पर से बहता बहता २ दूर तक चला जाता है और कहीं त्वचा पर खुलता है । परन्तु बहुधा क्षायांकुर में द्रव भाव नहीं होता Epithelioid Cells के सूत्राकार प्रवर्धन (Reticuli) ही, स्नायु तन्तु (Connective Tissue) में परिवर्तित होकर इसके चारों ओर घेरा डाल लेते हैं और इस प्रकार उसके चारों ओर एक दृढ़ आवरण (Fibrous Capsule) बन जाता है तथा फिर इसमें लाइम के साल्ट निक्षिप्त हो जाते हैं जिससे वह कठोर (Calcified) हो जाता है, यद्यपि फिर भी कभी कभी उसके अन्दर कोई जीवाणु जीवित रह सकता है ।

जब इस रोग में जीवाणु द्वारा मृत्यु (Necrosis) की प्रक्रिया अधिक होती है तब पनीर भाव (Caseation) अधिक होता है । इसके विपरीत जब सैलों की प्रतिक्रिया प्रबल होती है तो रोहण कर्म (Fibrosis) अधिक होता है ।

(१) जीर्ण उरः क्षाय रोग :- Chronic Fibrocaseous Tuberculosis :-

क्षाय रोग, शरीर के अंगों में, सबसे अधिक फुफ्फुस में होता है । तथा वहां भी जीर्ण उरःक्षाय के (Chronic Fibrocaseous) रूप में अधिक होता है । यह १५ से २५ वर्ष की आयु में विशेषतः पाया जाता है । सम्भव है प्रथम संक्रमण (Primary Infection) से उपार्जित प्रतिरोधक शक्ति तब तक घट जाती है तथा इस आयु में स्वभावतः दूसरों से इस रोग के भारी संक्रमण (Re-infection) का अवसर भी अधिक रहता है । सम्भव है बलवान् संक्रमण से निर्बल प्रतिरोधक शक्ति नष्ट कर दी जाती है ।

बाहिर से जीवाणु संक्रमण होने के कितने दिन बाद यह रोग आरम्भ होता है इस विषय में Boyd साहब का कथन है कि संक्रमण होने के एक मास बाद इस रोग के पार्श्व शूल आदि लक्षण आरम्भ हो जाते हैं तथा Tuberculin Test भी नैगेटिव से पाज़िटिव हो जाता है ।

फुफ्फुस के अन्दर श्वास नाली या लसीका वाहिनी या रक्तवाहिनी द्वारा आया हुआ क्षाय जीवाणु उसके [redacted] अन्य भागों में उस तरह नहीं पनपता जैसा कि वह फुफ्फुस शिखर (Apex) में पनपता है । यह रोग प्रायः फुफ्फुस शिखर के पिछले भाग में आरम्भ होता है । वहां ही यह रोग क्यों आरम्भ होता है इसके लिये Dock ने जो समाधान दिया है वह उचित प्रतीत होता है । वह कहता है कि फुफ्फुस में रक्त, दक्षिण हृदय से Pulmonary Artery-

के द्वारा पहुंचता है। पुफुस की रक्तवाहिनियों में सबसे कम भार (B.P.) शिखर की रक्तवाहिनियों में होता है। विशेषत: जब तक मनुष्य खड़ा हुआ श्रम करता रहता है वहां भार रहता ही नहीं। इसीलिये लसीका वाहिनियों (Lymphatics) के द्वारा शिखर में पहुंचे हुये जीवाणुओं को शिखर की रक्तवाहिनियों के आस पास लसीका (Tissue Fluid) के न रहने से वृद्धि करने का अवसर मिल जाता है। दोनों पुफुस शिखरों में से दक्षिण पुफुस शिखर में यह रोग क्यों अधिक होता है इस विषय में उसका कथन है कि दांई Pulmonary Artery बांई की अपेक्षा लम्बी तथा तंग होती है। जब तक व्यक्ति श्रम करता या चलता फिरता है, दक्षिण शिखर में रक्त भार सर्वथा नहीं रहता। जिससे वहां जीवाणु को रोहण करने का सुअवसर और भी अधिक रहता है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रात को ८ घन्टे तथा दिन में भी कुछ समय लेटकर आराम करने वालों में इस रोग के होने का भय कम रहता है।

सम्प्राप्ति :-

एक पुफुस दो तीन खण्डों Lobes से बना होता है। इनमें से प्रत्येक खण्ड अनेक खण्डिकाओं (Lobules) से बना हुआ है तथा प्रत्येक खण्डिका अनेकानेक श्वास प्रणालिकाओं (Bronchioles) तथा उनके सिरे पर सम्बन्धित श्वास कोष्ठक गुच्छों (Acini अथवा Alveoli) के द्वारा बना है। इसे पुफुस की इकाई कहा जा सकता है। यह रोग भी पुफुस की एक इकाई में प्रारम्भ होता है। अर्थात् पुफुस की किसी एक Bronchiole के सिरे के लसीकामय प्रदेश (Peribronchiol Lymphoid Tissue) में यह रोग आरम्भ होता है। जिससे पुफुस का एक वायु कोष्ठक (Acinus या Alveolus) पहले रोग ग्रस्त होता है और फिर अनेक कोष्ठकों (Acini) के रोग ग्रस्त होने से पुफुस का एक बड़ा भाग रोग ग्रस्त हो जाता है। युवक में क्षय जीवाणु का संक्रमण बहुधा बाहर से होता है। (Exogenous)। कभी कभी पुफुस में विद्यमान Primary Infection में से विशेषत: उसके Glandular Component अर्थात् किसी जीवित जीवाणुओं से युक्त Mediastinal Gland में से होता है। यह क्षय जीवाणु लसीकावाहिनि (Lymphatic) के द्वारा एक श्वास प्राणालिका (Bronchiole) की दीवार में उसके Peribronchial Lymphoid Tissue में वृद्धि करना प्रारम्भ करता है। क्योंकि पुफुस शिखर में इसे रोहण करने की अनुकूल परिस्थिति मिलती है, इसलिये पहले पहले यह वहां ही रोहण करता है। फिर इसके विपरीत वहां Monocytes तथा लसीका द्रव (Lymph) पर्याप्त मात्रा में जमा हो जाते हैं। इनके जमा होने से वहां Tubercles बन जाते हैं, अर्थात् Tubercular-Granuloma सा बन जाता है जिससे कुछ एक प्राणालिकाओं के सिरे तथा उनसे सम्बन्धित वायु कोष्ठक (Acini या Alveoli) एकत्रित हुये सैलों तथा एकत्रित हुई लसीका (Lymph) के जम जाने से ठोस से हो जाते हैं। इसे क्षय जनित

स्थानिक फुफ्फुस शोथ (Local Tuberculous Broncho Pneumonia) कह सकते हैं । अर्थात् रोगी के रोग ग्रस्त फुफ्फुस का यह एक भाग श्वास प्रश्वास में भाग लेना बन्द कर देता है । रोग बढ़ता जाय तो श्वेत कणों और लसीका (Lymph) के संचित होने से बने हुये इस भाग में इन्हीं श्वेत कणों में से उत्पन्न Intracellular Enzymes. के द्वारा मृत्यु (Coagulation Necrosis तथा Fatty Degeneration) की प्रक्रिया होने लगती है जिससे यह स्थान अर्थात् वहां भरा हुआ द्रव (Exudation) एक पनीर जैसे पदार्थ में परिवर्तित हो जाता है जिससे इसे Caseous Broncho-Pneumonia कहा जाता है । इस प्रकार फुफ्फुस शिखर के अनेकानेक खंडिकायें (Lobules) निष्क्रिय (Callapsed) हो जाती हैं ।

इसके बाद भी यदि वहां रोग की रोकथाम पर्याप्त न हो अर्थात् वहां स्नायु तन्तु की वृद्धि (Fibrosis) की प्रक्रिया भली प्रकार न हो, जीवाणु वृद्धि करता ही जाय, विशेषत: उस स्थान में Pyococci प्रवेश कर जायें तो उनके कारण वहां Leucocytes खिंचकर आने लगते हैं और उनके मृत शरीरों में से निकले Enzymes के द्वारा इस पनीर सदृश पदार्थ को बांधकर रखने वाला Elastic Tissue पचने या गलने लगता है जिससे पनीर जैसा पदार्थ फिर द्रव रुप होने लगता है (उसमें Sloughing या Liquefaction होने लगता है) जिससे वहां शीत विद्रधि या Cold Abscess बन जाता है । फिर यह विद्रधि निकटस्थ श्वास मार्ग (Bronchus या Bronchiole) में खुल जाती है और उसका पूय सदृश द्रव पदार्थ थूक के साथ बाहर निकलने लग जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि पनीर सदृश पदार्थ के द्रव रुप होकर निकलते रहने से इस रोग ग्रस्त भाग के केन्द्र में एक गुहा (Cavity) बन जाती है जो क्रमश: बड़ी होती जाती है । यह गुहा भाव (Cavitation) उर:क्षय रोग का एक विशेष लक्षण है । बहुधा इस गुहा के बीच में परदे (Stroma या Trabeculae) भी हो सकते हैं जिनमें चलने वाली श्वास नालियाँ तथा रक्तवाहिनियां भी होती हैं, परन्तु प्राय: वे अवरुद्ध (Thrombosed) हुई २ होती हैं । इन परदों में यदि कोई रक्तवाहिनी अवरुद्ध हुई न हो तो उसके क्षत हो जाने से थूक में रक्त की न्यूनाधिक मात्रा भी आ सकती है । रोग के अन्त में जब बड़ी बड़ी श्वास नालियां रोग ग्रस्त हो जाती हैं तो उनकी दीवार में विद्यमान बड़ी रक्त वाहिनियों में शैथिल्य (Dilatation) होकर उनमें सिरा ग्रन्थियां Aneurism भी बन सकती हैं तथा यदि कोई ऐसी ग्रन्थि (Aneurism) फट जाये तो फिर मुख द्वारा महान रक्त स्राव होकर तुरन्त मृत्यु हो सकती है । एक बार गुहा भाव हो जाय तो आसपास के स्वस्थ फुफ्फुस के श्वास प्रश्वास के साथ फैलने सुकड़ने से उस गुहा पर और खींच पड़ती रहती है जिससे वह फैलती ही जाती है । परन्तु यदि पूर्ण विश्राम के द्वारा रोग ग्रस्त फुफ्फुस को निष्क्रिय बना दिया जाय तो यह गुहा भरने लग जाती है ।

जब फुफ्फुस में क्षयांकुर उत्पन्न होते हैं तो प्राय: वे फुफ्फुसावरण (Pleura) पर भी प्रसरण कर जाते हैं और वहां इनके विपरीत लसीका (Lymph) का जो स्राव होता है उसमें Fibrinogen भी होता है जो वहां पर एकत्रित हुये Polymorphonuclears के मृत शरीरों में से निकले Thrombin के द्वारा Fibrin में परिवर्तित होकर शुष्क पार्श्व शूल (Fibrinous Pleurisy) का कारण बन जाता है। इसका यह परिणाम होता है कि फुफ्फुस पर चढ़ा हुआ अन्दर का Pleura सामने के बाहर के (Parietal) Pleura से जुड़ जाता है। Pleura के विस्तृत प्रदेश में क्षयांकुर निकल आयें तो वहां पतले Lymph (Serofibrinous-Fluid) का स्राव इतना होता है कि Pleural Cavity का एक भाग उससे भर जाता है। तब इसे द्रव युक्त पार्श्वशूल (Pleurisy with Effusion) कहते हैं।

आराम से या चिकित्सा से रोगी की प्रतिरोधक शक्ति बढ़ जाय तो Caseation की प्रक्रिया के होने से पहले वहां स्नायुतन्तु (Fibrous-Tissue) का आवरण छा जाता है और रोग की गति अवरुद्ध हो जाती है अथवा पनीर भाव या Caseation के बाद भी वहां स्नायुभाव (Fibrosis एवं ~~EXM~~ Calcification) होकर रोग की वृद्धि रुक जाती है। ऐसा होने पर फुफ्फुस का यह रोग ग्रस्त भाग सुकड़ कर छोटा हो जाता है तथा इस प्रक्रिया के द्वारा उत्पन्न हुई क्षति को पूर्ण करने के लिये चारों ओर के स्वस्थ फुफ्फुस में हवा अधिक भर जाती है (अर्थात् उसमें Compensatory Emphysema हो जाता है)।

जीर्ण उर:क्षय में फुफ्फुस के रोग ग्रस्त भाग में स्नायुभाव (Fibrosis) तथा पनीर भाग (Caseation) दोनों प्रक्रियाएं न्यूनाधिक रूप में साथ साथ चलती हैं। उसी ओर के फुफ्फुस या दूसरी ओर के फुफ्फुस में रोग का प्रसरण या तो सीधा होता है या श्वासप्रणालियों में से Aspiration अर्थात् पूय स्राव के श्वास द्वारा खिंच जाने से हो जाता है

जीर्ण उर:क्षय Chronic Fibrocaseous Tuberculosis के लक्षण :-

फुफ्फुस में क्षय जीवाणु के संक्रमण के कारण दो प्रकार के लक्षण होते हैं। एक व्यापक, दूसरे स्थानिक। क्षय जीवाणु के विष (Tuberculoprotein) के रक्त में संचार करने के कारण तो ऐसे व्यापक लक्षण जैसे ज्वर, कृशता, अशक्ति आदि लक्षण होते हैं तथा खांसी, बलगम, पार्श्व शूल आदि लक्षण श्वास प्रणालियों में या फुफ्फुस या फुफ्फुसावरण (Pleura) में क्षय जनित शोथ के कारण होते हैं।

प्रारम्भिक लक्षण :- अथवा अव्यक्त उर:क्षय के लक्षण :-

उर:क्षय रोग इतने अज्ञात रूप में और धीरे धीरे आरम्भ होता है कि प्रारम्भ में इस रोग का पहचानना सुगम नहीं होता। परन्तु कुछ एक लक्षणों को देखकर इस रोग का सन्देह हो जाता है। क्षय जीवाणु के विष (Tuberculoprotein या Toxaemia) के कारण शरीर की प्राण शक्ति

पर बड़ा दुष्प्रभाव पड़ता है ।उसके क्षीण हो जाने से शारीरिक और मानसिक अशक्ति या दौर्बल्य का लक्षण उत्पन्न हो जाता है । स्वल्प श्रम से भी शरीर और मन थकने लगते हैं । रात्रि को आराम कर लेने पर पहले तो प्रात: शरीर में स्फूर्ति लगती है । पर कुछ काल बाद रात भर आराम कर लेने पर भी दिन भर के श्रम से उत्पन्न थकावट दूर नहीं होती जिससे प्रात: उठने पर भी ताजकी नहीं आती। मानसिक निर्बलता के कारण रोगीमेंचिड़चिड़ापन बढ़ जाता है । इस प्रकार अशक्ति या दौर्बल्य (Asthenia) इस रोग का एक प्रारम्भिक लक्षण होता है । इस रोग की विष के कारण पाचकाग्नि घट जाती है जिससे अन्न के लिये अरुचि या अन्न द्वेष (Anorexia) का लक्षण हो जाता है । इसके अतिरिक्त हृदय पर इस विष के प्रभाव से थोड़ा श्रम करने पर भी हृदय कम्प होने लगता है तथा श्वास गति भी तीव्र हो जाती है । यदि नाड़ी मण्डल पर इसका दुर्बलता जनक प्रभाव हो तो एक नवयुवक में नाड़ी दौर्बल्य (Neurosthenia) के से लक्षण भी हो जाते हैं ।

कभी कभी इस रोग की विष के कारण मन्द सा ज्वर होता है जो सायंकाल ६ से ८ के बीच में हो जाता है । यह ज्वर अति मन्द होता है । परन्तु प्रात:काल का तापमान नार्मल से नीचे होता है । अर्थात् साधारण व्यक्ति में दिन भर के श्रम से जितना तापमान बढ़ना चाहिये उसकी अपेक्षा उसमें अधिक बढ़ता है । इस प्रकार श्रम से तापमान बढ़ जाने का लक्षण भी इस रोग का सूचक होता है । श्रम से तापमान बढ़ जाने का लक्षण अर्थात् ... का लक्षण संभवत: फुफ्फुस में क्षत के हो जाने से होता है।

मन्दतापमान या अन्नारुचि के कारण अथवा इस रोग की विष के दुष्प्रभाव से शरीर की वृद्धि ही नहीं अवरुद्ध हो जाती प्रत्युत शरीर का भार भी घटने लग जाता है । शरीर के भार का घटना इस रोग का प्रधान प्रारम्भिक लक्षण है ।

कभी कभी यह रोग प्रतिश्याय के दीर्घ वेगों के साथ आरम्भ होता है अर्थात् क्षय विष के कारण सर्दी के लिये असात्म्यता बढ़ जाती है । सर्दी लगकर प्रतिश्याय हो जाता है अथवा प्रतिरोधक शक्ति की न्यूनता से प्रतिश्याय शीघ्र शीघ्र हो जाता है और तीन चार दिन रहने के स्थान पर वह देर तक चलता है ।

कभी कभी यह रोग शुष्क खांसी से आरम्भ होता है । Pleura में क्षयांकुरों के होने के कारण उनका विक्षोभक प्रभाव श्वास नालियों पर ऐसा पड़ता है कि खांसी उठती रहती है । इसे Reflex Cough कह सकते है । अतएव युवावस्था में खांसी १-२ मास जारी रहे तो इस रोग की आशंका हो जानी चाहिये ।

कभी कभी यह रोग फुफ्फुसावरण (Pleura) में क्षयजनित शोथ के कारण जब वह पृष्ठ सामने के Pleura के साथ संघर्ष में आता है तो उससे उत्पन्न पार्श्व शूल के साथ आरम्भ होता है । गहरा श्वास लेने पर एक पार्श्व

में चुभने की सी दर्द होती है । आर्द्र शीत ऋतु में यह लक्षण विशेष होता है । कभी कभी द्रव युक्त पार्श्व शूल (Pleural Infusion) से यह रोग प्रारम्भ होता है ऐसा हो जाय तो भी ४-५ वर्ष तक फुफ्फुस क्षय के हो जाने की आशंका होती है । इस प्रकार जब तक फुफ्फुस का रोग ग्रस्त भाग ठोस रहता है तब तक उपर्युक्त अव्यक्त लक्षण होते हैं । इसी प्रकार नवयुवक व्यक्तियों में गुद विद्रधि (Ischio-Rectal Abscess) हो तो भी फुफ्फुस क्षय रोग की शंका करनी चाहिये । क्योंकि वहां से ही इस जीवाणु के आने से बहुधा यह विद्रधि होती है । बालकों में खसरे और काली खांसी के बाद सप्ताहों तक स्वास्थ्य गिरा रहे तो भी इस रोग की आशंका करनी चाहिये ।

व्यक्त उर:क्षय के लक्षण :-

रोग आरम्भ होने के कुछ काल बाद जब फुफ्फुस के रोग ग्रस्त प्रदेश में रोग वृद्धि के सूचक परिवर्तन जैसे पूय भाव (Sloughing) गुहा भाव (Cavitation) के परिवर्तन हो जाते हैं तब ये लक्षण होते हैं :-

(१) कास :-

खांसी, उर:क्षय का प्रधान लक्षण है । फुफ्फुस गुहा में से उत्पन्न पूय द्रव के श्वास नालियों में प्रवेश करते ही खांसी उठने लगती है । प्रारम्भ में यह खांसी प्रात:काल उठने पर होती है अर्थात् फुफ्फुस के रोग ग्रस्त प्रदेश में उत्पन्न स्वल्प सा पूय द्रव प्रात: काल उठने पर जब हिलता है और एक श्वास नाली में प्रवेश कर जाता है तब खांसी उठने लगती है और फिर उस द्रव के निकल जाने पर वह दिन भर शान्त रहती है । बाद में ज्यों ज्यों फुफ्फुस में से पूय द्रव की उत्पत्ति बढ़ती है, खांसी भी अधिक अधिक उठती है । यदि अन्दर से निकलने वाला द्रव गाढ़ा हो जो देर से निकलता हो तो कष्ट दायक खांसी उठती है । रोग Pleura में ही हो तो खांसी शुष्क ही उठती है ।

(२) मल भूत कफ या बलगम का पड़ना :- (Expectoration) :-

इस रोग के बढ़ने पर पहले खांसी के साथ पतली बलगम आती है । परन्तु उस Mucus में पिन के नक्के जितने छोटे छोटे पूय कण (Caseous पदार्थ के खण्ड) आने लगते हैं । ज्यों ज्यों गुहाभाव (Cavitation) की वृद्धि होती है ये पूय खण्ड बड़ी मात्रा में आने लगते हैं । इस पूय मिश्रित थूक (Purulent-Sputum) की परीक्षा करने पर उसमें क्षय जीवाणु मिलते हैं तथा उसमें Caseous पदार्थ को जोड़कर रखने वाले Elastic Tissue के सूत्र (Fibres) भी मिलते हैं । जितना ही इस पूय वाली थूक (Purulent एवं Nummular Sputum, Mucopus) के गोलाकार ढेर की मात्रा बढ़े उतना ही रोग की वृद्धि हो रही है ऐसा समझना चाहिये । यदि इसकी मात्रा घटने लगे फिर वह पतली (Mucoid) हो जाय तो रोग अच्छा होता हुआ समझना चाहिये । Bronchiectasis ...

(३) ज्वर :-

इस रोग का प्रधान लक्षण है । जो इस रोग के विष की न्यूनता या अधिकता (Toxaemia) का सूचक होता है । प्रारम्भ में दिन भर के श्रम करने के बाद विष संचार की वृद्धि केवल कुछ समय अर्थात् सांयकाल के समय ही होती है । ज्यों ज्यों यह विष संचार बढ़ता जाता है रोगी का तापमान मध्यान्ह में ही बढ़ने लग जाता है । इस रोग में रोगी का तापमान रात के विश्राम से उतर जाता है । प्राय: प्रात:काल का तापमान नार्मल से नीचे होता है तथा दैनिक श्रम के कारण वह सांयकाल नार्मल से एक दो डिग्री बढ़ जाता है । प्रात: सांय के तापमानों में जितना जितना अन्दर बढ़ता जाय उतना ही रोग के विष संचार में वृद्धि समझनी चाहिये । इस क्षय विष के अधिक बढ़ जाने पर प्रात: सांय के तापमानों में चार पांच डिग्री का अन्तर हो जाता है । अन्त में जब प्रात: शीत लगकर ज्वर चढ़ता है और रात को अति स्वेद के साथ उतरता है, इसे Hectic Temperature कहा जाता है ।

(४) अति स्वेद तथा रात्रि स्वेद :-

सांयकाल को जो ज्वर चढ़ता है वह रात्रि को सोते समय जब उतरता है तब भारी स्वेद आता है । यह रात्रि स्वेद इस रोग का एक विशेष लक्षण है, अर्थात् क्षय विष का यह एक सूचक लक्षण प्रतीत होता है । कई बार तो उर:क्षय की प्रारम्भिक अवस्था में भी यह लक्षण हो सकता है । अर्थात् यदि किसी को शीत ऋतु में रात्रि स्वेद हो तो इस रोग की आशंका होनी चाहिये । किसी किसी रोग में शीत काल के दिनों में दिन में भी कक्ष प्रदेश पर भारी स्वेद आता है । त्वचा पर आये स्वेद के संचित हो जाने पर उसमें Saprophyticorganisms. बहुत बढ़ते हैं जिससे त्वचा पर से एक मीठी, पर घृणा जनक, दुर्गन्ध आने लगती है जो कि प्राय: क्षय रोगी के शरीर में से आया करती है ।

(५) रक्त निष्ठीवन तथा रक्त वमन :- (Haemoptysis) :-

लगभग १० प्रतिशतक उर:क्षय रोगियों में इस रोग का पता पहले पहल रक्त निष्ठीवन या रक्तवमन से लगता है । एक सर्वथा स्वस्थ प्रतीत होने वाले व्यक्ति को सहसा मुख में एक गर्म द्रव आता है प्रतीत होता है और जब वह उसे थूकता है तो वह रक्त निकलता है । इस प्रकार एक व्यक्ति को चार पांच छटांक तक के रक्त की उल्टी हो सकती है । इस लक्षण को देखकर फुफ्फुस में इस रोग का निश्चय हो जाना चाहिये । इस रक्त वमन के बाद भी एक दो दिन तक थूक के साथ मिश्रित रक्त आता रहता है । जब रक्त निष्ठीवन दीर्घ रोग के दौरान में होता है तब यह गुहा भाव (Cavitation) की अधिकता का सूचक होता है तथा बहुधा तो रोग के अन्त में यह रोगी के अन्त काल का सूचक होता है । क्योंकि भारी रक्त वमन होने के साथ ही रोगी की मृत्यु हो जाती है ।

(६) कृशता और अशक्ति :-

रोग की वृद्धि के साथ साथ भार घटता जाता है । शरीर कृश होता जाता है । अशक्ति बढ़ जाती है । नाड़ी गति तीव्र तर होती जाती है । नाड़ी या हृदय गति की तीव्रता का लक्षण इस रोग के प्रारम्भ से अन्त तक रहता है । क्षय विष के दुष्प्रभाव से हृदय तथा धमनियों की प्राण शक्ति घट जाती है । रोग के प्रारम्भ में भी यदि नाड़ी प्रति मिनट ७०-८० के लगभग रहे, संकोच कालिक रक्त भार घटा हुआ हो तो उर:क्षय का सन्देह करना चाहिये ।

(७) श्वास की तीव्रता :-

पहले हृदय की निर्बलता वश तथा Diaphragm की निर्बलता (Spasm) वश श्वास गति तीव्र होती है । फिर फुफ्फुसों के कुछ भाग के नष्ट एवं असमर्थ हो जाने तथा Pleura में जल के हो जाने से श्वास गति तीव्र रहती है फिर फुफ्फुसों में स्नायु भाव (Fibrosis) हो जाने से वह तीव्र रहती है ।

रोग परीक्षा :-

रोगी की शारीरिक परीक्षा करने पर पता लगता है कि उसका भार घटता जाता है । उसकी नाड़ी तीव्र है, आंखें श्वेत वर्ण, पर कुछ धंसी हुई हैं, अंगुलियों के सिरे मोटे हैं (Clubbing हैं) उनका यह मोटापन Bronchiectasis. नामक रोग में भी होता है, पर दोनों रोगों के अन्दर नखों में विभिन्नता होती है । इस रोग में नख पतले, चमक रहित तथा तोते की चोंच की तरह खम खाये (Curved) होते हैं । परन्तु Bronchietasis रोग में नख अधिक मोटे, चमकदार (Polished) होते हैं तथा खम खाये हुये नहीं होते । निरन्तर चिरकाल तक फुफ्फुसों में शिरागत रक्त को आक्सिजन की पूर्ण मात्रा न मिले तो उसमें एक ऐसा द्रव्य (सम्भवत: Ferritin) रह जाता है जिससे अंगुलियों के सिरों पर धमनियों और शिराओं के बीच की नालियां फैल जाती हैं एवं सिरे स्थूल हो जाते हैं।

छाती की परीक्षा करने पर रुग्ण हुये फुफ्फुस शिखर के आस पास की मांस पेशियां विशेषत: Supraspinatus सूखी हुई प्रतीत होती हैं । इस कन्धेकी पीछे की तथा ग्रीवा की मांस पेशियों के सूखने से Sternomastoid उभरी हुई दीखती हैं । कुछ काल बाद Clavicle के ऊपर नीचे के गढ़े भी कुछ गहरे से दीखने लगते हैं । जिससे ये अस्थियां आगे और Scapulae पीछे की ओर उभरती जाती हैं । एक तरफ की ऊपर की छाती दबी हुई होती या श्वास प्रश्वास के साथ उसकी गति कम होती है । रोग ग्रस्त भाग की ओर का स्कन्ध कुछ नीचा दिखाई पड़ सकता है ।

टकोर परीक्षा :- Percussion :-

जब रोगी ने अन्त: श्वास लेकर छाती को फुलाया हुआ हो वैसी अवस्था में फुफ्फुस-शिखर के पीठ पर अर्थात् Scapula के अन्दर के किनारे और रीढ़

भेदक लक्षण - उरःक्षय रोग का भेद Tropical Eosinophilia से करना चाहिए - रक्त की परीक्षा में Eosinophilia की गणना से यह भेद हो जाता है मलेरिया से प्लीहा तथा यकृत की परीक्षा करने पर भेद कर लिया जाता है। Pulmonary amoebiasis या फुफ्फुसगत प्रवाहिका विद्रधि से भी इस रोग का सन्देह हो सकता है। पर यदि रोगी को प्रवाहिका रह ही हो या यदि वह मद्यपायी हो या उसका यकृत कुछ बढ़ा हुआ हो X-Ray में दक्षिण फुफ्फुस का निम्न खण्ड धुंधला हो तो उसी रोग का निश्चय करना चाहिए

Bronchiectasis श्वास नाली भी फिल्म से इस रोग का सन्देह हो सकता है परन्तु वह रोग वर्षों से होता है अर्थात् उसमें खांसी वर्षों तक रहती है प्रातः बिस्तर से उठने पर होती है जिसमें बहुत सी बलगम निकल जाती है फिर दिन भर खांसी नहीं उठती। उसमें Influenza या Pneumonia के से ज्वर समय समय पर होते हैं पर बीच में रोगी अच्छा रहता है उरो विद्रधि Lung abscess से इसका भ्रम हो सकता है पर इसमें ज्वर ~~श्वास~~ और खांसी के साथ सहसा बहुत सी दुर्गन्धित बलगम के गिरने का लक्षण होता है। फुफ्फुस कैन्सर से भी इस रोग का सन्देह हो सकता है परन्तु उस रोग में रोगी बड़ी आयु का होता है उसमें Antibiotic औषधियों का कोई प्रभाव नहीं होता वह रोगी प्रायः बहुत अधिक धूम्रपायी होता है। Thyrotoxicosis से भी इस रोग का सन्देह हो सकता है क्योंकि उसमें भी रोगी कृश होता जाता है परन्तु उसमें क्षुधा तीव्र होती है इस रोग की तरह अग्निमन्द नहीं होती।

की हड्डी के बीच के प्रदेश पर टकोर कर दोनों ओर के घोष (Resonance) की तुलना करनी चाहिये । रोग ग्रस्त फुफ्फुस शिखर के ठोस (Consolidated) होने के कारण उधर की टकोर दूसरी ओर की अपेक्षा मन्द (Dull) होती है । पीछे Scapula के ऊपर के प्रदेश आगे Clavicle के ऊपर के प्रदेश में या Clavicle पर टकोरने से फुफ्फुस शिखर में उत्पन्न हुये ठोसपो (Consolidation) की परीक्षा की जा सकती है ।

स्पर्शन करने पर हाथ को वाचिक ध्वनि का कम्पन (Tactile Vocal Fremitus) बढ़ा हुआ लगता है ।

श्रवण परीक्षा :- Auscultation :-

(१) फुफ्फुस शिखर की पश्चिम प्रदेश कुछ ठोस हो गया हो तो वहां पर श्रवण करने से श्वास प्रश्वास की ध्वनि कुछ Tubular या Bronchial किस्म की सुनाई पड़ती है तथा साधारणत: तो अन्त:श्वास ऊंचा तथा लम्बा होता है, परन्तु फुफ्फुस के इस भाग के ठोस होने पर बहि:श्वास उससे भी ऊंचा और लम्बा सुनाई पड़ने लगता है । रोगी की वाचिक ध्वनि (Bronchophony या Vocal Resonance) ऊंची सुनाई पड़ती है । रोग कुछ स्पष्ट रूप में हो तो अन्त:श्वास के अन्त में Crepitations अर्थात् कानों के पास होने वाली बालों की रगड़ की सी आवाज, या Fine Rales अर्थात् बुलबुलों के फटने की मुलायम आवाज सुनाई पड़ती है । फुफ्फुस के ठोस हुये प्रदेश पर मुंह में बोली हुई आवास जैसे एक, दो, तीन की आवाज अर्थात् Whispering Pectoriloquy स्पष्ट सुनाई पड़ती है । रक्त की परीक्षा करने पर Blood Sedmientation Rate बढ़ा हुआ पाया जाता है । X-Ray परीक्षा करने पर फुफ्फुस के शिखर के पास अस्पष्ट किनारों वाला धुंधला सा श्वेत बदली का सा प्रदेश दिखाई पड़ता है । थूक की परीक्षा करने पर उसमें Acid Fast जीवाणु दिखाई पड़ते हैं ।

ज्यों ज्यों फुफ्फुस में ठोस पन और पनीर भाव (Consolidation तथा Caseation) बढ़ते हैं, रोग की वृद्धि होती जाती है । उपरोक्त लक्षण अर्थात् Bronchial श्वास प्रश्वास ध्वनि Bronchophony, Pectoriloquy, Rales अधिक स्पष्ट होते जाते हैं । जब गुहा भाव (Caviation) हो जाता है तब वहां पर छाती चपटी हो जाती है । वहां हवा भरी हो तो वहां की टकोर ध्वनि ऊंची होती है । श्रवण करने से वहां Amphoric ध्वनि सुनती है तथा कर्कश (Coarse) Rales सुनते हैं। Bronchophony तथा Pectoriloquy की ध्वनियां स्पष्ट हो जाती हैं ।

टिप्पणी :-

(१८१८-१८१६ में Laurant Boyle तथा उसके साथी Laennec ने पेरिस में फुफुस की श्रवण परीक्षा विधि का आविष्कार ही नहीं किया, प्रत्युत ये दोनों महापुरुष इस रोग की स्थापना करने वाले हुये हैं। पर कितने दुःख का विषय है कि ये दोनों महापुरुष अन्त में क्षय रोग से मृत्यु को प्राप्त हुये।

(१) तीव्रतर उरःक्षयः- Phthisis Florida (Swift) Acute Phthisis Tuberculous Pneumonia or Tuberculous Broncho Pneumonia, Acute Caseous Pneumonia :-

जब शरीर में क्षय जीवाणु के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति नहीं होती जैसे कि छोटे बालकों में वह नहीं होती यदि प्रारम्भिक क्षत (Primary Infection) के कारण सूजा हुआ कोई Mediastinal Gland एक श्वास नाली (Bronchus) के साथ जुड़ जाय और फिर वह उसी में खुल जाय तो उसमें निकले क्षय जीवाणु फुफुस के एक खण्ड या दोनों फुफुसों के भिन्न भिन्न प्रदेशों में फैल जाते हैं। जिससे एक खण्ड में या फुफुसों के भिन्न भिन्न भागों में Mono-nuclears का स्राव (Exudation) भर जाता है। फिर वायु कोष्ठकों (Alveoli) में भरा हुआ यह द्रव फ़नीर जैसे पदार्थ में परिवर्तित हो जाता है अर्थात् एक खण्ड में या फुफुस के भिन्न भिन्न भागों में फनीर भाव (Caseation) हो जाता है। बालक में प्रतिरोधक शक्ति के न होने से स्नायु भाव (Fibrosis तथा Calcification) या Giant Cells बनाने की प्रतिक्रिया होती ही नहीं। इस प्रकार दक्षिण फुफुस के ऊपर के खण्ड में Tuberculous Lobar-Pneumonia या दोनों फुफुसों में Broncho Pneumonia कोई सा भी रोग हो सकता है। फिर इन ठोस हुये भागों का Elastic Tissue नष्ट हो जाता है और उनमें मृदुता (Softening) उत्पन्न हो जाती है।

लक्षण :-

प्रारम्भ में बालक में साधारण (Pneumonia या Broncho Pneumonia के लक्षण होते हैं। सर्दी लगकर ज्वर चढ़ता है। पार्श्व शूल और खांसी के लक्षण भी होते हैं। ज्वर ऊंचा होता है पर प्रातः सांय के तापमानों में अन्तर अधिक होता है। श्वास गति और नाड़ी गति की तीव्रता अतिकृशता, रात्रि स्वेद, थूक में रक्त की उपस्थिति तथा ज्वर के तीन चार सप्ताह तक बने रहने से निश्चय हो जाता है कि यह साधारण Pneumonia या Broncho Pneumonia नहीं है, प्रत्युत क्षय रोग के कारण है। थूक में रक्त मिश्रित (Blood Stained Nummular) पूय होता है। परीक्षा करने पर फुफुसों में Rhonchi तथा Rales या Crepitations फैले हुए सुनाई

पड़ते हैं । रोग एक दो मास रहकर घातक हो जाता है ।

(२) वार्धक्य सुलभ उर:क्षय, क्षयजनित पुफुस काठिन्य :- Senile Phthisis:- Fibroid Pulmonary Tuberculosis, Tuberculo Fibroid Disease of the Lungs :-

५० वर्ष से ऊपर के व्यक्तियों में पाये जाने वाला यह एक मृदु पर चिर स्थायी उर:क्षय रोग है जो १५-२० वर्षों तक या और भी अधिक समय तक चला जाता है । पुफुस में रोहण (Fibrosis) की प्रक्रिया विशेष रुप में होती है + जिस कारण इसे Fibroid Phthisis कहते हैं । इसका पहचानना कठिन नहीं है । क्योंकि उर:क्षय के कारण चिरस्थायी कास का लक्षण जो कि प्रात:काल के समय विशेष होता है अर्थात् पुफुस में स्नायु तन्तु की वृद्धि की अधिकता के कारण श्वास नाली शैथिल्य या Bronchiectasis न्यून या अधिक रुप में होता ही है । उसके कारण रात भर संचित हुआ बलगम प्रात: जब निकलता है तो रोगी प्रात: खांसी उठती है । दूसरा लक्षण इस रोग में श्वास काठिन्य का होता है । क्योंकि पुफुस के प्रधान अवयव (Parenchymatous Tissue) के स्थान पर स्नायु तन्तु आ जाता है, अत: श्रम करने पर श्वास चढ़ जाता है । क्षय रोग के कारण कृशता तथा अशक्ति के लक्षण भी होते हैं । ज्वर का लक्षण नहीं होता या कभी कभी ज्वर हो जाता है । पर इसे लक्षण नहीं कहते । थूक में कभी कभी रक्त आने तथा उसमें क्षय जीवाणु मिलने के ये दो लक्षण भी इस रोग में होते हैं । दोनों पुफुसों में से एक पुफुस में विशेषत: उसके उपरले एक तिहाई भाग में स्नायु तन्तु की वृद्धि विशेष होती है + दूसरे में मन्द रुप में होती है । जिस ओर के पुफुस में यह प्रक्रिया विशेष होती है देखने में उधार की छाती दबी हुई होती है क्योंकि दोनों Pleurae के परस्पर चिपक जाने से पसलियां कुछ अन्दर धंस जाती हैं, श्वास प्रश्वास के समय छाती का फुलाव या विस्तार बहुत कम होता है । टकोरने पर घोष (Resonance) घटा हुआ, स्पर्श करने पर वाचिक कम्पन (Vocal Fremitus) घटा हुआ, श्रवण करने पर वाचिक (Vocal) तथा श्वास सम्बन्धी (Respiratory) घोष (Resonance) घटा हुआ मिलता है । जिस पुफुस में स्नाय्वभाव विशेष होता है, हृदय उस ओर को खिसक जाता है । इसका निश्चय X-Ray के द्वारा हो जाता है ।

साधारण पुफुस काठिन्य (Non Tuberculous Pulmonary Fibrosis) :- जो ३०-४० या ५० वर्ष की आयु के व्यक्तियों में पहले कभी हुये Broncho Pneumonia के उपद्रव के रुप में होता है जिसका वर्णन श्वास रोगों में हुआ है उससे इस रोग का भ्रम हो सकता है । पर वह एक ही पुफुस में होता है तथा उस रोग में थूक में रक्त नहीं आता उसमें कृशता,

अशक्ति तथा थूक में क्षय जीवाणु दीखने के लक्षण नहीं होते ।

(३) बाल सुलभ तीव्र उर:क्षय :- Pulmonary Miliary Tuberculosis, या Acute Miliary Tuberculosis of the Lungs :-

जिन २-३ वर्ष के शिशुओं और छोटी आयु के बालकों में क्षय रोग प्रतिरोधक शक्ति नहीं होती है उनमें पुफ्फुस में विद्यमान किसी क्षय ग्रस्त लसीका ग्रन्थि (Caseous Gland) के समीप की शिरा के साथ चिपक जाने और बाद में उसमें खुल जाने से क्षय जीवाणु सर्व अंगों में संक्रमण कर जाते हैं । इससे विशेषत: पुफ्फुस या उदरावरण कला (Peritoneum) या मस्तिष्कावरण (Meninges) में लक्षण उत्पन्न हुआ करते हैं । इसके शिरा द्वारा दक्षिण हृदय में चले जाने और वहां से पुफ्फुसों में चले जाने से जब पुफ्फुस के लक्षण विशेष रुप में स्पष्ट हों तो उसे " पुफ्फुस-प्रधान व्यापक क्षय क्षय रोग (Pulmonary Type या Broncho Pneumonic Type of Miliary Tuberculosis) कहते हैं । इस रोग में पुफ्फुस के Interstitial Tissue में व्यापक रुप में पिन के नक्के जितने क्षयांकुर उत्पन्न हो जाते हैं । बालक पहले से ही क्षय प्रकृति का होता है या खसरे (Measles) तथवा काली खांसी (Whooping Cough) के रोग के बाद उसमें फिर क्षय रोग जागृत हो जाता है ।

प्रारम्भ में इस रोग में प्रात: तापमान नार्मल पर सांय काल का तापमान १०२ या १०३ तक हो जाता है । फिर जितना जितना पुफ्फुस में क्षय रोग बढ़ता है प्रात: का तापमान भी ऊंचा हो जाता है । इस प्रकार तापमान निरन्तर (Continuous Remittent) हो जाता है । जिससे मन्थर ज्वर (Typhoid) का भ्रम हो जाता है । कभी कभी प्रात: काल का तापमान सांकाल के तापमान से ऊंचा भी हो सकता है । पुफ्फुस में शोथ (Broncho Pneumonia) के कारण श्वास अति तीव्र होती है । क्षय रोग के सामान्य लक्षण जैसे खांसी, रात्रि स्वेद, अशक्ति, नाड़ी गति की तीव्रता प्रात: सांझ के तापमानों में अधिक अन्तर तथा पुफ्फुस पर सुनाई पड़ने वाले Fine Rales को देखकर निश्चय हो जाता है कि यह तीव्र उर:क्षय रोग है । यह रोग १० दिन से ४५ दिन तक रह कर घातक हो जाता है ।

(४) पुफ्फुसावरण Pleura में क्षय रोग :- Tuberculous Pleurisy, Tuberculous Pleuritis: क्षय जनित पार्श्व शूल :-

जब उर:क्षय रोग में पुफ्फुस शिखर के पुफ्फुसावरण (Pleura) के नीचे के प्रदेश में क्षयांकुर निकलते हैं तो वहां से वे पुफ्फुसावरण (Pleura) पर भी प्रसरण कर जाते हैं तथा वहां से यह रोग सामने के Parietal Pleura में भी हो जाता है । इसलिये उर:क्षय में पुफ्फुसावरण क्षय भी बहुधा हो जाता है । Pleura के रुग्ण प्रदेश पर जो चिपचिपा सा Lymph का स्राव होता

है उसमें Fibrin की मोटी तह जम जाती है। जिससे वह पृष्ठ खुर्दरा हो जाता है। इसीलिये इसे Fibrinous Pleurisy कहते हैं। फिर इस शोथ के अच्छे होने पर यह Fibrin की तह Fibrous Tissue में परिवर्तित हो जाती है, जो आमने सामने की Pleura की दोनों तहों को जोड़ देती है। इसीलिये पुराने उर:क्षय रोग में Pleura की दोनों तहें परस्पर जुड़ जाती हैं। इस प्रकार Pleura का एक बड़ा प्रदेश इस रोग में सदा ही जुड़ता है। परन्तु जब यह शोथ Pleura के अधिक हिलने वाले प्रदेश में जैसे उसके कक्षा गत भाग (Axillary Pleura) में या Diaphragm पर चढ़े भाग (Diaphragmatic Pleura) में होता है तो रोगी को गहरा श्वास लेने या खांसने पर जब इस आवरण के शोथ युक्त प्रदेश के आमने सामने परस्पर संघर्ष में आते हैं तो तीव्र शूल प्रतीत होता है। फुफ्फुस शिखर के ऊपर के आवरण पर शोथ हो तो स्कन्ध प्रदेश पर विशेष शूल नहीं होता, केवल मन्द सी व्यथा रहती है। परन्तु पार्श्व गत Pleura में शोथ होने पर विशेष शूल होता है। इसीलिये उसे पार्श्व शूल कहा जाता है। Diaphragm पर चढ़े Pleura में शोथ हो तो भी रोगी को तीव्र शूल होता है। परन्तु क्योंकि उसके बाहर के दो तिहाई भाग में नीचे की छ: Intercostal Nerves आती हैं जो कि कोष्ठ की दीवार की मांस पेशियों को भी शाखायें देती हैं, इसीलिये Diaphragm के Pleura में होने वाला तीव्र शूल कोष्ठ की दीवार में होता प्रतीत होता है जिससे चिकित्सक को आन्त्रशूल (Appendicitis) आदि कोष्ठ गत शूलों का सन्देह हो सकता है। इस अवस्था में रोगी के हंसने, जम्हाई लेने, छींकने आदि से Diaphragm में जो शूल उत्पन्न होता है वह कोष्ठ के ऊपर के भाग में चुभने के रूप में प्रतीत होता है। यदि रोग Diaphragm के मध्यम एक तिहाई भाग में ही हो तो क्योंकि उसमें Phrenic Nerve जो कि चौथी Cervical Nerve से निकलके आती है इसलिये वहां उत्पन्न हुआ शूल ग्रीवा मूल में या कन्धों में होता हुआ प्रतीत होता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि Diaphragm के इस भाग में क्षय रोग हो तो इसके कारण हिक्का हो सकती है। यह हिक्का महीनों तक हलकी हलकी उठती रहती है। पार्श्व शूल के अतिरिक्त Pleura में शोथ के होने के कारण मन्द ज्वर भी होता है। श्रवण परीक्षा करने पर अन्त:श्वास के अन्त में या वहि:श्वास के प्रारम्भ में श्रवण यन्त्र की टोपी (Chest Peice) के ठीक नीचे ही एक संघर्ष की ध्वनि (Friction Sound) सुनाई पड़ती है जो फुफ्फुसावरण के खुर्दरे हुये पृष्ठों की रगड़ से उत्पन्न होती है।

यदि पार्श्व शूल की शिकायत दो सप्ताह तक रहे तो इसे क्षय रोग जनित समझा जाता है। प्राय: शूल, ज्वर, कास के लक्षण १५-२० दिन में ठीक हो जाते हैं। परन्तु Friction या संघर्ष की ध्वनि महीनों तक सुनाई पड़ती है। दुबारा फिर कभी इसका दौरा हो सकता है। Pleurodynia
इसका उल्लेख करना चाहिये।

द्रव युक्त पार्श्व शूल :-Serofibrinous Pleurisy,Pleurisy with Effusion:-

प्रारम्भिक दात (Primary Infection) होने के कुछ मास के अन्दर उसके द्वारा ग्रस्त पुफ्फुस ग्रन्थि (Glandular Component) में से या पुफ्फुस में उत्पन्न परन्तु लक्षण रहित एवं प्रसुप्त पड़े हुये क्षयांकुरों में से Pleura के एक विस्तृत प्रदेश में क्षयांकुर उत्पन्न हो जाय तो न केवल वहां से चिपचिपा (Fibrinous) स्राव ही होता है जिससे वहां एक मोटी तह छा जाती है, पर एक पतला द्रव भी रिस रिस कर पुफ्फुसावरण कोष (Pleural Sac.) में भरता जाता है। इसीलिये इसे Serofibrinous Pleurisy कहते हैं। यह द्रव कुछ औंस से लेकर ४० औंस तक हो सकता है। कभी तो यह रोग शुष्क पार्श्व शूल (Dry Pleurisy) के बाद होता है। और कभी उसके बिना अज्ञात रुप में ही एक युवक के पुफ्फुसावरण कोष में द्रव भर जाता है। बालकों व वृद्धों में यह रोग नहीं होता। Pleura में शोथ के कारण १०० से १०२ डिग्री तक का ज्वर कुछ सप्ताहों तक होता रहता है। उसकी नाड़ी गति तथा श्वास गति भी नार्मल से अधिक होती है। यदि द्रव की मात्रा अधिक हो तो ज्वर के अतिरिक्त शारीरिक श्रम के समय कुछ कुछ श्वास कृच्छ्रता का लक्षण भी होता है। रोगी के लिये स्वस्थ पुफ्फुस के भार सोना कठिन होता है। वह जल युक्त पार्श्व के भार ही सोता है, ताकि स्वस्थ पुफ्फुस अच्छी तरह फैल सके। जल के अधिक भर जाने पर जितने प्रदेश में जल होता है उतने पर स्पर्शन द्वारा वाचिक कम्पन (Vocal Fremitus) घटा हुआ प्रतीत होता है। स्पर्शन द्वारा देखने से उधर की छाती फैलती भी बहुत कम है। टकोर की आवाज अति मन्द (Dull) होती है। रोगी को बैठाकर टकोरें तो पीठ पर जल का लेवल नीचा होता, मध्यकक्षा रेखा (Midaxillary Line) में ऊंचा होता है और आगे की ओर मध्य रेखा में फिर जल का लेवल नीचा हो जाता है। इस जल युक्त प्रदेश पर श्रवण (Auscultation) करने से श्वास प्रश्वास" ध्वनियां नहीं सुनाई पड़तीं। वाचिक ध्वनि (Vocal Resonance) बहुत कम या नहीं सुनती। Skiagram में पुफ्फुस तल में द्रव की घनी छाया दिखाई पड़ती है।

जब द्रव की मात्रा अधिक होती है तब इसे स्थान देने के लिये पुफ्फुस अपने मूल (Hilum) की ओर अर्थात् ऊपर और अन्दर की ओर सुकड़ जाता है। इस जल की अधिकता के कारण Mediastinum में पड़े हृदय आदि अंग भी दूसरे स्वस्थ पार्श्व की ओर खिसक जाते हैं।

देखने में यह द्रव साफ सा थोड़ा सा धुन्धला १.०१८ स्पेसिफिक ग्रेविटी का, Lymphocytes नामक सेलों से युक्त Tubercle Bacilli तथा 4% Serum Albumin, Serum Globulin और Fibrinogen नामक Proteins से युक्त होता है। Sedimentation Rate ऊंचा होता है।

आराम करने तथा उचित चिकित्सा करने से जल कुछ सप्ताहों में विलीन हो जाता है, ज्वर भी शान्त हो जाता है। हां Fibrin के बैठने से रुग्ण Pleura मोटा तथा कठोर हो जाता है। दबा हुआ फुफ्फुस फिर फैलजाता है। पर इनमें से लगभग तिहाई रोगियों में ५ वर्ष तक उर:क्षय रोग होता हुआ देखा जाता है। यदि फुफ्फुस में स्नाय्वाव या Fibrosis होकर वह ठीक हो जाय तो भी उसमें Bronchiectasis का उपद्रव हो जाता है।

(५) कण्ठ क्षय, क्षय जनित स्वर भंग :- Laryngeal Tuberculosis :-

कण्ठ में क्षय रोग २० से ४० वर्ष के, क्षय रोग से ग्रस्त व्यक्तिओं में विशेषत: पुरुषों में इस रोग के उपद्रव रूप में होता है। थूक से निकलने वाले क्षय जीवाणुओं के कण्ठ (Larynx) की किसी कारण से क्षत हुई श्लेष्म कला में संक्रमण कर जाने से आरम्भ होता है। जीवाणु के वहां संक्रमण कर जाने पर श्लेष्म कला के नीचे के (Subepithelial) अवयव में इस जीवाणु के विपरीत प्रतिक्रिया होकर क्षयांकुर बन जाते हैं तथा वहां पर लसीका (Lymph) और सैलों का संचय हो जाने से श्लेष्म कला उभर जाती है। कण्ठ परीक्षा करने पर यह उभार पहले पहल स्वर तन्त्रियों (Vocal Cords) के पिछले भाग तथा दोनों Arytenoid Cartilages के बीच के प्रदेश (Inter Arytenoid space) अथवा Posterior Commissure की श्लेष्म कला पर दीखता है। या कण्ठच्छद Epiglottis पर होता है। देखने में यह प्रदेश फूला हुआ पर फीके रंग का दीखता है। बाद में क्षयांकुरों में पनीर का सा पदार्थ बन जाने (Caseation) से वहां पर अस्पष्ट से एवं मृदु दिवारों वाले फीके से रंग के व्रण हो जाते हैं।

कण्ठ में क्षय रोग के होने पर रोगी की आवाज निर्बल हो जाती है। थोड़ा बोलने से भी थक जाती एवं बैठ जाती है। इस प्रकार स्वर भंग इस रोग का प्रधान लक्षण होता है। यदि कण्ठच्छद (Epiglottis) में भी रोग हो तो दूध आदि के निगलने में दर्द होने का लक्षण भी होने लगता है, जो कान तक जाता है तथा निगलने पर खांसी उठ जाती है।

कण्ठ में फिरंग जनित व्रण भी होता है, पर वह कण्ठ के अग्रिम भाग में होता तथा कठोर एवं स्पष्ट दीवार का होता है।

(६) क्षयोदर :- Tuberculous Peritonitis-Abdominal Tuberculosis:-

उदरावरण (Peritoneum) में क्षय रोग छोटे बालकों और नवयुवकों (३-२० वर्ष) में पाया जाता है। प्राय: फुफ्फुस या Pleura में से क्षय जीवाणु लसीका वाहिनियों (Lymphatics) के द्वारा Retroperitoneal तथा Mesenteric Glands में पहुंचता है और उनमें से Peritoneum में प्रसरण कर जाता है। या दूध आदि के द्वारा प्रवेश करे तो आंत में से होकर वहां पहुंचता है। नवयुवतियों में Fallopian Tubes से भी आ सकता है।

acute tuberculous peritonitis

या Exudative या wet

क्षायोदर दो प्रकार का होता है । एक आर्द्र या जल युक्त क्षायोदर (Moist or Ascitic Tuberculous Peritonitis) दूसरा शुष्क क्षायोदर (Dry या Non-Exudative Tubercular Peritonitis).

(१) आर्द्र क्षायोदर, जल युक्त क्षायोदर (Exudative या Ascitic Tuberculous Peritonitis) :-

यह भेद फिर दो प्रकार का होता है । एक सहसा तीव्र रूप में उत्पन्न होने वाला जल युक्त क्षायोदर, दूसरा धीरे धीरे मन्द रूप में उत्पन्न होने वाला जल युक्त क्षायोदर । (Acute तथा Chronic Ascitic Tuberculosis).

इनमें से प्रथम अर्थात् तीव्र जल युक्त क्षायोदर में अन्दर सारे Peritoneum पर सहसा क्षायांकुर उत्पन्न हो जाते हैं । बालक के फुफ्फुस में विद्यमान किसी Caseous Gland के रक्तवाहिनी में फट जाने पर सारे शरीर में क्षाय जीवाणु का संचार हो जाने से अर्थात् Generalised Miliary Tuberculosis के उपद्रव के रूप में यह तीव्र क्षायोदर का रोग होता है । इसमें जीवाणु के विपरीत प्रतिक्रिया होकर Peritoneum में से Serofibrinous Fluid पर्याप्त मात्रा में निकलता है । जिससे उदरावरण कोष में पतला द्रव भर जाने से तथा Peritoneum के सूज जाने से कोष्ठ उभर जाता है । जल के द्वारा Inferior Venacava के दब जाने से पैरों में श्वयथु हो जाता है । Diaphragm. के दब जाने से श्वास प्रश्वास उथला हो जाता है । इस तीव्र शोथ के कारण ज्वर ऊंचा होता तथा निरन्तर बना रहता है । बालक को मल बन्ध रहता, भूख नष्ट हो जाती, पेट में दर्द, अफारा रहता है जिससे इसका सन्देह Typhoid से होता है, पर सांय प्रात: के तापमानों में अन्तर अधिक होता है । क्षाय रोग के अन्य लक्षणों को देखकर उसकी पहचान हो सकती है । पेट में भरे जल में Lymphocytes को तथा कभी कभी वहां रक्त को देखकर भी यह क्षायरोग जनित जलोदर है, ऐसा निश्चय किया जा सकता है । यह रोग प्राय: घातक होता है ।

चिरस्थायी जल युक्त क्षायोदर :-(Chronic Ascitic Peritonitis):-

यह उपरोक्त तीव्र क्षायोदर की अपेक्षा अधिक सुलभ है । इसमें उत्पन्न हुरे क्षायांकुर आकार में बड़े होते हैं । उनमें स्नायुतन्तु की वृद्धि भी विशेष होती है । Peritoneum मोटा हो जाता है । आन्त्र बन्धनी Mesentery संकुचित होकर छोटी हो जाती है तथा स्नायु तन्तु की वृद्धि के कारण Visceral Peritoneum फिल्ली कोष्ठ की दीवार के साथ जुड़ जाती है । इसमें विष संचार (Toxaemia) के लक्षण मृदु होते हैं । सायंकालिक ज्वर, पाण्डुता, कृशता, मलबन्ध, अन्नारुचि, कभी कभी उदर शूल के होने के साधारण

fibrinous या dry

लक्षणों के अतिरिक्त धीरे धीरे बालक का पेट उभरता जाता है । पेट तो उभरता जाता है पर शाखायें और चेहरा कुम्हलाते जाते हैं । जलोदर के कारण पेट पर की शिरायें स्पष्ट दीखती हैं । पेट के दोनों पार्श्वों पर नीचे की तरफ जल के कारण उभार विशेष होता है तथा वहां की टकोर भी मन्द होती है । धीरे धीरे यह जल विलीन हो जाता है तथा फिर यह शुष्क क्षयोदर का रूप ले लेता है । जल को निकाल के देखा जाय तो उसका आपेक्षिक भार १.०१८ होता तथा उसमें अलब्युमिन ४ प्र०श० मात्रा में होता है ।

शुष्क क्षयोदर :- Fibrocaseous अथवा Fibrous अथवा Adhesive अथवा Obliterative अथवा Plastic Abdominal Tuberculosis या Tubercular Peritonitis.

शुष्क क्षयोदर उपर्युक्त, क्षयोदर की अपेक्षा अधिक पाया जाता है तथा जल युक्त क्षयोदर भी बाद में शुष्क क्षयोदर में परिवर्तित हो जाता है । इस अवस्था में Peritoneum पर गाढ़ा चिपचिपा स्राव या Plastic Exudation निकल कर स्थान स्थान पर जम जाता है । जिसके स्नायुतन्तु (Fibrous Tissue) में परिवर्तित होने पर Visceral Peritoneum वहां वहां चिपक जाता एवं आंतें परस्पर स्थान स्थान पर जुड़ जाती हैं । यदि किसी किसी स्थान पर स्राव (Exudation) के चारों ओर स्नायु तन्तु के घिर जाने से वह स्राव वहीं बन्द हो जाय तो आंतों के बीच बीच में द्रव की थैलियां (Cysts of Effusion) बन जाती हैं । कभी कभी पनीर जैसे पदार्थ (Caseous Material) की थैलियां भी बन जाती हैं । इस प्रकार के क्षयोदर को Loculated Type of Tuberculous Peritonitis कहते हैं । ये थैलियां स्पर्शन से गूंधे हुये आटे या मांस खण्डों की सी प्रतीत होती हैं ।

यह शुष्क या थैलियों वाला क्षयोदर, धीरे धीरे उत्पन्न होता है । रोगी बालक में सांयकालिक ज्वर, कृशता, आध्मान, (Flatulence) क्षुधा नाश, मलबन्ध तथा विशेषतः पेट में दर्द होते रहने के लक्षण होते हैं । कोष्ठ ग्रन्थियां (Mesenteric Glands) सूजी हुई हों (Tabes Mesenteric हो) तथा Caseous हों तो भोजन का स्नेह [redacted] रसवाहिनियों या Lacteals के मार्ग के अवरुद्ध हो जाने से शरीर में नहीं पहुंचता । जिससे एक ओर तो शरीर की चर्बी सूखती जाती है, दूसरी ओर मल में अति स्नेह के [redacted] निकलने से मात्रा में बड़े दुर्गन्धित अतिसार आने लगते हैं ।

बच्चे में जलोदर हो, उदर कोण के जल की Specific Gravity. १.०१५ या इससे अधिक हो, उसमें Lymphocytes अधिक हों, ज्वर हो, पेट दर्द हो तो क्षयोदर का ही निश्चय करना चाहिये ।

साध्यासाध्य :-

आर्द्र क्षयोदर साध्य रोग है । पर शुष्क क्षयोदर कष्टसाध्य

तथा दीर्घ रोग है । यदि ज्वर बना ही रहे, छोटी आयु का हो, कृशता अधिक हो गई हो, फुफ्फुस में भी क्षय रोग के लक्षण हों, Peritoneum में पूयभाव (Sloughing) हो गया हो तो यह असाध्य हो जाता है ।

(७) आन्त्र क्षय, क्षय जनित आन्त्रिक व्रण :- Tuberculous Enterocolitis:-

बालकों में आन्त्रिक क्षय अथवा आंत में होने वाले क्षय व्रण, क्षय जीवाणु के अति मात्रा में मुख द्वारा प्रविष्ट होने से होते हैं अर्थात् उनमें यह रोग Primary रूप में होता है । उनमें यह जीवाणु भोजन, मट्टी आदि के द्वारा प्रवेश करता है ।

युवकों में यह आन्त्र क्षय का रोग फुफ्फुस क्षय के उपद्रव के रूप में होता है । क्योंकि देखा जाता है ८५ प्रतिशतक उरःक्षय रोगियों में आंत के अन्दर भी क्षय व्रण कभी न कभी हो जाते हैं । यों तो थूक द्वारा फुफ्फुस से निकले जीवाणु मुख में आकर कुछ न कुछ आंतों में पहुंचते ही हैं । परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब मल द्वारा बाहिर हो जाते हैं । जब आंत की प्रतिरोधक शक्ति कारणवश घटी हुई हो तथा फुफ्फुस से जीवाणु भी अत्यधिक मात्रा में पेट में जा रहे हों तभी वे आंत में क्षय व्रण उत्पन्न कर सकते हैं । सारे क्षुद्रान्त्र में अन्न द्रव तीव्र गति से चलता है । वहां इस जीवाणु को रोहण करने का अवसर मिल नहीं सकता परन्तु Ileum तथा Caecum में अन्न द्रव कुछ समय के लिये रुकता है । इसीलिये वहां ही इसे रोहण करने का अवसर मिल पाता है । यह वहां की श्लेष्म कला (M.M.) के Mucous Glands या Tubular Glands के मुखों से प्रवेश करके उनके तले पर पहुंचकर वहां रोहण करता है । जिससे वहां इसके विपरीत एक स्राव (Exudate) एकत्रित हो जाता है और श्लेष्म कला में शोथ हो जाता है । वहां एकत्रित हुये श्वेत कण (Phagocytic Cells) जीवाणु को पकड़ लेते हैं और फिर उनके बहिस्तर (Epithelial Layer) में से नीचे चले जाने से ये ऊपर से आये जीवाणु श्लेष्म कला से नीचे की तह (Sub-mucous Layer) में चले जाते हैं और वहां रोहण करते हैं जिससे वहां पर ही क्षयांकुर बनते हैं । क्षय जीवाणु सर्व शरीर में पहले पहल लसीका युक्त प्रदेश (Lymphoid Tissue) में ही रोग उत्पन्न किया करते हैं । इसीलिये आंत में अर्थात् Ileum और Caecum में उनके Lymphoid प्रदेशों (Peyer's Patches) तथा Solitary Follicles में ही यह रोग पहले आरम्भ होता है । वहां श्लेष्म कला के नीचे बने क्षयांकुरों में पनीर जैसा पदार्थ बनकर, भरकर बह जाता है । अर्थात् श्लेष्म कला के नीचे वहां पनीर भाव (Caseation) और पूय-भाव (Sloughing) होकर व्रण बन जाते हैं । श्लेष्म कला वैसे ही रहती है पर उसके नीचे के प्रदेश (Submucous Layer) में व्रण होते हैं । श्लेष्म कला के नीचे बने हुई इन व्रणों में से क्षय जीवाणु Ileum और Caecum से सम्बन्धित लसीका ग्रन्थियों (Ileocaecal Lymph Glands) में संक्रमण करके उनमें

भी शोथ का कारण हो जाते हैं। Ileum में उत्पन्न ये व्रण Submucous Layer से मांसमय स्तर और वहां से वाह्यावरण (Peritoneal Layer) तक भी फैल जाते हैं। इसलिये इन्हें आंतों के गहरे क्षाय व्रण कहते हैं। उथले उथले क्षाय व्रण भी होते हैं जो Submucous Layer से नीचे नहीं जाते। पर गहरे व्रण लसीका वाहिनियों के साथ साथ फैलते हैं और क्योंकि आंतों की लसीका वाहिनियां आंत में वृत्ताकार (Circular) होती हैं इसलिये आंत में ये गहरे व्रण भी वृत्ताकार (Girdle Ulcers) रुप में होते हैं। Ileum में से आरम्भ होकर ये व्रण क्षुद्रान्त्र और वृहदन्त्र दोनों ओर को फैलते जाते हैं। इनके कारण श्लेष्म कला के नीचे के अवयव में मृद्भाव (Caseation) और पूयस्राव होकर आंतों की दीवार का बहुत सा अवयव नष्ट हो जाता है। फिर इस नष्ट हुये प्रदेश में स्नायु तन्तु (Fibrous Tissue) बनकर ये व्रण अच्छे हो जाते हैं तो इस तन्तु के छोटे हो जाने से आंत गोलाकार रुप में सुकड़ जाती है (Ring Stricture)। इस तरह आंतों में स्थान स्थान पर मार्ग तंग (Stenosed) हो जाता है एवं मल मार्ग में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। आंत के वाह्यावरण (Peritoneum) में शोथ होकर वहां चिपचिपे स्राव के जम जाने से आंतें एक दूसरे से चिपक जाती हैं। (Peritoneal Adhesions उत्पन्न हो जाते हैं) इससे भी अन्न मार्ग या मल मार्ग में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। बालकों में मल मार्गावरोध का यह लक्षण विशेष होता है।

आन्त्र क्षाय रोग होने पर भी बहुत से रोगियों में कोई विशेष लक्षण नहीं होता। जब व्रण भाव अधिक हो जाता है तब इस रोग का सूचक लक्षण अतिसार होने लगता है अर्थात् Ileum की मांस मय स्तर में विद्यमान Aurbach के Sympathetic Plexus में क्षाय व्रण जनित क्षीणता के हो जाने से आंत में जो असहन शीलता, अक्षमता (Hypermotility) उत्पन्न हो जाती है उसके कारण खाया हुआ अन्न वहां पर से शीघ्र आगे बह जाता है, इसीलिये अतिसार होते हैं। दिन रात में अनेक दस्त होते हैं तथा पतले होने के अतिरिक्त दुर्गन्धित भी होते हैं जो साधारण औषधियों से ठीक नहीं होते। अतिसार के अतिरिक्त कोष्ठ या पेट में दर्द भी होता है जो बिना खाये भी होता है पर खाने से बढ़ता है। यह Peritoneum में शोथ के होने तथा आंत में स्तम्भ (Spasm) उठने से तथा आन्त्र ग्रन्थि शोथ (Lymphadenitis) के कारण होता है (नाभि के आसपास स्पर्शासहता की कारण होता है) व्रण के कारण नहीं होता। कहा जाता है कि क्षुद्रान्त्र में ही व्रण हों तो मलबन्ध का लक्षण विशेष होता है और Caecum तथा वृहदन्त्र में व्रण विशेष हों तो अतिसार का लक्षण विशेष होता है। मलबन्ध का कारण क्षुद्रान्त्र में उत्पन्न अवरोध (Stenosis) है जो वहां Scar.Tissue के बनने से होता है। अतिसार के अतिरिक्त सांयकालिक ज्वर, रात्रि स्वेद, कृशता, अन्नारुचि आदि क्षाय रोग सूचक लक्षण भी होते हैं।

Barium के देकर X-Ray परीक्षा करने पर रोग ग्रस्त आंत

में से Barium शीघ्र आगे निकल जाता है । अर्थात् वहां Barium की छाया नहीं होती । (Filling Defect)

बालक में आन्त्र क्षय (Tubercular Enterocolitis) हो तो उसे सांयकालिक ज्वर रहता है । व्रणों के कारण भोजन रस के भलीप्रकार विलीन न हो सकने से कृशता और भी अधिक हो जाती है । पेट अफरा हुआ होता है । उसमें ग्रन्थियां सूजी हुई स्पर्श होती हैं । विशेषत: Right Ileacfossa में तथा अतिसार जो दवाईयों से अच्छा नहीं होता बना ही रहता है ।

क्षय जनित आन्त्र गुल्म या क्षुद्रान्त्र शोथ :- Hyperplastic Ileocaecal Tuberculosis या Tuberculous Caecal Tumor, Tuberculous Ileitis:-

कभी कभी क्षय प्रकृति की नवयुवती स्त्रियों में विशेषत: क्षय जीवाणु के Ileum की श्लेष्म कला के नीचे के अवयव (Submucous Tissue) में बढ़ने पर वहां विनाशात्मक प्रतिक्रिया होने के स्थान पर रोहणात्मक प्रतिक्रिया विशेष होती है अर्थात् वहां न केवल श्लेष्म कला में ही पर उसके नीचे के अवयव Submucous Layer तथा मांसमय स्तर में भी स्नायु तन्तु तथा Fatty Tissue की अतिवृद्धि हो जाती है (Enlargement of fibrofatty tissue) जिससे वहां की आंत मोटी हो जाती है । (उसमें Hypertrophy हो जाती है) वहां की Peritoneum भी मोटी होकर आसपास के अवयवों से चिपक जाती है । यह प्रतिक्रिया Caecum में भी होती है । इससे सम्बन्धित Lymph Glands तथा आन्त्र बन्धनी (Mesentery) भी सूज कर मोटी हो जाती है । पर इन ग्रन्थियों में पनीर भाव (Caseation) की प्रक्रिया नहीं होती परन्तु इस रोग ग्रस्त आंत के अन्दर का मार्ग तंग हो जाता है । स्पर्श करने पर Right Fossa में एक ढेर (Mass) सा प्रतीत होता है जिसको दबाने से उसमें स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता तथा हवा की गड़गड़ाहट होती हुई सुनाई पड़ती है । वहां आंत के स्रोत के क्रमश: तंग होते जाने से नाभि के पास कभी कभी शूल के दौरे होते रहते हैं (अफारे की शिकायत रहती है) । रोगी को अतिसार तथा मलबन्ध दोनों की (या किसी एक की) शिकायत रहती है । शरीर में अति कृशता तथा सांयकालिक ज्वर के क्षय रोग सूचक लक्षण भी होते हैं (appendicitis में ये लक्षण नहीं होते) । यह रोग २-३ वर्षों तक रह सकता है । परन्तु वहां क्षयांकुर नहीं होते, ना ही वहां क्षय जीवाणु मिलते हैं । अत: कोई२ लोग इसे क्षय जनित नहीं मानते ।

गुद क्षय :- Tuberculous Ischiorectal Abscess या Perianal Abscess:-

गुदा की श्लेष्म कला के नीचे (Submucous) के अवयव में उत्पन्न हुई विद्रधि प्राय: इसी प्रकार आंत में से आये क्षय जीवाणु के कारण होती है । उसके खुल जाने पर वहां एक व्रण रह जाता है । फुफ्फुस में क्षय रोग हो तो इस विद्रधि को क्षय जीवाणु के कारण ही उत्पन्न हुआ समझना चाहिये । जब नवयुवावस्था में किसी को यह विद्रधि निकले तो फुफ्फुस की परीक्षा करनी चाहिये ।

(८) अस्थि दाय रोग :- Tuberculosis of the Bone, Tuberculous Osteitis :-

अस्थियों में दाय रोग बालकों व नवयुवकों में विशेष होता है । सछिद्र अस्थियों जैसे पृष्ठ वंशास्थियों (Vertebral) हाथ पांव की दण्डास्थियों (Carpus, Tarsus) में दाय रोग विशेषत: देखा जाता है । अस्थि पर आघात लगने पर वहां फुफ्फुस के किसी नरम हुई लसीका ग्रन्थि (Caseous Lymph Gland) या प्रारम्भिक दाय रोग (Primary Infection) से सम्बन्धित रोग ग्रस्त ग्रन्थि (Glandular Component) से रक्तवाहिनी (Nutrient Artery) के द्वारा दाय जीवाणु पहुंचता है । जिसके विपरीत अस्थि के अन्दर के मृदु भाग में दायांकुर बनने की प्रतिक्रिया होती है और फिर उसमें पनीर भाव (Caseation) तथा पूय भाव (Softening) होकर वहां शीत विद्रधि (Cold Abscess) बन जाती है । पृष्ठ वंशास्थियों में यही प्रतिक्रिया देखी जाती है । इसे पूय युक्त अस्थि दाय (Suppurative Tuberculous Caries) कहते हैं ।

अथवा दाय जीवाणु के संक्रमण के कारण जब अस्थि का विनाश तो अधिक होता और रसाण की प्रक्रिया अर्थात् Exudation कम होता है अस्थि के अन्दर का पृष्ठ तथा बाहर का पृष्ठ भी खाया जाता है जिससे अन्दर का स्रोत चौड़ा हो जाता और अस्थि का पृष्ठ या उसकी स्तर (Plate) पतली हो जाती है अर्थात् अस्थि पोली सी हो जाती है इसे शुष्क अस्थि दाय Osteoporosis या Tuberculous Caries कहते हैं । इस प्रकार अस्थियों में दाय प्रधानत: एक तो आर्द्र (Suppurative) और एक शुष्क (Dry) दो रूपों में होता है ।

अंगुल्यस्थि दाय :- Tuberculous Dactylitis of the Hand.:-

हाथ की किसी ऊपर से प्रथम (Proximal) अंगुल्यस्थि में यह रोग विशेष होता है । अंगुली की शरीर की ओर की पहली पोर धीरे धीरे तकुए की तरह फूली हुई दीखती है । उसकी त्वचा सवर्ण या श्वेत वर्ण ही होती है, लाल नहीं होती । उसमें थोड़ा थोड़ा दर्द भी होता है । पर साधारण विद्रधि की तरह विशेष नहीं होता । न ही छूने या दबाने से उसमें दुखन होती है । अन्त में जब अन्दर बनी हुई पूय मुख करती है तब एक स्थान रक्त वर्ण हो जाता है, अन्दर से अर्थात् अस्थि के स्पंज सदृश भाग Concellous Tissue तथा अन्दर के स्रोत Medulla में रोग आरम्भ होने के कारण अस्थि खाई जाती है परन्तु Periosteum के नीचे नई अस्थि के बन जाने अर्थात् वहां स्नायु तन्तु की वृद्धि हो जाने से Osteosclerosis. हो जाने से अंगुली मोटी हुई २ दीखती है ।

पादास्थि दाय :-Tuberculous Dactylitis of the Foot.:-

पांव की किसी भी दण्डास्थि (Tarsus) में दाय रोग हो

सकता है। जिससे उस अस्थि के अन्दर के स्पंज सदृश भाग तथा अन्दर के स्रोत में तो Caries हो जाता है और बाहर बाहर की प्लेट स्नायु भाव के बढ़ने से फूल कर मोटी हो जाती है। जिस अस्थि में यह रोग होता है वहां पर पांव में शोथ दिखाई पड़ता है। Os Calcis में बहुधा यह रोग होता है। इसमें रोग होने पर एड़ी के एक ओर या दोनों ओर उभार हो जाता है। रोगी ऐड़ी को बचाकर चलता है। इस अवस्था में गुल्फ सन्धि (Ankle Joint) में कोई विकृति नहीं होती Astragalus में क्षय रोग हो तो गिट्टे के आगे या पीछे की ओर पांव पर उभार होता है। इस अस्थि पर दबाव पड़ने से दर्द होता है। इसीलिये रोगी पौंचों के भार (अर्थात् Talepes Equinus की अवस्था में) चलता है। पांव को अन्दर या बाहर विवर्तित करना (Adduct या Abduct करना) कठिन होता है। इसी प्रकार पांव के अन्दर बाहिर विवर्तित करने (Inversion तथा Eversion) में भी कठिनता होती है। इस अस्थि में से क्षय रोग गुल्फ सन्धि (Ankle Joint) में तथा Os Calcis तथा Scaphoid में प्रसरण कर सकता है।

पृष्ठ वंश क्षय :- Spinal Caries Tuberculous Spondylitis :-

अस्थि क्षय रोगियों में से आधी से अधिक में पृष्ठ वंशास्थि क्षय का रोग पाया जाता है। जिसका पता पहले पहल Pott (१७७६) ने लगाया था। पृष्ठ वंश में भी आठवें Thoracic Vertebra से लेकर चौथे Lumber Vertebra. तक के प्रदेश में क्षय रोग विशेषतः होता है। तथा वहां पर फुफ्फुस में से या Hilar ग्रन्थियों में से इस रोग का जीवाणु आता है। आयु की दृष्टि से पृष्ठ वंशास्थि क्षय रोग बालकों तथा २५ वर्ष से नीचे के युवकों में अधिकतः पाया जाता है। इनमें भी लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में कुछ अधिक होता हुआ देखा जाता है।

कसेरु (Vertebra) में भी इसके पिण्ड (Body) में यह रोग अधिकतः होता है जिससे इसे पृष्ठ वंशास्थि क्षय का Osteitic Form कहते हैं। बालकों में पिंड (Body) के केन्द्र भाग में अर्थात् उसके सछिद्र भाग में (Osteomyelitis के रूप में) होता है जिससे कसेरु पिण्ड का अगला भाग बीच में से खाया जाता है तो ऊपर का कसेरु नीचे और आगे की ओर झुक जाता है। जिससे धड़ आगे की ओर झुक जाता है तथा पीठ पर उभार या कुबड़ापन दीखने लगता है। इस अवस्था में कुबड़े पन का लक्षण बड़ा स्पष्ट होता है। परन्तु सुषुम्ना काण्ड पर दबाव पड़ने का कोई भय नहीं होता। यदि २-३ पिण्ड ही रोग ग्रस्त हों तो पीछे का उभार एक दम स्पष्ट होता है। पर यदि कई एक कसेरु पिण्ड रोग ग्रस्त हों तो पीछे के उभार के क्रमिक होने से वह अधिक स्पष्ट नहीं होता। पृष्ठ वंशास्थि के इस प्रकार पीछे की ओर मुड़ जाने से पृष्ठ वंशास्थि के इससे उपरले भाग में कुछ पीछे की ओर [redacted] स्तब्धता हो जाने या Lardosis

की प्रक्रिया स्वभावत: हो जानी स्वाभाविक ही है। भली प्रकार चिकित्सा हो तो फिर कसेरु पिण्डों की खाई हुई (Rarefiod) अस्थि तथा उनके Granu-lations. के स्थान पर स्नायु तन्तु आता जाता है और वह रोग ग्रस्त कसेरुओं को परस्पर जोड़कर एक कर देता है अर्थात् वहां Fibroas Ankylosis हो जाता है फिर इस स्नायु तन्तु के स्थान पर अस्थि भाव(Ossification)के हो जाने से पूय भाव सर्वथा शुष्क हो जाता है और सर्व रुग्ण कसेरुओं में अस्थिभाव होकर रोग समाप्त हो जाता है। परन्तु कुछ कुब्जता तो रह जाती है।

युवकों में यह रोग कसेरु पिण्ड के Epiphysis में अर्थात् उसके Inter Vertebral Disc. के समीप के Anterior Longitudinal Ligament. के पीछे Periosteum के अन्दर आरम्भ होता है। इसलिये इसे Periosteal Form का पृष्ट वंशास्थि दाय कहते हैं। दूसरे शब्दों में केन्द्र में न होकर उसकी अगली दीवार में होता है। इसीलिये सन्धिगत टिकिया-Disc.-शीघ्र ही नष्ट हो जाती है तथा वहां पर पनीर भाव(Caseation) होकर Ant. Ligament के पीछे एक पूय युक्त दाय-विद्रधि बन जाती है। जहां से पूय दूसरी कसेरु अस्थियों के आसपास ऊपर नीचे की ओर फैल जाती है। इस विद्रधि के कारण सुषुम्ना काण्ड(Cord) पर दबाव पड़ जाने की आशंका विशेष रहती है।

इस विभिन्नता का कारण यह है कि बाल्यकाल में कसेरु पिण्ड (Body) को रक्त, कि जिसके द्वारा दाय जीवाणु कसेरु में आता है, पीछे की ओर से Posterior Spinal Artery की एक शाखा के द्वारा प्राप्त होता है और युवावस्था में कसेरुओं को रक्त आगे की ओर से Intercostal Arteries तथा Lumber Arteries की शाखाओं के द्वारा प्राप्त होता है,। इसलिये इनमें यह रोग कसेरु के अग्रिम भाग में होता है।

प्रारम्भिक लक्षण :-

बालक या युवक को पृष्ठ वंश में दाय रोग आरम्भ हो जाय तो उसे कमर में दर्द की शिकायत होती है। यदि बालक में कमर दर्द १५ दिन से अधिक रहे और किसी युवक में कमर दर्द तीन मास तक रहे तो इस रोग की आशंका करनी चाहिये या रीढ़ की हड्डी की गतिशीलता में कुछ कमी आ जाय तो भी इस रोग की ओर ध्यान जाना चाहिये। तथा यदि बालक क्रोधी, चिड़चिड़े स्वभाव का हो जाय, थोड़े श्रम से थक जाता हो, रात को कुछ ज्वर हो जाता हो तो X-Ray द्वारा परीक्षा करनी चाहिये। उसमें कोई Disc Space अर्थात् टिकिया वाला प्रदेश तंग हो तो भी शंका करनी चाहिये। यदि किसी युवक को अपनी टांगें कमजोर लगने लगें तो उसमें भी इस रोग के कारण अर्थात् कसेरु के पिण्ड के द्वारा या अधिकतः तो सुषुम्नावरण के सूज जाने और उसके कारण Cord के दब जाने से ऊरुस्तम्भ (Paraplegia) उत्पन्न हुआ समझना चाहिये।

या पृष्ठ वंशास्थि के पास या दूर कोई सवरी गोल सा उभार हो जाय तो भी इस रोग का सन्देह करके X-Ray द्वारा परीक्षा करनी चाहिये ।

रोग वृद्धि लक्षण :-

रोगी को झुकते समय या एक पार्श्व की ओर धड़ को मोड़ते समय या शरीर को झटका लगते समय कटि प्रदेश में दर्द होता है । इसी प्रकार रुग्ण कसेरु को पीछे से टकोरा जाय तो भी उस पर दर्द होता है । रुग्ण कसेरु पर ऊपर के धड़ के बोझ को बचाने के लिये रोगी बालक या युवक खेलना और चलना छोड़ कर लेट जाता है क्योंकि चलने फिरने पर उसे दर्द अधिक प्रतीत होता है ।

दर्द के अतिरिक्त प्रारम्भ में एक तो रुग्ण कसेरुओं के आसपास की मांस पेशियों में स्तम्भ के उत्पन्न हो जाने से तथा कुछ काल व्यतीत हो जाने के बाद रुग्ण हुए दो तीन कसेरुओं के परस्पर न्यूनाधिक जुड़ जाने से पृष्ठ वंश का लचकीला पन कम होता जाता है तथा स्तब्धता (Rigidity) का लक्षण उत्पन्न होता जाता है । कटि (Lumber) प्रदेश में यह रोग हो तो पीठ इतनी अकड़ी हुई हो जाती है कि धड़ को झुकाना या पीछे को फैलाना या एक बाजू की ओर फिराना कठिन हो जाता है । ग्रीवा कसेरुओं में रोग हो (Cervical Caries हो) तो एक ओर को देखने के लिये रोगी को अपना सारा शरीर फिराना पड़ता है, क्योंकि ग्रीवा में स्तब्धता होती है, वह उस ओर फिर नहीं सकती । अभिप्राय यह है कि रोग के प्रारम्भ में तो दुखने वाले कसेरुओं के पास के मांस प्रदेश में स्तम्भ होने से स्तब्धता होती है । परन्तु बाद में रुग्ण कसेरुओं में अस्थि संयोग (Ankylosis) हो जाने से स्तब्धता होती है ।

पृष्ट वंश की परीक्षा करने पर उसमें न्यूनाधिक विषमता (Deformity) का लक्षण भी रोगी में होता है । पृष्ट वंश के वक्षःप्रदेश (Thoracic Vertebrae) में रोग हो और एक दो कसेरुओं में ही रोग हो तो विषमता का लक्षण अधिक स्पष्ट होता है जो पीछे की ओर एक दम हुई कुब्जता (Kyphosis) के रूप में होता है । दो तीन बड़े बड़े कसेरुओं के परस्पर संयुक्त हो जाने से रोगी की ऊंचाई भी छोटी हो जाती है । देखने से पीठ पीछे की ओर खम खाये हुये (Hunch Back) दीखती है । स्पष्ट है कि उरोवस्थि (Sternum) के आगे की ओर खम खा जाने से और पसलियों के एक स्थान इकट्ठे हो जाने से छाती भी आगे की ओर उभरी हुई होती है । X-Ray चित्र में एक टिकिया (Disc) तंग हुई २ तथा समीपस्थकसेरु कुछ खाया हुआ दीखता है । Perisfinal Abscess भी दिखाई पड़ती है ।

उपद्रव :- (Tuberculous Abscess)

क्षाय विद्रधि (Tuberculous Abscess) की उत्पत्ति

इस रोग का एक उपद्रव है । बालकों में यह उपद्रव नहीं होता, युवकों में अधिक होता है । रोग ग्रस्त कशेरु पिण्ड के अग्र भाग में उत्पन्न हुआ पूय Anterior Common Ligament के आगे धकेल कर उसके पीछे जमा होता रहता है । मात्रा में बढ़ जाने पर उसमें से रास्ता करके फिर यह कशेरु के पार्श्व में संचित होने लगता है । वहां अधिक पूय के संचित हो जाने पर भी कोई विशेष लक्षण प्रकट नहीं होता । पहले पहल पृष्ठ वंशास्थि के बाजू पर पास या दूर एक शीतल विद्रधि – Cold Abscess – उठा हुआ दिखाई पड़ता है । रोगी को कोई विशेष दर्द भी नहीं होता । सांयकालिक तापमान की वृद्धि का एक लक्षण होता है । किसी Thoracic Spine में रोग हो तो यह पूय वहां से निकलने वाली Spinal Nerve के साथ साथ पसली के अन्दर की ओर चलकर बाजू में जहां Lateral Cutaneous Nerve त्वचा में आती है, वहां, इसके कारण एक पसली (Rib) में क्षय रोग (Caries) का उपद्रव हो सकता है और वहां त्वचा के नीचे क्षय विद्रधि प्रकट हो सकती है ।

निचले कशेरुओं (Thoracic Vertebrae तथा Lumber Vertebrae) में रोग हो तो कभी कभी Lumber Nerves तथा Vessels की Posterior Branches के साथ चलकर यह पूय Erector Spinae के बाहर के किनारों के समीप मध्यरेखा से २-३ इंच की दूरी पर कहीं पर Lumber Abscess के रूप में प्रकट होती है अथवा इस प्रदेश के कशेरुओं में उत्पन्न हुआ पूय Psoas Muscle के आवरण (Sheath) में प्रवेश कर उसके अन्दर अन्दर दूर तक चला जाता है ।(जिससे इसे Psoas Abscess कहते हैं ।) इससे इस मांस पेशी में स्तम्भ के हो जाने से और इस कारण वंक्षण सन्धि (Hip Joint) में संकोच के रहने से रोगी को उधर की टांग फैलाने में कठिनता होती है । कुछ काल बाद (Iliac Fossailiacus के खोल) में इस पूय के कारण एक गोल कठोर उभार अनुभव होने लगता है या फिर यह पूय Inguinal Ligament के पीछे से इसके नीचे वहां की रक्तवाहिनियों के बाहर की ओर एक उभार के रूप में प्रकट होती है या Iliopsoas की Tendon के साथ साथ चलकर नीचे Lesser Trochanter के पास उर्ध्व जंघा (Thigh) के अन्दर की ओर Adductor पेशियों के बीच में से एक बड़े उभार के रूप में प्रकट होती है । यदि यह पूय पीछे Internal Circumplex Artery के साथ साथ चली जाय तो Great Trochanter के पीछे त्वचा के नीचे विद्रधि के रूप में प्रकट होती है। या Iliac Fossa में से यह Ischiorectal Fossa में आकर प्रकट होती है ।

इस क्षय विद्रधि (Tuberculous Abscess) के प्रकट होने पर सांयकाल या रात को ज्वर होने का लक्षण होता है । इसमें वेदना आदि होने का कोई लक्षण नहीं होता । कुछ काल तक पूर्ण विश्राम करने से यह विद्रधि कम

होने लगती है। प्राय: पृष्ट कसेरुओं के अन्दर इस विद्रधि-Cold Abscess- के होने से तथा Articular Discs के भी ग्रस्त होने से सुषुम्ना काण्ड (Cord) के अग्रभाव पर दबाव पड़ जाता है जिससे उसके अग्रिम तथा पार्श्वीय प्रदेश (Anterolateral) पर विद्यमान Motortracts ही दबते हैं। इसी प्रकार Pedicles में या Laminae में रोग हो तो भी सुषुम्ना काण्ड (Spinal Cord) दब जाता है + जिससे दोनों टांगों में अशक्ति या उरुस्तम्भ (Paraplegia) का लक्षण हो जाता है अर्थात् धीरे धीरे करके दोनों टांगें निर्बल एवं स्तब्ध होती जाती हैं। कभी कभी विशेषत: युवकों में उरुस्तम्भ इस रोग के पूर्व रुप के तौर पर होता है + कभी कभी इस रोग के उपद्रव के रुप में होता है। जब यह पूर्व रुप के तौर पर होता है तब इसके प्रकट होने के कुछ काल बाद पृष्ठ वंश में क्षय रोग स्पष्ट हो जाता है। पृष्ट कसेरुओं (Thoracic Region) में यह रोग हो तो Deep Reflexes (जैसे Knee Jerk) तीव्र हो जाते हैं। किसी किसी रोगी में Spinal Foramena में दबाव के अधिक पड़ जाने से सुषुम्ना में से निकलने वाले नाड़ी मूल (Nerve Roots) दब जाते हैं जिससे धड़ में दूर तक जाने वाला दर्द (Girdle Pain) हो जाता है।

साध्यासाध्यता :-

कटि कसेरुओं (Lumber Vertebrea) के आकार में बड़े व दृढ़ होने से उन में रोग हो तो अधिक कष्ट दायक नहीं होता। वेदना तथा स्तब्धता के लक्षण विशेष होते हैं। ऊपर के पृष्ठ कसेरुओं (Thoracic Vertebrea) में रोग हो तो वहां Spinal Canal के अधिक तंग होने से Spinal Cord पर दबाव पड़कर दोनों टांगों में अशक्ति (Paraplegia) होने का भय रहता है। इस रोग की साध्यासाध्यता रोगी के इन लक्षणों जैसे तापमान, विष संचार, (Toxaemia) Intra Spinal Cold Abscess के Cord पर दबाव पड़ने से दोनों टांगों की अशक्ति (Paraplegia) की उत्पत्ति तथा इस रोग के कारण विद्रधि या नाड़ी व्रण (Sinus) के हो जाने या न होने पर निर्भर है।

(६) सन्धि क्षय :- Tuberculous Arthritis :-

क्षय प्रकृति के बालकों तथा युवकों में फुफ्फुस में से या किसी Bronchial अथवा Mesenteric Gland में से रक्त के द्वारा क्षय जीवाणु किसी आहत हुई सन्धि में संक्रमण कर सकता है। बालकों में सन्धि के निकट अस्थि के सिरे (Epiphysis) में यह रोग आरम्भ हुआ करता है। युवकों में यह सन्धि की Synonial Membrane में आरम्भ होता है। युवकों में जब किसी सन्धि में क्षय रोग होता है तो पहले Membrane में पिन के नक्के जितने जेलाटिन सदृश क्षयांकुर आ जाते हैं जिसके कारण यह झिल्ली फूलकर मोटी हो जाती है। फिर क्षयांकुरों में पनीर भाव (Caseation) होकर व्रण भाव हो

जाती है । इस प्रकार सूजकर या Tuberculous Granulation Tissue में परिवर्तित होकर यह Membrane सन्धि की तरुणास्थि (Articular Cartilage) के साथ जुड़ जाती है । जिससे वह भी इस रोग के कारण खाई जाती है । सन्धि की तरुणास्थि से रोग अस्थि के सिरे पर प्रसरण कर जाता है, अर्थात् उसमें भी Caries (पापुणास्थि) का रोग हो जाता है । सन्धि के बीच के प्रदेश में द्रव नहीं भरता प्रत्युत वह सन्धि इस फूली हुई झिल्ली से भरी रहती है । सन्धि के आसपास की मांस पेशियों तथा कण्डराओं (Tendons) में क्षीणता होकर जैलाटीन जैसा द्रव उत्पन्न हो जाता है (उनमें Gelatinous Degeneration हो जाता है) । इसी कारण सारी सन्धि फूली हुई तथा श्वेत वर्ण दीखती है । इसे श्वेत शोथ (White Swelling) कहते हैं । जब तक क्षय रोग Synovial Membrane में रहता है इस झिल्ली के मोटे हो जाने से सन्धि कुछ मोटी और स्पर्श में गर्म तो हो जाती है पर सन्धि की चेष्टा में कोई न्यूनता प्रतीत नहीं होती ना ही कोई वेदना होती है । पर जब इसके साथ अस्थि के सिरे पर भी शोथ प्रसरण कर जाता है तब सन्धि की चेष्ठा में वेदना का लक्षण भी हो जाता है जो रात को अधिक होती है । सन्धि के आसपास की मांस पेशियों में विष संचार (Toxaemia) के कारण शोष के हो जाने से सन्धि कुछ फूली हुई दीखती है । सन्धि में द्रव की मात्रा के बढ़ने से वह स्थूलता नहीं होती । रोगी में ज्वर या फुफ्फुस क्षय रोग के लक्षण नहीं होते पर ग्रीवा या उदर की लसीका ग्रन्थियों में शोथ पाया जाता है।

उचित चिकित्सा मिलने पर यह रोग अस्थि तक प्रसरण नहीं करता । जिससे सन्धि का केवल लचकीला पन ही कम होता है और कोई लक्षण नहीं होता । पर यदि सन्धिगत तरुणास्थि में रोग हो जाय तो सन्धि में स्तब्धता (Fibrous Ankylosis) होकर सन्धि की चेष्ठा नष्ठ हो जाती है यदि रोग शान्त न होकर बढ़ता जाय तो वहां पूय भाव होकर वहां से विष संचार (Toxaemia) बढ़ता है तथा इसके कारण व्यापक क्षय रोग (General Miliary Tuberculosis) होकर मृत्यु हो जाती है ।

वंक्षण सन्धि क्षय :- Hip Joint Tuberculosis :-

१०० अस्थि क्षय रोगियों में से ८-१० में वंक्षण सन्धि (Hip Joint) में यह रोग देखा जाता है तथा बालकों में यह रोग अधिकत: पाया जाता है । इस सन्धि में Acetabulum के बाहिर के आधे भाग तथा Femur के मुंड (Head) के ऊपर के सिरे पर यह रोग आरम्भ होता है । इसके आरम्भ होने पर सन्धि के अन्दर विनाशात्मक (Caseative) तथा रचनात्मक (Fibrotic या Proliferative) दोनों प्रकार की क्रियायें होती हैं । बालक में विनाशात्मक प्रतिक्रिया प्रबल होती है जिससे Femur के मुण्ड, तथा Acetabulum दोनों के कुछ भागों के नष्ट हो जाने से सन्धि का गढ़ा (Socket) कुछ बड़ा हो जाता है । इससे इस सन्धि में कुछ कुछ भ्रंश (Dislocation) हो जाता है ।

युवक में विनाशात्मक प्रक्रिया कम तथा रचनात्मक (Fibrotic or Proliferative) प्रक्रिया विशेष होती है ।

जब विनाशात्मक प्रक्रिया विशेष होती है (Caseation विशेष होता है) तब सन्धि के बीच में शीत विद्रधि (Cold Abscess) बन जाती है । जिसमें पूय बढ़ जाय तो Capsule को किसी निर्बल स्थान पर फाड़कर वह बाहर त्वचा पर विद्रधि के रुप में प्रकट होती है । Capsule के निचले प्रदेश से निकल कर यह सामने आती है । Iliopsoas और Pectineus के बीच बीच में चलकर Scarpa's Triangle में त्वचा पर प्रकट होती है । इसी प्रकार यह मांस पेशियों के बीच में चलकर Lesser Trochanter के पास या कठोर Fascia Lata के नीचे एक उभार के रुप में प्रकट हो सकती है । पीछे की तरफ, सन्धि में से यह पीछे की ओर निकले तो Gluteal Muscles के नीचे नीचे चलकर यह Greater Trochanter के समीप विद्रधि के रुप में प्रकट होती है ।

जब पनीर भाव (Caseation) या विनाशात्मक प्रक्रिया विशेष नहीं होती प्रत्युत रोहणात्मक प्रक्रिया विशेष होती है तब सन्धि में आये दाय जीवाणु के विपरीत स्नायु तन्तु (Granulation Tissue या Scar Tissue) उत्पन्न होने लगता है जो दो प्रकार का होता है । एक तो Tuberculous Granulation Tissue सन्धि के किनारे किनारे पर Synovial Membrane में उत्पन्न होता है । किनारों से प्रारम्भ होकर Membrane के केन्द्र तक फैलता हुआ यह सन्धि की तरुणास्थि (Articular Cartilage) को नष्ट कर देता है

सन्धि में विद्यमान दाय जीवाणु के विपरीत तरुणास्थि के पीछे अस्थिओं में एक और साधारण प्रकार का Granulation Tissue भी बनता है जिसे Non Tuberculous Sub-chondral Granulation Tissue. कहते हैं । इसमें दायांकुर नहीं बनते, यह केवल Lymphocytes तथा Plasma Cells से ही बनता है । जब इस रोग के कारण सन्धि की तरुणास्थि (Articular Cartilage) नष्ट हो जाती है तो अस्थियों में आमने सामने उत्पन्न हुये Granulation Tissue मिलकर Fibrous Tissue बन जाते हैं । इस प्रकार सन्धि की दोनों अस्थियां परस्पर जुड़कर स्थिर सी हो जाती हैं और यह रोहण प्रक्रिया होकर रोग शान्त हो जाता है । (अर्थात् इस सन्धि में Fibrous Ankylosis हो जाता है) जिससे जोड़ की गतिशीलता बहुत घट जाती है ।

लक्षण :-

बालक इस रोग के कारण एक टांग से लंगड़ाने लगता है तथा उसे एक उरुप्रदेश (Hip) में दर्द रहने लगता है । क्योंकि चलने फिरने से उस सन्धि में दर्द होता है । अतः बालक बहुत सा समय लेटा रहता है तथा

स्वस्थ पार्श्व पर ही लेटता है रुग्ण पर नहीं । जब कभी किसी बालक में ये लक्षण कुछ दिन तक रहें तो इस रोग की आशंका करनी चाहिये । इसलिये देखना चाहिये कि बालक की वंक्षण सन्धि की गति शीलता घट तो नहीं गई हैं क्योंकि सन्धि की मांस पेशियों में स्तम्भ के होने से सन्धि में स्तब्धता उत्पन्न हो जाती है और गतिशिलता घट जाती है । बालक की परीक्षा करने पर वंक्षण देश(Pelvis) रोग ग्रस्त सन्धि की ओर मुड़ा हुआ (Tilted) दीखता है । वंक्षण के उस ओर को मुड़ जाने से बालक की यह टांग देखने पर दूसरी स्वस्थ टांग की अपेक्षा कुछ लम्बी तथा मांस पेशियों के सुख जाने से अधिक कृश भी दिखाई पड़ती है । रोगी की कमर भी एक बाजू की ओर कुछ खम खा जाती है और रोग ग्रस्त टांग की ओर उन्नतोदर हुई २ दीखती है तथा कुछ आगे को भी खम खा जाती है जिससे Lordosis की विकृति भी हो जाती है । टांग को झटकाने या Trochanter पर टकोरने से बालक को सन्धि में दर्द प्रतीत होता है । Femur की Neck पर दबाने से अर्थात् Anterior Superior Spine के अन्दर तथा नीचे की ओर दबाने से बालक को दर्द प्रतीत होता है । बालक अपनी इस टांग को कुछ कुछ Abduction,Eversion तथा Flexion की अवस्था में रखता है । क्योंकि ऐसा रखने से Iliofemoral Ligament पर का तनाव घट जाता है ।एवं रोगी को दर्द में आराम रहता है । रोगी कमर के भार सीधा लेटे तो रुग्ण सन्धि की ओर की टांग कुछ संकुचित रहती है तथा रोगी की कमर टेबल से कुछ उठी हुई रहती है । इस रोग का निश्चय करने के लिये X-Ray परीक्षा भी करनी चाहिये । B.S.R. परीक्षा भी करनी चाहिये । तथा Synovial Biopsy अर्थात् Synovial tissue का एक सूक्ष्म खण्ड निकाल कर उसकी सूक्ष्म (Miscroscopic) परीक्षा करने से प्रत्यक्ष रुप से इस रोग का निश्चय हो सकता है ।

जानु सन्धि क्षय :- Tuberculosis of the Knee Joint :-

वंक्षण सन्धि की अपेक्षा भी किसी एक जानु सन्धि में क्षय रोग अधिक होता है तथा उसी के समान बालकों और २५ वर्ष तक के युवकों में विशेष पाया जाता है । इस सन्धि में क्षय रोग अधिकत: तो Synovial Membrane में प्रारम्भ होता है और कभी कभी सन्धि बनाने वाली अस्थियों के सिरों में विद्यमान Epiphysis में प्रारम्भ होता है । इस प्रकार Synovial किस्म के रोग में Synovial Membrane सूज जाती है एवं फूल जाती है (उसमें Hypertrophy और Oedema हो जाते हैं) इस Membrane में शोथ होने पर धीरे धीरे वह Granulation Tissue में बदल जाती है । सन्धि स्पर्श करने में गर्म प्रतीत होती है । दबाने से उसमें कुछ स्पर्शाक्षमता होती है । आसपास की मांस पेशियों के तो कृश हो जाने तथा Synovial Membrane के स्थूल हो जाने से यह सन्धि दूसरी ओर की स्वस्थ जानु सन्धि की अपेक्षा स्थूल हुई २ प्रतीत होती है । सन्धि में चेष्टा की गति

न्यूनता नहीं दिखाई पड़ती । रोगी को लिटा के देखने पर इस सन्धि में कुछ संकोच (Flexion) दिखाई पड़ता है । इसे Proliferative Type of Tuberculous Synovitis of the Knee कहते हैं ।

कभी कभी Synovial Membrane में स्राव (Exudation) विशेष होता है । वृद्धि विशेष नहीं होती । इसे Hydropic Type of Tuberculous Synovitis of the Knee कहते हैं ।

कभी कभी क्षय रोग Femur या Tibia के सन्धि करने वाले सिरों में उनके Epiphyses में प्रारम्भ होता है अर्थात् जहां उनमें Articular Capsule बन्धा हुआ है तथा उनके जो भाग Synovial Membrane से ढ़के हुये हैं उन सिरों में अस्थि के अन्दर क्षय विद्रधि बनती है । इस अवस्था में सन्धि में जल (Serous Effusion) उत्पन्न हो जाता है । सन्धि के मांस सूखने लगते हैं । चलने पर जोड़ में दर्द होता है । ग्रस्त अस्थि पर टकोरने से स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है । फिर मृत (Carious) अस्थि पर से पृथक् होकर तरुणास्थि भी नष्ट हो जाती है और दोनों अस्थियों के सिरों पर उत्पन्न Granulation Tissues के परस्पर मिल जाने से Fibrous XXX Ankylosis होकर सन्धि में स्थिरता उत्पन्न हो जाती है । इसे Osseous Type of Tuberculosis of the Knee कहते हैं । जब तक क्षय रोग का प्रभाव अस्थि के सिरे पर ही रहता है अर्थात् जब तक श्रम करने पर दर्द होने का या वहां की मांस पेशियों में कृशता का लक्षण आरम्भ होता है तब तक यह रोग सुख साध्य है ।

(१०) मस्तिष्क क्षय, क्षय मूर्छा Tubercular Meningitis अथवा Meningeal Type of General Miliary Tuberculosis :-

कारण :-

बालकों में मूर्छा या निद्रालुता के साथ होने वाला ज्वर प्रायः क्षय रोग जनित होता है । पांच छः वर्ष से नीचे की आयु के बालकों में कभी कभी या तो फुफ्फुस में विद्यमान किसी क्षय रोग ग्रस्त लसीका ग्रन्थि (Peritracheal Caseous Lymph Gland) से या कभी कभी किसी क्षय रोग से ग्रस्त आंत्र ग्रन्थि (Mesenteric Gland) से क्षय-जीवाणु रक्त के द्वारा मस्तिष्क में पहुंचकर मस्तिष्क क्षय का कारण हो जाता है । फुफ्फुस गत कोई लसीका ग्रन्थि क्षय के कारण सूजकर समीपस्थ शिरा के साथ जुड़ जाती है । फिर रोमान्तिका (Measles) या संक्रामक कास (Whooping Cough) के कारण जब इस ग्रन्थि में क्षय रोग बढ़ता है तो वह उस शिरा में खुल जाती है । जिससे क्षय जीवाणु रक्त द्वारा सर्व अंगों में प्रसरण कर जाता है । परन्तु कभी कभी इसे शिर में रोहण करने का अवसर मिल जाता है । सम्भवतः सिर पर किसी चोट लगने के ब

बाद ऐसा होता है। तब पहले तो ये वहां रक्तवाहिनियों के अन्दर रोग उत्पन्न करते फिर आसपास Piamater तथा Arachnoid Mater पर दायांकुर उत्पन्न करते हैं अर्थात् मस्तिष्क में दाय रोग जनित Leptomeningitis हो जाता है। इस रोग में सूक्ष्म रक्तवाहिनियों की अन्तस्तर में शोथ या Endarteritis की विकृति होती है जिससे आसपास के मस्तिष्क का पोषण बन्द हो जाता है एवं वह मृदु (Soft) हो जाता है।

विकृति :-

छोटे बालकों और नवयुवकों में होने वाले इस मस्तिष्क दाय रोग में मस्तिष्क के तले (Base) पर दोनों Cerebral Peduncles के बीच के प्रदेश में आगे Chiasma से लेकर पीछे Cerebellum तक के प्रदेश में Piaarachnoid Membranes पर छोटे छोटे से दायांकुर निकलते हैं, मस्तिष्क के तले पर विद्यमान धमनियों के आसपास में बहुत अधिक होते हैं। Ventricles की दीवार में तथा Choroid Plexus पर भी ये निकलते हैं। Ventricles में तथा Piaarachnoid में दाय जनित शोथ के कारण Ventricles तथा Sub-arachnoid Space में चिप चिपा स्राव (Fibrinous Exudate) बहुत अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है जिसमें Lymphocytes, Polymorphs, Plasma Cells होते हैं। इससे शिर के अन्दर का भार (Intracranial Pressure) कुछ बढ़ जाता है। Optic Chiasma, Sylvius के Fissures (Lateral Sulcus) तथा पीछे Cerebellum और Pons के बीच के प्रदेश में यह द्रव बहुत अधिक भर जाता है। मस्तिष्क में मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव के बढ़ जाने से Hydro-cephalus का रोग भी कुछ कुछ होता है। द्रव के कारण मस्तिष्क नाड़ियों जैसे Optic Nerve, Oculomotor Nerve छटी मस्तिष्क नाड़ी, किसी के दब जाने के लक्षण हो सकते हैं। सुषुम्ना काण्ड (Spinal Cord) तथा सुषुम्ना के आवरणों (Meninges) में भी इस रोग के कारण दाय जनित अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं।

लक्षण :-

शिशु में यह रोग शीघ्रकारी (Acute) रूप में तथा नवयुवकों में चिरकारी (Chronic) रूप में होता है।

दोनों में ही इसका प्रारम्भ धीरे धीरे ऐसे अज्ञात रूप में होता है कि इसका पता ही नहीं चलता। मस्तिष्क में दाय जनित शोथ होकर मस्तिष्क सम्बन्धी लक्षण एक दो सप्ताह तक दिखाई पड़ें तो इस रोग का सन्देह कर लेना चाहिये। अर्थात् यदि बालक या युवक अपने खिलोनों या बाहर की वस्तुओं में रुचि का परित्याग कर उदासीन सा होकर बिना बोले तन्द्रा या अर्ध निद्रा में चिरकाल तक पड़ा रहता दीखता हो अर्थात् उसमें मानसिक परिवर्तन हो

गया हो तो मस्तिष्क क्षय रोग की आशंका हो जानी चाहिये। इस रोग में मस्तिष्क के अन्दर क्षय जनित शोथ होने से मस्तिष्क के सभी केन्द्र (Sensory, Motor, Medullary, Vasomotor, Mental) न्यून या अधिक रूप में विक्षुब्ध (Irritated) रहते हैं। इसलिये मस्तिष्क सम्बन्धी विक्षोभ को देखकर इस रोग की आशंका कर लेनी चाहिये। इस रोग के प्रारम्भ में ही शिशु या युवक, स्पर्श, शब्द, प्रकाश आदि से शीघ्र विक्षुब्ध हो जाता है। हमारे स्पर्श करने या उसके मुख पर से कपड़ा हटाने या बुलाने को भी पसन्द नहीं करता। वह क्रोधी, चिड़चिड़ा, असहनशील हो जाता है। क्षय रोग के विष (Tuberculoprotein) के दुष्प्रभाव से उसे न्यूनाधिक ज्वर, कृशता, और क्षुधा नाश के लक्षण तो होते ही हैं इनके साथ साथ मस्तिष्क में भार के बढ़ जाने अर्थात् (Intracranial Pressure) के बढ़ जाने से शिर दर्द रहता है तथा चौथे Ventricle के तले में विद्यमान वमन केन्द्र (Vomiting Centre) के विक्षुब्ध हो जाने से बिना खाये भी वमन हो जाने का लक्षण रहता है। मस्तिष्क के चेष्टा केन्द्रों (Motor Centres) के विक्षुब्ध रहने से ग्रीवा, कटि तथा शाखाओं की मांस पेशियों में स्तब्धता (Spasm, Rigidity) का लक्षण रहता है। सम्भवत: आंतों में स्तब्धता के कारण मलबन्ध होता है। शिशु शिर दर्द के कारण कभी कभी चीख उठता है। ऐसी चीख सुन के सिर दर्द का सन्देह करना चाहिये। मस्तिष्क के Cortex में विद्यमान चेष्टा क्षेत्र (Motor Area) में विक्षोभ होने के कारण बालक या युवक रोगी में आक्षेप (Convulsions) भी हो सकते हैं। यह आक्षेप किसी एक अंग में होता या सारे शरीर में हो सकता है। मस्तिष्क में विक्षोभ के कारण जहां बालक चिड़चिड़ा हो जाता है वहां रात को दांत कटकटाने का लक्षण भी होता है।

इस प्रकार एक बालक या युवक में जो किसी क्षय रोगी माता पिता की सन्तान हो या जिसे रोमान्तिका (Measles) का रोग हो चुका हो या जिसे क्षय रोग होने की आशंका हो यदि ये अर्ध निद्रा में चुप चाप पड़े रहने, सिर दर्द से चीख उठने, वमन, मलबन्ध, अंगों के कुछ स्तब्ध होने तथा आक्षेप के लक्षण दो तीन सप्ताह से चले आते हों तो शीघ्र मस्तिष्क क्षय रोग का सन्देह करना चाहिये। इस प्रारम्भिक अवस्था में चिकित्सा करने से वह ठीक हो सकता है। विलम्ब हो जाने पर जब यह रोग एक दो मास रह जाय तो उसे बचाना कठिन हो जाता है, बच भी जाय तो कोई न कोई स्थायी उपद्रव रह जाता है।

इस रोग की इस प्रथम अवस्था को विक्षोभावस्था (Irritative Stage of Tuberculous Meningitis) कहते हैं। इस अवस्था में बालक या युवक कपड़ा लेकर, पेट में गोडों को सकोड़कर, ग्रीवा को कुछ पीछे की ओर अकड़ा कर, एक बाजू पर, अर्ध निद्रावस्था में, चुपचाप पड़ा रहता है। मस्तिष्क के तले (Base) पर शोथ होने के साथ साथ Cervical Spinal Cord के आवरणों

(Meninges) में दाय शोथ होने से ग्रीवा [illegible] की मांस पेशियों में स्तम्भ रहता है। रोगी की उरु पश्चिम पेशियों या Hamstrings में भी स्तम्भ रहता है। इसलिये यदि टांग को गोड़े पर सीधा करके पेट पर सकोड़ना चाहें तो रोगी ऐसा करने नहीं देता। (Mernig's Sign) | इसी प्रकार यदि उसकी ग्रीवा को आगे की ओर झुकायें तो रोगी के एक या दोनों उरुओं और गोड़ों में भी संकोच (Flexion) की क्रिया हो जाती है (Brud Zinski's Sign) । शरीर की मांस पेशियों में तनाव के रहने के कारण गहरे प्रतिक्षेप (Tendon Reflexes) बढ़े हुये होते हैं। Plantar Reflex भी नीचे की तरफ न होकर ऊपर की तरफ (Extensor) हो जाता है। कोष्ठ की दीवार की मांस पेशियों में स्तंभ होने से पेट बीच में पिचका हुआ (Scaphoid) होता है। पुतली की मांस पेशी में स्तम्भ होनें से पुतली संकुचित होती है। सिरा नियामक केन्द्र (Vasomotor Centre के विक्षोभ के कारण Tache Cerebrales का लक्षण अर्थात् त्वचा को जहां पर प्रबलता से टकोरा जाय वहां लाल चकत्ते के पड़ जाने का लक्षण होता है।

द्वितीय अवस्था Stage of Paralysis :- एक दो मास रोग की उपेक्षा की जाय एवं वह बढ़ता जाय तो मस्तिष्क के Ventricles तथा Sub-arachnoid Space में द्रव की मात्रा बढ़ जाने से मस्तिष्क नाड़ियां (Cerebral Nerves) दब जाती हैं। दृष्टि नाड़ी (Optic Nerve) के दब जाने से दृष्टि की क्षीणता (Optic Atrophy) का उपद्रव हो जाता है। Optic Nerve के खोल में मस्तिष्क द्रव के अधिक बढ़ जाने से इस Nerve की शिरायें भी दब जायें तो नेत्र के Fundus में श्वयथु (Oedema) भी हो जाता है, इसे Papilloedema कहते हैं। Oculomotor Nerve पर दबाव पड़ने से आंखों की अन्दर की मांस पेशियों में घात (Paralysis) हो जाता है जिससे Squint तथा ऊपर की पलक के गिर जाने (Ptosis) के उपद्रव हो सकते हैं।

ज्यों ज्यों Meningitis बढ़ता [illegible] है निद्रालुता का लक्षण, मूर्छा (Coma) में परिवर्तित होता जाता है। पुतली फैल जाती है। बालक घन्टों तक एक ही अवस्था में [illegible] पड़ा रहता है। नाड़ी गति तथा श्वास गति तीव्र हो जाती है। मल मूत्र बिस्तरे पर ही निकलने लग जाते हैं। शरीर के अंग कुछ शिथिल (Flaccid) हो जाते हैं। इसे Paralytic Stage घात की अवस्था कहते हैं। यह अवस्था मृत्यु का सूचक होती है। ५०-७० प्र०श० के लिये यह रोग घातक होता है। बालक में दीर्घ ज्वर, तीव्र विष संचार, मांस पेशियों में स्तम्भ, कृशता को देखकर इस रोग का निश्चय किया जा सकता है।

मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव (Cerebrospinal Fluid) की परीक्षा करने पर उसका भार १५० M.M. H_2O से बढ़ा हुआ होता है। द्रव को थोड़ी देर रखने पर उसमें सूक्ष्म सूत्र जाल आ जाता है जो इस रोग का सूचक

सदाण होता है । सेल्स जिनमें प्रधानता Lymphocytes की होती है प्रति Cubic M.M. में ५-१० से अधिक होते हैं । Chlorides की मात्रा ७२५ मिलिग्राम प्रति १०० सी०सी० से गिर जाती है तथा घटकर ६०० मिलिग्राम तक भी हो सकती है । खाण्ड या ग्लूकोज़ की मात्रा घट जाती है अर्थात् प्रति १०० सी०सी० द्रव में ५० से ८० मिलिग्राम के स्थान पर १५-२० मिलिग्राम रह जाती है । द्रव में प्रोटीन की वृद्धि इस रोग में विशेष रूप में होती है । इस प्रकार इस द्रव की परीक्षा करने से इस रोग का निश्चय हो सकता है । इस द्रव की परीक्षा के द्वारा Typhoid से इसका भेद हो जाता है । यह एक घातक रोग है । २-३ सप्ताह तक मृत्यु हो जाती है । शीघ्र चिकित्सा प्रारम्भ करने पर रोगी बच सकता है ।

(११) क्षाय व्रण, चर्म क्षाय :- Cutaneous Tuberculosis Tuberculids :-

प्रारम्भिक क्षाय व्रण :- Primary Tuberculous Complex in the Skin :-

ऐसे बालकों की त्वचा में जिनमें क्षाय जीवाणु का संक्रमण कभी नहीं हुआ है जब पहले पहल त्वचा में ही इस जीवाणु का संक्रमण होता है तो संक्रमण स्थान पर एक कोठ (Papule) या छोटी ग्रन्थि (Nodule) निकल आती है । जिसके केन्द्र में मृत्यु (Necrosis) होकर व्रण सा हो जाता है क्योंकि यह व्रण फिरंग के प्रारम्भिक व्रण के समान होता है, इसे Tuberculous Chancre कहते हैं । इस प्रदेश का Lymph जिन लसीका ग्रन्थियों में जाता है उनमें से एक लसीका ग्रन्थि कुछ सप्ताहों के अन्दर अन्दर सूज जाती और पक जाती है । बहुधा इस पकी हुई ग्रन्थि को देखकर अर्थात् Primary Complex के Glandular Component को देखकर त्वचा में विद्यमान प्रारम्भिक व्रण (Primary Focus या Tuberculous Chancre) का पता लगता है । यह प्रारम्भिक व्रण (Primary Focus) कई महीनों के बाद या तो स्वयमेव अच्छा हो जाता है या यह छोटा Papule आगे कहे जाने वाले Lupus Vulgaris में परिवर्तित हो जाता है । इससे होने वाला ग्रन्थि शोथ (Adenitis) तो स्वयमेव ठीक हो जाता है ।

जीर्ण क्षाय व्रण, जीर्ण चर्म क्षाय :- Lupus Vulgaris :-

बहुत धीरे धीरे बढ़ने वाले त्वचा पर कुछ उठे हुये लाल, भूरे रंग के,सेव के गूदे (Apple Jelly) की तरह की छोटी छोटी ग्रन्थियों (Nodules) से बने हुये, किनारों पर बढ़ने वाले, क्षाय जीवाणु जनित व्रण को जीर्ण क्षाय व्रण (Lupus Vulgaris) कहते हैं । Lupus का शब्दार्थ भेड़िया होता है । अर्थात् जो व्रण भेड़िये की तरह मांस को खा जाय उसे Lupus Vulgaris कहा गया है ।

कारण :-

यह चिर स्थायी क्षाय व्रण निर्धन परिवारों के निर्बल

प्रकृति के बालकों या नवयुवकों में चेहरे पर, नाक, गाल, कान, ग्रीवा की या छाती के ऊपर के प्रदेश की या कभी कभी शाखाओं की त्वचा पर आरम्भ होकर बहुत धीरे धीरे बढ़ता है। यह रोग प्राय: १०-२५ वर्ष की छोटी आयु में आरम्भ होता है।

क्षाय जीवाणु नाक की श्लेष्म कला में उसके किसी क्षत प्रदेश से अन्दर प्रवेश करता है और लसीका वाहिनियाँ (Lymphatics) के द्वारा चेहरे की त्वचा में प्रसरण कर जाता है अथवा ग्रीवा में उत्पन्न किसी क्षाय ग्रन्थि (Cervical Gland) के पक कर खुल जाने से लसीका वाहिनियों के द्वारा ग्रीवा की त्वचा में प्रसरण कर जाता है। पृथ्वी पर घिसट कर चलने वाले शिशुओं में पृथ्वी पर पड़ा हुआ क्षाय जीवाणु बैठने की जगह या गोडों की त्वचा के क्षत प्रदेश में से सीधा अन्दर प्रवेश कर सकता है। इस अवस्था में क्षाय व्रण शाखाओं पर होता है। यदि बालक की प्रतिरोधक शक्ति दीर्ण हुई २ हो तो फुफ्फुस के अंदर की किसी क्षाय ग्रन्थि के पक कर किसी शिरा में खुल जाने से क्षाय जीवाणु जैसे सारे शरीर में प्रसरण करता है वैसे ही त्वचा में भी प्रसरण कर जाता है। जिससे त्वचा में अनेक क्षाय व्रण (Disseminate या Multiple Lupus Vulgaris) हो जाते हैं।

विकृति :-

क्षाय जीवाणु के अन्तश्चर्म (Dermis या Cutis) में आ जाने पर उसके विपरीत प्रतिक्रिया होकर त्वचा की सूक्ष्म शिराओं के आसपास वहां १-२ मिलिमिटर व्यास की अर्थात् पिन के नक्के के आकार की ग्रन्थियां (Nodules या Lupoma) बन जाती हैं। ये ग्रन्थियां अनेक क्षायांकुरों के मिलने से बनी होती हैं जिनमें से प्रत्येक क्षायांकुर ऊपर कहे गये Giant Cell Systems से बना होता है। एक ग्रन्थि के निकलने पर लसीका वाहिनियाँ (Lymphatics) के द्वारा आस पास संक्रमण होकर दूसरी ग्रन्थियां भी निकलती जाती हैं। इस प्रकार इनके समूह के कारण वह लाल, भूरे रंग का कुछ उठा हुआ एक क्षाय जनित चकत्ता (Patch) बन जाता है। इस चकत्ते के चारों ओर की त्वचा कुछ रक्त वर्ण होती है। यदि शीशे या Watch Glass से इस चकत्ते को दबाकर रक्त वाहिनियों में से रक्त को हटा दिया जाय तो त्वचा में विद्यमान श्वेत भूरे रंग की सेव के गूदे की सी [illegible] अर्ध पारदर्शक ये ग्रन्थियां (Nodules) स्पष्ट देखने में आती हैं।

लक्षण :-

Lupus या क्षाय व्रण के कारण कोई विशेष कष्ट नहीं होता। परन्तु एक बार प्रारम्भ होकर धीरे धीरे किनारों पर ग्रन्थियों के निकलते जाने से यह बढ़ता ही जाता है। प्रधानतया यह व्रण दो प्रकार का होता है। एक शुष्क क्षाय व्रण (Fibrotic Lupus Vulgaris) होता है जो किनारों

पर फैलता जाता है पर केन्द्र भागों के ठीक होता जाता है अर्थात् वहां घना Scar Tissue बन जाता है (Agminate Lupus) । यह चकत्ता(Patch) उभरा हुआ या व्रण युक्त नहीं होता । दूसरा कोई क्षय व्रण (Exudative Lupus Vulgaris) होता है । इसमें शोथ, उभार, लालिमा तथा व्रणभाव के लक्षण होते हैं । इसमें रोहण करने (Scar Tissue बनने) की प्रक्रिया बहुत कम तथा विनाशात्मक प्रक्रिया विशेष होती है । जब नाक, कान आदि के पास यह रोग होता है तब व्रण भाव के कारण इनके Cartilages खाये जाते हैं । एवं चेहरे पर विकलता (Deformity) हो जाने का लक्षण हो जाता है ।

(Ulceralive Lupus)

नासिका तथा मुख के आसपास यह रोग हो तो इनकी श्लेष्म कलाओं में भी अर्थात् नासा, दन्त, मांस, गालों, जिव्हा, तालु, गल, आदि की श्लेष्म कला पर भी काले भूरे से रंग के चकत्तों के रुप में या अंकुरों (Vegetation) के समूह के रुप में होता है, जिन पर कुछ कुछ व्रण भाव भी होता है । (Lupus of Mucous Membranes).

यह रोग बाल्यकाल में आरम्भ होकर चिरकाल तक रहता है । इनके क्षय जीवाणु जनित होने से रोगी युवक निर्बल रहता है । अन्त में इसके उपद्रव के रुप में उरःक्षय होकर मृत्यु हो सकती है । परन्तु कुरुपता और अंग विकलता इस रोग के स्पष्ट उपद्रव होते हैं ।

इस रोग का भ्रम फिरंग रोग के Gumma से हो सकता है पर वह रोग ३० वर्ष से ऊपर की आयु में होता है । वह अधिक शीघ्र कारी होता है । वह त्वचा, अस्थि, तरुणास्थि सभी को खाता है । उसके विपरीत यह रोग २० वर्ष से पहले होता है । चिरकारी होता तथा केवल तरुणास्थियों को खाता है । महा कुष्ठ (Leprosy) से भी इसका सन्देह नहीं होना चाहिये क्योंकि उस रोग में त्वचा पर स्पर्श ज्ञान, तथा शीतोष्ण का भेद भी नष्ट हो जाते हैं ।

Lupus Erythematosus :- का रोग जिसमें नाक के दोनों ओर गालों पर लालिमा होती है तथा कहीं कहीं बीच में Scar Tissue भी बना होता है इससे विभिन्न रोग है । वह दोनों ओर आमने सामने (Symmetrical) होता है, Lupus एक ओर ही हो सकता है । वह वर्षों रहकर भी अंग विकलता (Deformity) उत्पन्न नहीं करता । उसमें Watch Glass से देखने पर सेव के गूदे जैसे छोटे छोटे उभार या Nodules दिखाई नहीं पड़ते ।

इसका भ्रम Rodent Ulcer से भी नहीं होना चाहिये क्योंकि यद्यपि वह नाक के पास के प्रदेश में होता है । पर वह बड़ी आयु के व्यक्तिओं में ही अधिकतः पाया जाता है । कभी कभी नवयुवकों में भी हो सकता है

तथापि उसका पृष्ठ अधिक कठोर होता है । उसके किनारे भी कठोर होते हैं । Lupus Vulgaris बीच में कुछ कुछ शुष्क भी हो तो भी उसके किनारों पर मृदु उभार या Nodules होते ही हैं । वह रोग क्षाय जीवाणु जनित नहीं होता । चर्मक्षय चिरस्थायी- लक्षणों से हीन - आभ्यन्तर या बाह्य संक्रमण से उत्पन्न तथा Mantoux टेस्ट- देनेवाला होता है ।

(१२) ग्रन्थि क्षाय, गण्ड माला :- Glandular Tuberculosis, Tuberculous Lymphadenitis :-

३ से १५ वर्ष तक की आयु में लसीका ग्रन्थियों में क्षाय रोग होता हुआ पाया जाता है । Mediastinum तथा Mesentery में विद्यमान लसीका ग्रन्थियों के क्षाय रोग का वर्णन ऊपर हुआ है । सब लसीका ग्रन्थियों में से Mediastinum की ग्रन्थियों में यह रोग सबसे अधिक होता है । परन्तु उसका प्रत्यक्ष पता X-Ray के द्वारा Hilum की छाया के बड़े और घने हो जाने से लगता है । कभी कभी Mesentery की ग्रन्थियों में भी यह रोग होता है उनमें रोग हो तो कुक्षि शूल के लक्षण के अतिरिक्त पाण्डुता, कृशता, अशक्ति, भार की कमी के लक्षण रहते हैं । दाहिने Iliac Fossa में एक स्पर्शक्षम ढेर सा प्रतीत होता है ।

परन्तु दूसरे नम्बर पर यह रोग ग्रैवेय लसीका ग्रन्थियों में गण्डमाला (Tuberculous Cervical Lymphadenitis) के रूप में होता है जिन बालकों के Tonsils में चिरस्थायी शोथ रहता है एवं इनसे सम्बन्धित ग्रैवेय लसीका ग्रन्थियों में भी कुछ कुछ शोथ रहता है उनके गले में श्वास वायु के द्वारा प्रविष्ट हुआ क्षाय जीवाणु Tonsils में आकर नष्ट होने के स्थान पर इन्हीं को क्षाय रोग से ग्रस्त कर देता है अर्थात् रुग्ण Tonsils में तथा इनसे संबंधित ग्रैवेय ग्रन्थियों में क्षाय जीवाणु को वृद्धि करने के लिये उचित भूमि मिल जाती है । ऐसे Chronic Tonsillitis वाले बालक को रोमान्तिका (Measles) या संक्रामक कास (Whooping Cough) आदि कोई रोग हो जाय तो उसके कारण उसकी प्रतिरोधक शक्ति इतनी घट जाती है कि उसके Tonsils में क्षाय जीवाणु सुगमता से बढ़ जाता है फिर लसीका वाहिनियों के द्वारा Tonsillar Lymph Gland या Sternomastoid के अगले किनारे पर विद्यमान ग्रैवेय ग्रन्थियों में साधारणत: Upper Deep ग्रैवेय ग्रन्थियों में विशेषत: Digastric मांसपेशी के पश्चिम भाग और Jugular Vein के बने कोण में विद्यमान Jugl-odigastric ग्रन्थि में भी क्षाय जीवाणु संक्रमण कर जाता है । इसके कारण इस लसीका ग्रन्थि में उसके Lymphoid Corpuscles तथा स्नायु तन्तु या Fibrous Trabeculae में पर्याप्त वृद्धि हो जाने से वह आकार में बड़ी हो जाती है । फिर रोग बढ़ता जाय तो कुछ काल बाद ग्रन्थि में कई स्थानों (Foci) पर पनीर भाव या मृदु भाव (Caseation) की प्रक्रिया प्रारम्भ होकर वह बढ़ती जाती है । यहां तक कि कुछ महीनों बाद सारी ग्रन्थि में ही यह प्रक्रिया

हो जाती है । फिर गलने (Softening) की प्रक्रिया होकर सारी ग्रन्थि पक जाती है । पर उसका खोल (Capsule) स्नायु भाव की वृद्धि के कारण मोटा हो जाता है । अब कुछ काल बाद उस ग्रन्थि के खोल में भी शोथ हो जाता है । जिसके कारण वह दूसरी ग्रन्थियों तथा त्वचा, रक्तवाहिनियों आदि के साथ जुड़ जाती हैं फिर इसका पूय Deep Fascia तथा Platisma में से रास्ता करके त्वचा के नीचे आ जाती है जिससे ग्रीवा की त्वचा में उभार हो जाता है ।(Cold Abscess) त्वचा में मृत्यु (Necrosis) की प्रक्रिया के प्रसरण कर जाने से वह श्याम वर्ण हो जाती है और बाद में ग्रन्थि के अन्दर बन्द पनीर के द्रव होकर त्वचा पर खुल जाने से वहां नाड़ी व्रण (Sinus) बन जाता है । यदि रोहणात्मक प्रक्रिया विशेष हो, पनीर भाव (Caseation) न हो तो ग्रन्थि में वृद्धि (Hyperplasia) ही होती है या उसमें Calcification होकर वह कठोर हो जाती है इन दोनों अवस्थाओं में ग्रन्थि निरुपद्रव रहती है। व्रण भाव हो जाने पर भी यह रोग रोगी के लिये उपद्रवकारी नहीं होता । यहां से क्षय जीवाणु के फुफ्फुस में प्रसरण कर जाने का भय तो रहता है पर इन ग्रैवेय ग्रन्थियों में शूल या स्पर्शासहता (Tenderness) का या ज्वर उत्पन्न करने का कोई लक्षण नहीं होता ।

क्षय रोग की चिकित्सा :-

विश्राम चिकित्सा :- Bed Rest Treatment :-

इस रोग का रोगी विशेष वार्तालाप तथा उठने बैठने आदि सब प्रकार की शारीरिक चेष्टाओं का परित्याग करके शान्त भाव से शय्याशायी होकर पड़ जाय और इसी प्रकार कई सप्ताहों तक पड़ा रहे, मल-मूत्र आदि का विसर्ग तथा आहार जलपान आदि भी बिस्तरे पर लेटे हुये करे तो क्रमश: उसकी हृदय गति तथा श्वास गति मन्द एवं मन्दतर होती जाती हैं । रोगी अधिक निर्बल न हो तो मल-मूत्र त्याग के लिये उठ सकता है । फुफ्फुस की गतियों के घट जाने से उसमें होने वाले रक्त संचार की गति भी मन्द हो जाती है । जिससे वहां के रुग्ण स्थान से क्षय विष की जो मात्रा पहले रक्त में संचरित होती थी, वह भी क्रमश: घटती जाती है और उसकी असात्म्यता (Allergy) या विष संचार से होने वाले ज्वर, कृशता, अन्नारोचक आदि लक्षण क्रमश: शान्त होने लगते हैं । जितना ही विश्राम पूर्ण और पूर्णतर होता है उतना ही इन लक्षणों की शान्ति शीघ्र और शीघ्रतर होती है । इस चिकित्सा में दो तीन सेवक भृत्यों की आवश्यकता होती है जो बिस्तरे पर पड़े हुये रोगी की सर्व आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं । लगभग दो मास तक शय्या शायी होकर रहने पर तापमान, नाड़ी गति, तथा श्वास गति नार्मल हो जाते हैं, भूख बढ़ जाती है । रक्त कणों का Sedimentation Rate १० मिलीमीटर प्रति घन्टा के रेट से नीचे आ जाता है । लेटे लेटे शरीर में १७०० तथा साधारण श्रम करने पर शरीर में २५०० के लगभग केलोरी प्रतिदिन उत्पन्न होती हैं, इससे विश्राम का महत्व स्पष्ट हो जाता है ।

रोग साधारण हो तो १ या १½ मास के पूर्ण विश्राम से ज्वर शान्त हो जाता है। यदि रोग अधिक हो तो ३ मास के पूर्ण विश्राम से ज्वर आदि लक्षण शान्त हो जाते हैं। विश्राम से शरीर की प्राण शक्ति बढ़ जाती है। फुफ्फुस में उत्पन्न हुये क्षत को रोहण करने और उसे भरने की प्रक्रिया तीव्रतर हो जाती है अर्थात् विश्राम काल में शरीर की जीवनी शक्ति और भरण शक्ति को निर्विघ्न होकर अपने कार्य करने का अवसर मिलता है जिससे शरीर में होने वाला क्षति पूर्ति का कार्य दिन रात जारी रहता है। औषधियां तो केवल इस शक्ति की सहायता करती हैं, वस्तुत: फुफ्फुस के क्षत हुये प्रदेश का रोहण तो शरीर की अपनी प्रतिरोधक शक्ति के बढ़ जाने से होता है। अत: विश्राम चिकित्सा इस रोग की प्रधान चिकित्सा है। यहां तक कि बढ़ा हुआ रोग भी केवल विश्राम चिकित्सा से ठीक हो सकता है।

डेढ़ दो महीनों के पूर्ण विश्राम के बाद जब ज्वर आदि लक्षण शान्त हो जायें तब उसके पुस्तक आदि के अवलोकन करने और आधे घन्टे के लिये बैठकर भोजन करने की छुट्टी दे देनी चाहिये। ऐसा करने से ज्वर आदि लक्षण न बढ़ें तो फिर आधे घन्टे के स्थान पर एक घन्टे के लिये उठकर बैठने और इसी समय में बैठकर मल त्याग करने की छुट्टी भी दे देनी चाहिये। इस पर भी यदि ज्वर, कास, अन्नारुचि आदि कोई लक्षण प्रकट न हों तो इस उठकर बैठने के समय को क्रमश: दो, तीन, चार, पांच, छ: घन्टों तक बढ़ा देना चाहिये। इसे अर्ध विश्राम या अपूर्ण विश्राम चिकित्सा कह सकते हैं। इसे भी दो मास तक जारी रखना चाहिये। इस प्रकार यदि रोगी को किसी प्रकार की कौटुम्बिक चिन्ता या आर्थिक कष्ट न हो तो ४-५ मास की विश्राम चिकित्सा से उसको अवश्य आराम आ जाता है।

विश्राम चिकित्सा के बाद रोगी को क्रमश: चलने फिरने की छूट दी जाती है जिससे उसे लाभ ही होता है। ज्वर आदि कोई लक्षण फिर नहीं होता।

सेनिटोरियम चिकित्सा :-

विश्राम, खुली हवा, शीतल प्रदेश तथा पर्याप्त पौष्टिक आहार, ये सभी शरीर में उत्पन्न क्षति को पूर्ण करने वाले, रोग प्रतिरोधक, शक्ति के बढ़ाने वाले तथा निद्रा के बढ़ाने वाले भाव हैं। सेनिटोरियम में ये सभी रोगी को सुलभ होते हैं। इसलिये सेनिटोरियम चिकित्सा इस रोग की प्रधान चिकित्सा मानी जाती है। बन्द कमरे में विश्राम करने की अपेक्षा खुली हवा में शय्या शायी होकर रहना अधिक स्वास्थ्य वर्धक है। हवा, भूख के बढ़ाने वाली होती है। क्षय रोग में शरीर में हुई क्षति की पूर्ति के लिये प्रोटीन, भोजन जैसे मांस रस, दूध, दही, पनीर, दाल, अण्डे आदि पर्याप्त मात्रा में देने चाहियें। दूसरे नम्बर पर स्निग्ध तत्त्व अर्थात् घृत या मक्खन की आवश्यकता होती है। क्योंकि वह भी शरीर में हुई

क्षति को पूर्ण करता है । तीसरे नम्बर पर कार्बोहाईड्रेट आहार की आवश्यकता होती है । क्योंकि रोगी शारीरिक श्रम नहीं करता इसलिये इसका प्रयोग न्यून मात्रा में ही करना चाहिये । घृत युक्त मांस रस अथवा घृत युक्त दूध के प्रयोग से क्षय रोगी को विशेष लाभ होता है । इन तत्वों के अतिरिक्त Vitamin "C" की जो कि क्षतों के रोहण करने में सहायक होता है रोगी को आवश्यकता रहती है । इसके लिये फल रस तथा ५० से १५० मिलिग्राम तक Ascorbic Acid प्रतिदिन देना चाहिये । शरीर के आवरणों (Epitheliams) पर होने वाले क्षतों की पुर्ति के लिये Vitamin "A" सहायक होता है इसलिये Cod Liver Oil. ½ औंस या Haliverol १-२ ड्राम प्रतिदिन देना चाहिये । इसके अतिरिक्त Multi-vitamin तथा केल्सियम का प्रयोग करना चाहिये । इस प्रकार जहां खुली हवा, विश्राम और पौष्टिक भोजन अनायास रोगी को मिल सकते हैं ऐसे सैनिटोरियम का निवास इस रोग के लिये उत्तम चिकित्सा मानी जाती है । छ: महीने या १२ महीने के नये उत्पन्न हुये Pneumonic Type के उर:क्षय के लिये विश्राम चिकित्सा या सैनिटोरियम चिकित्सा से बड़ा लाभ होता है ।

क्योंकि सैनिटोरियम चिकित्सा के दौरान में रोगी का तापमान तथा नाड़ी गति प्रति चार चार घन्टों के बाद देखी जाती है, प्रति १५ दिन के बाद भार लिया जाता है, प्रति एक मास के बाद थूक की परीक्षा तथा Blood Sedimentation Rate, Differential Count तथा Radiography की जाती है, इसलिये रोग में कितना सुधार हो रहा है इसका भी ठीक ठीक पता चलता रहता है ।

औषध चिकित्सा :-

Streptomycin S.A. Walksman (१९४५) का Sulphate Salt श्वेतवर्ण घुलन शील होता है । एक एक ग्राम की मात्रा में छोटी छोटी शीशियों के अन्दर बन्द मिलता है । इसकी १ ग्राम मात्रा में १० लाख Units होते हैं । इसकी एक Microgram मात्रा को १ Unit कहते हैं । इसकी दैनिक मात्रा १ ग्राम होती है । जिसे ४-५ सी०सी० Double Distilled Water या Saline में मिलाकर फिर इसे दो भागों में विभक्त करके १२-१२ घन्टे बाद मांस द्वारा अर्थात् Gluteus या Deltoid किसी मांस पेशी में दिया जाता है । अथवा दो बार देना कठिन हो तो एक बार ही दिया जासकता है । देने के एक घन्टे के अन्दर अन्दर यह औषधि सम्पूर्ण रक्त में व्याप्त हो जाती है और ८ घन्टे तक Cerebrospinal द्रव में पूर्ण मात्रा में रहती है और व्याप्त होने के बाद मूत्र द्वारा निकलने भी लग जाती है । और २४ घन्टे में सब बाहिर निकल जाती है । क्योंकि यह बाहिर निकलने लग जाती है, इसलिये १२-१२ घन्टों के बाद दी जाती है, ताकि रक्त में यह बराबर बनी रहे। बालकों में उनके प्रति किलोग्राम भार के पीछे ३० मिलिग्राम दैनिक मात्रा में मांस द्वारा दी जाती है ।

रक्त के द्वारा यह औषधि " दाय दात " प्रदेश तक पहुंचती है और वहां बढ़ते हुये जीवाणुओं को नष्ट करके उनकी होने वाली वृद्धि को रोक देती है। इस प्रकार यह एक जीवाणु रोधक (Bactericstatic) औषधि है। जीवाणु वृद्धि के बंद हो जाने से ज्वर, शोष, अन्नारोचक आदि लक्षण शान्त होने लगते हैं। परन्तु फुफ्फुस आदि के दात हुये प्रदेश का रोहण या पुरण तो शरीर की अपनी शक्ति के द्वारा ही होता है, + जो विश्राम, खुली हवा, तथा पौष्टिक भोजन के द्वारा बढ़ती है। अर्थात् यह औषधि विश्राम चिकित्सा या सेनिटोरियम चिकित्सा की सहायक होती है।

तीव्र तथा प्रारम्भिक रुप में विद्यमान दाय रोग (Acute या Sub-acute रुप में विद्यमान Caseous या Tuberculous Pneumonia, Broncho Pneumonia) के लिये यह औषधि विशेष लाभदायक होती है। क्योंकि इस रुप में रुग्ण प्रदेश की रक्तवाहिनियां अभी अवरुद्ध (Thrombosed) नहीं होतीं जिससे यह औषधि जीवाणु ग्रस्त प्रदेश तक भलीप्रकार पहुंच जाती है। परन्तु जब फुफ्फुस का एक बड़ा प्रदेश मृत (Necrosed) हो जाय, उसमें Vascular Thrombosis हो गया हो अथवा वहां गुहभाव (Cavitation) हो गया हो तो वहां रक्तवाहिनियों द्वारा जब यह औषधि पहुंच ही नहीं पाती तो इससे लाभ की आशा नहीं की जा सकती। फुफ्फुस के अन्दर हुये ■■■■ मरण (Necrosis तथा Cavitation) को तो विश्राम चिकित्सा से ही आराम आ सकता है। इसी प्रकार Fibrosis तथा Emphysema से युक्त फुफ्फुस दाय रोग में भी इससे कोई स्थायी लाभ नहीं हो सकता तथापि तीव्र दाय रोग (Acute Exudative Tuberculosis) के लिये यह एक उत्तम औषधि है। इसके १ ग्राम की दैनिक मात्रा में मांस द्वारा देने से ज्वर हलका ही हो तो वह तीन चार दिन में शान्त हो जाता है। ज्वर आदि लक्षण ■ अधिक उग्र रुप में हों तो इस औषधि के एक दो सप्ताह के प्रयोग के बाद वे शान्त हो जाते हैं। फुफ्फुस में उत्पन्न हुआ शोथ शीघ्र शान्त हो जाता है। तथा दात हुआ प्रदेश यदि छोटा ही हो तो वह भी भरने लगता है तो भी इस औषधि के कार्य करने की एक सीमा है। उससे आगे इसके द्वारा सफलता नहीं मिलती। इस प्रकार इस औषधि को दैनिक १ ग्राम की मात्रा में १½ या २ मास तक देने के बाद फुफ्फुस का रुग्ण प्रदेश X-Ray द्वारा देखने पर पर्याप्त साफ हुआ पाया जाता है। रोग के लक्षणों के शान्त हो जाने पर अथवा १½ मास के बाद जब फुफ्फुस के दात प्रदेश का रोहण प्रारम्भ हो जाता है तब इसे सप्ताह में ३ बार अर्थात् एक एक दिन छोड़ कर देना चाहिये तथा एक बार में ५-६ मास तक ही इसे जारी रखना चाहिये। यह औषधि मस्तिष्क की अष्टम नाड़ी (Eighth Nerve) के लिये कुछ विषैली है जिससे विशेषत: उसकी Vestibular Branch पर विषैला प्रभाव होकर शिरोभ्रम (Vertigo) का उपद्रव विशेषत: खड़े होने पर होने लगता है या सहसा किसी चेष्टा करने पर

सिर करा जाता है । अतः बाद में इसे सप्ताह में तीन बार ही देना चाहिये । ४० वर्ष से ऊपर के व्यक्तियों तथा रोग मृदु रूप में हो तो इस औषधि का प्रयोग प्रारम्भ से ही सप्ताह में तीन बार करना चाहिये । Streptomycin आधा ग्राम तथा Dihydrostreptomycin आधा ग्राम मिलाकर बनाई गई दवाई (Ambistryn) का प्रयोग करने से उपद्रव कम होते हैं । Dihydrostreptomycin. का दुष्प्रभाव श्रवण नाड़ी (आठवीं की Cochlear शाखा) पर विशेष होता है । अतः उसका अकेला प्रयोग भी अधिक नहीं किया जा सकता । जब थूक में क्षय जीवाणु मिलना बन्द हो जायें इस औषधि का प्रयोग भी बन्द कर देना चाहिये ।

(२) Para Aminosalicylic Acid or Sodium Amino Salicylate(P.A.S) पहले पहल जर्मनी में Lehman ने १९४६ में इस औषधि को क्षय रोग के लिये उपयोगी बताया था । वस्तुतः यह क्षय रोग विनाशक एक मृदु एवं निरुपद्रव औषधि है । यह भी रक्त द्वारा क्षत प्रदेश में पहुंचकर जीवाणु वृद्धि को रोकने का कार्य करती है । इसके दो सप्ताह तक प्रयोग करने से क्षय रोगी के ज्वर, कास, बलगम तथा बढ़ा हुआ Blood Sedimentation Rate सभी घट जाते हैं तथा एक मास बाद रोगी की अवस्था पर्याप्त सुधर जाती है ।

मुख द्वारा यह औषधि दी जाती है तथा खाने के बाद आधे घन्टे में ही यह सम्पूर्ण रक्त में व्याप्त हो जाती है तथा खाने के तीन घन्टे बाद मूत्र द्वारा बहुत कुछ शरीर से निकल जाती है । रक्त में इसकी मात्रा हर समय बनी रहे और जीवाणु नष्ट होतेरहें, इस उद्देश्य से प्रति चार घन्टे के बाद दिन में चार पांच बार इस औषधि का प्रयोग किया जाता है । प्रायः Streptomycin. के सहायक रूप में ही उसके साथ साथ इसका प्रयोग किया जाता है । Streptomycin का अकेले ही प्रयोग चार मास तक प्रतिदिन किया जाय तो क्षय जीवाणु इतने हठी या धृष्ट हो जाते हैं कि उन पर फिर इस औषधि का प्रभाव ही नहीं होता । इस दोष के निवारण के लिये Streptomycin को १½,२ मास तक प्रति दिन देने के बाद फिर सप्ताह में २-३ बार ही दिया जाता है तथा P.A.S.(Pas Dumex Granules) नामक इस औषधि को पहले पांच ग्राम दैनिक मात्रा में और फिर क्रमशः उसे बढ़ाते हुये १०-१५ या १६ या २० ग्राम दैनिक मात्रा तक पहुंचा दिया जाता है । दैनिक मात्रा को बार बार चार भागों में विभक्त करके ३-४-५ ग्राम की मात्रा में प्रातः ६ से सांय ६ बजे तक चार बार करके भोजन बाद दिया जाता है । Streptomycin को जब सप्ताह में तीन बार कर दिया जाता है तब भी इस औषधि को प्रतिदिन जारी रक्खा जाता है। इसकी जो मात्रा अरुचि कारक हो वह अधिक समझनी चाहिये । केवल इसी औषधि का प्रयोग १½,२ मास के बाद भी जारी रक्खा जाय तो भी क्षय जीवाणु हठी हो जाते हैं । यद्यपि Streptom. के समान यह Resistance स्थायी

नहीं होती परन्तु दोनों औषधियों का साथ साथ प्रयोग करने से क्षय जीवाणु शीघ्र हठी नहीं होते प्रत्युत बहुत देर के बाद हठी होते हैं तथा रोगी की अवस्था में सुधार भी अधिक शीघ्रता से होता है । बालक के प्रति किलो भार के पीछे आधा ग्राम इसकी दैनिक मात्रा होती है । Isoniazid के साथ इसे प्रति दिन ५ ग्राम मात्रा में दो बार देना ही पर्याप्त होता है । इसके बुरे स्वाद को छिपाने के लिये इसे Dragees, Cachets आदि रूपों में दिया जाता है । इस औषधिका दुष्प्रभाव आमाशय पर पड़ सकता है जिससे अरुचि या वमन के लक्षण हो सकते हैं । ऐसा होने लगे तो इसकी मात्रा कुछ कम कर देनी चाहिये ।

(३) Isonicotinic Acid Hydrazide (Isoniazid, Tibizide, Isonex, Pulmizide, Marsilid, Pelazid) -- इस औषधि का प्रयोग पहले पहल (Cornell, Sea view hospitals) १९५२ में हुआ । यह औषधि भी क्षय जीवाणु के लिये घातक (Bactericidal) है । यह P.A.S. से अधिक प्रबल तथा Streptomycin के तुल्य बल वाली औषधि कही जाती है । खाने के आधे घन्टे के अन्दर यह रक्त में, Cerebrospinal Fluid तथा Pleural Exudation में फैल जाती है । Macrophages में भी जिनमें जीवाणु बन्द होते हैं यह औषधि पहुंच जाती है । केवल इसके प्रयोग से भी लाभ होता है । परन्तु तीन मास बाद क्षय जीवाणु हठी (Resistant) हो सकते हैं । जब Streptomycin या P.A.S. इसमें से किसी के साथ साथ इसका प्रयोग जारी रक्खा जाता है तो इस सहयोग के (Synergistic) रूप में १८ से २४ मास तक निश्चिन्त होकर इसका प्रयोग कर सकते हैं । क्योंकि फिर यह दुष्परिणाम शीघ्र न होकर देर बाद होता है । रोगी के प्रति किलोग्राम भार के पीछे इस औषधि की ३-५ मिलिग्राम दैनिक मात्रा दी जाती है । इस हिसाब से युवक के लिये लगभग २००-३०० मिलिग्राम की इसकी दैनिक मात्रा होती है । जिसे दो या तीन भागों में विभक्त करके ८-८ घन्टों के अन्तर से देते हैं । दो तीन सप्ताह देने से ज्वर, अन्नारोचक, कास, बलगम अशक्ति आदि लक्षण शान्त हो जाते हैं । एक से ४ मास में थूक में जीवाणु नहीं रहते साथ ही १ ग्राम Streptomycin को दो बार करके प्रात: सांय प्रतिदिन मांस द्वारा दिया जाता है । इस प्रकार Isoniazid एक उत्तम सहायक (Adjuvant) औषधि है । इसके साथ Streptomycin को लगभग तीन महीने तक निश्चिन्त होकर दे सकते हैं । क्योंकि इसके साथ देने से भी क्षय जीवाणु के हठी कीटाणु (Resistant Strains) शीघ्र उत्पन्न नहीं होते । जीर्ण क्षय रोग में Isoniazid से विशेष लाभ नहीं दीखता । तीव्र क्षय रोग में अर्थात् Millary Tuberculosis में विशेष लाभ होता है । इसीलिये क्षय रोग जनित Meningitis में विशेष उपयोगी है । प्रति किलोग्राम भार के पीछे इस अवस्था में इसकी १० मिलि० दैनिक मात्रा है । इस औषधि से कोई विशेष दुष्प्रभाव नहीं होता । बहुत कम अवस्थाओं में इसका प्रभाव Peripheral Nerves

([illegible] C.S.F. के मार्ग में अवरोध हो सकता है। [illegible] ही steroids (Betamethasone, hydrocortisone, Prednisone) के प्रयोग से लाभ हो जाता है। तीव्र रोगियों में Intrathecally इसे दि देना चाहिए।

Isathizone

पर कुछ बुरा हो सकता है । जबकि इस २०० मिलि० दैनिक से अधिक मात्रा में चिरकाल तक दिया जाता है । इसी प्रकार मानसिक विक्षोभ शीलता का दुर्लक्षण भी हो सकता है । तब Pyrodoxine का प्रयोग करने से यह दुर्लक्षण शांत हो जाता है + जिसे २५ मिलि० मात्रा में प्रतिदिन दिया जा सकता है ।

(४) Cortisone Therapy:- Prednisolone १० मिलि० के दिन में २ बार १,१½ मास तक उपर्युक्त औषधियों के साथ देने से रोगी को और भी शीघ्र लाभ होने लगता है तथा इनके दुर्लक्षण भी नहीं होते तथा Corticotrophin के ३० यूनिट मात्रा में दो सप्ताह में एक बार देने से भी इसी प्रकार लाभ होता है । ये (तन्त्वाभ) Collagen की वृद्धि या Fibrosis को रोक के उपकारी होते हैं ऐसा प्रतीत होता है ।

उर:क्षय रोग की जीवाणु नाशक चिकित्सा :- (Chemotherapy for Pulmonary T.B.) :-

पहले उर:क्षय रोगी को Streptomycin (अथवा Strepto Hydrostreptomycin) १ ग्राम मात्रा में मांस द्वारा, P.A.S. ४-५ ग्राम मात्रा में ४ बार तथा Isoniazid १०० मिलि० मात्रा में २ बार मुख द्वारा प्रति दिन दे दिये जाते हैं । इनके देने से पहले रोगी का थूक प्रयोग शाला में इस जांच के लिये भेज दिया जाता है कि इनमें से कोई ऐसी औषधि तो नहीं जिसका उसकी थूक में पाये जाने वाले क्षय जीवाणुओं पर प्रभाव ही न हो, (Drug Sensitivity की परीक्षा) उदाहरणत: सम्भव है कि रोगी के जीवाणुओं में इनमें से किसी जैसे Isoniazid के लिये प्रतिरोधक शक्ति हो ऐसी अवस्था में यदि रोगी को P.A.S. नहीं दिया जाता है तो रोगी के जीवाणुओं में Streptomycin के लिये भी ३ मास बाद प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो सकती है । अत: ३ महीनेतक जब तक कि प्रयोग शाला का परिणाम मिलता है तीनों औषधियों का साथ साथ प्रयोग जारी रखा जाता है क्योंकि यदि कोई रोगी इनमें से किसी एक औषधि का ही सेवन करता है तो कुछ काल बाद उसके जीवाणु इस औषधि के प्रति हठी हो जाते हैं और उन हठी जीवाणुओं से फिर जिन व्यक्तियों में इस रोग का संक्रमण होता है उन पर भी उस औषधि का कोई प्रभाव नहीं रहता । इस प्रकार केवल एक औषधि का सेवन करना अपने लिये ही नहीं, दूसरों के लिये भी खतरे का कारण हो जाता है । तीन मास बाद यदि यह पता लगता है कि रोगी के जीवाणुओं पर तीनों औषधियों का प्रभाव है तब आगे के लिये रोगी को Isoniazid १०० मिलि दिन में २ बार, P.A.S. ५ ग्राम दिन में दो बार पर ही रखा जाता है । इतनी P.A.S. की मात्रा से रोग जीवाणुओं में Isoniazid के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न नहीं होती (केवल इन दो औषधियों के देते रहने से ही ६० प्र.श. रोगी अच्छे हो जाते हैं) । परन्तु यदि थूक की परीक्षा करने पर पता [illegible] X-Ray परीक्षा से पता लगे कि

पुफ्फुस में गुहा अब भी है तो Streptomycin का १ ग्राम की मात्रा में शेष दोनों औषधियों की उपयुक्त मात्रा के साथ प्रयोग जारी रखना चाहिये। P.A.S. की मात्रा कम की जा सकती है। क्योंकि Isoniazid के कारण जीवाणु Streptomycin के विपरीत हठी नहीं बन सकते। इस चिकित्सा के ६ मास बाकायदा जारी रखने से बहुधा थूक में यह जीवाणु लुप्त हो जाता है तथा पुफ्फुस गुहा भी ठीक हो जाती है। ६ मास बाद भी थूक में जीवाणु मिलें तो इन्हें हठी (Resistant) समझना चाहिये। Streptomycin के अति प्रयोग से शिरोभ्रम (Vestibular Vertigo) और Dihydrostreptomycin के अति प्रयोग से बधिरता (Nerve Deafness) के उपद्रव हो सकते हैं। अतः इन दोनों के मिश्रण (Ambistryn) के जिसमें दोनों आधी मात्रा में होते हैं देने से इन उपद्रवों के होने का भय नहीं रहता। अतः ५० वर्ष से ऊपर के व्यक्ति में उरःक्षय रोग हो तो इस मिश्रण का १ ग्राम मात्रा में सप्ताह में २ या ३ बार ही प्रयोग करना चाहिये। P.A.S. तथा Isoniazid का प्रयोग प्रतिदिन जैसे पहले कहा है वैसे ही वृद्धों में भी किया जाता है। दूसरे रोगियों में भी यदि Streptomycin का शिरोभ्रम का उपद्रव दृष्टिगत हो तो इसका प्रयोग सप्ताह में ३ दिन तक ही कर देना चाहिये। औषधि चिकित्सा को तब तक जारी रखना चाहिये जब तक थूक में जीवाणुओं का आना बन्द न हो जाय तथा पुफ्फुस गुहा ठीक न हो जाय। गुहा के रह जाने पर इस रोग के पुनराक्रमण का भय रहता है। प्रायः ६ मास या १२ मास या १८ मास तक औषधि चिकित्सा को जारी रखने से थूक में जीवाणु तथा पुफ्फुस में गुहा भाव दोनों ठीक हो जाया करते हैं। इतने समय के बाद भी गुहा भाव रहे तो इसी चिकित्सा को २ वर्ष या उससे कुछ अधिक काल के लिये भी जारी रखना चाहिये।

यदि पहले Streptomycin और Isoniazid ४-५ मास दिये जायें तो फिर प्रथम औषधि के स्थान पर P.A.S. को ८-१० ग्राम दैनिक मात्रा में १२-१६ मास तक दिया जा सकता है। Isoniazid को तो जारी रखा जाता है। २ या ३ मास के साथ Sm को सप्ताह में २ बार दिया जाता है। संक्षेप में इन औषधियों का प्रयोग करने वाले परीक्षकों ने ये परिणाम निकाले हैं कि रोगी के पुफ्फुस के शिखर के समीप इस रोग की छाया (Shadow) हो तो इस चिकित्सा से १½ वर्ष तक वह ठीक हो जाती है तथा ऐसा रोगी चिकित्सा काल में कुछ चलता फिरता भी रह सकता है। यदि पुफ्फुस का एक बड़ा भाग इस रोग के कारण ठोस हो गया हो (Tuberculous Pneumonia) हो अर्थात् रोग कुछ तीव्र रूप में हो तो रोगी को २-३ मास पूर्ण विश्राम में रख के ये औषधियां देनी चाहियें। इससे न तो वहां गुहा भाव (Cavitation) न स्नायु भाव (Fibrosis) होने पाता है। २-३ महीनों के विश्राम के बाद भी ३ मास का अपूर्ण विश्राम जारी रखना चाहिये। जब रोगी के पुफ्फुस का एक बड़ा भाग ठोस हो और उसमें कुछ गुहा भाव (Cavitation) भी हो तो रोगी को ३-४ मास पूर्ण विश्राम कराते हुये इन औषधियों

Unipyranamide. 5 ग्राम गोली कलप में

के देने से वह गुहा भर जाती है / रोगी की थूक में जीवाणु लुप्त हो जाते हैं। इसके बाद ३-४ मास उसे अपूर्ण विश्राम में और रहना चाहिये। तथा इन औषधियों का प्रयोग २ वर्ष तक जारी रखना चाहिये। ६ मास की चिकित्सा के बाद भी गुहा भाव (Cavitation) कुछ रहे तो ३ मास का विश्राम और कराने से वह भी लुप्त हो जाता है। जब दोनों या एक फुफ्फुस के बड़ा से भाग में स्नायु भाव Fibrosis- हो और बीच में कुछ गुहा भाव हो तब विश्राम को ६ मास तक जारी रखने तथा इन औषधियों को ४ वर्ष तक जारी रखने से उनकी थूक में से जीवाणु लुप्त हो जाते हैं तथा ऐसे व्यक्ति के फुफ्फुस इतने ठीक हो जाते हैं कि वह हलके काम करने के योग्य हो जाता है। गुहा भाव भी बहुधा ठीक हो जाता है।
गुहा रह भी जाय तो उसकी थूक में जीवाणु नहीं मिलते

ऐसी औषधियां भी मिलती हैं जिनमें मुख से दिये जाने वाली दोनों औषधियां मिली होती हैं।

(१) Pasonex-Enteric Coated Granutes होते हैं जिनके १०० ग्राम में ७० ग्राम P.A.S तथा १.६८ ग्राम Isoniazid होता है। इसकी दैनिक मात्रा १० ग्राम होती है।

(२) Pasinide.

(३) Dipasic की १०० मिलि० की गोलियां मिलती हैं। इनकी ६-६ गोलियों की दैनिक मात्रा होती है।

(४) Isobenzocyl की प्रति गोली में २५ मिलि०, Isoniazid, १ ग्राम, Calcium Benzycyl P.A.S. होता है।

(५) Isopascal में भी इन दोनों का मिश्रण कैल्सियम और Ascorbic Acid. के साथ होता है।

जैसे ऊपर कहा गया है यदि रोगी के जीवाणु इन औषधियों में से किसी एक के लिये हठी हो गये हों अर्थात् उनमें से एक औषधि इसके लिये निष्प्रभाव हो गई हो तो शेष दो का ही प्रयोग १½,२ वर्ष तक करना चाहिये। यदि पता लगे कि किसी रोगी के जीवाणु इनमें से दो औषधियों के लिये हठी हो गये हैं अर्थात् उस पर इनमें से दो औषधियों का कोई प्रभाव नहीं होता तब एक बची हुई औषधि के साथ Pyrazinamide (Pyrazinoic Acid Amide P.Z.A. १९५१) को .७५-१. ग्राम मात्रा में (४०-५० मिलि० प्रति किलो के पीछे दैनिक मात्रा) दिन में २ बार मुख द्वारा देना चाहिये। यह Streptomycin तथा Isoniazid से निर्बल औषधि है। इस औषधि को अकेले या Isoniazid के साथ १-३ मास तक ही दिया जा सकता है। अधिक काल के लिये नहीं क्योंकि इसका यकृत पर दुष्प्रभाव पड़ सकता है। इसके प्रयोग काल में यकृत की परीक्षा (Liver Function Test) १५-२० दिन के अन्तर से) करते रहना चाहिये। अर्थात् इससे Hepatitis व कामला Jaundice होने की आशंका रहती है।

Ethionamide भी इस जीवाणु के नष्ट करने वाली उत्तम औषधि है। इसे .२५-.५ ग्राम मात्रा में दिन में २ बार मुख से उपर्युक्त औषधियों में से किसी एक के साथ दे सकते हैं। इससे अरुचि (Nausca) का उपद्रव हो सकता है। यदि किसी रोगी के जीवाणु उपर्युक्त तीनों प्रधान औषधियों के लिये हठी हो जायें तो उसे Pyrazinamide, Ethionamide इन दोनों को Viomycin. ~~XXXXXXXXXX~~ (१६५०) के साथ जिसे मांस द्वारा १ ग्राम मात्रा में दिन में २ बार सप्ताह में केवल २ दिन दिया जाता है तथा १½ मास तक जारी रखा जा सकता है देना चाहिये। यह अधिक शक्तिशाली औषधि नहीं है। Streptomycin तथा Isoniazid की अपेक्षा निर्बल औषधि है तथा उनकी अपेक्षा अधिक विषैली भी है। अष्टम मस्तिष्क नाड़ी पर इसका दुष्प्रभाव हो सकता है जिससे शिरो भ्रम तथा बाधिर्य के उपद्रव हो सकते हैं। वृक्कों पर भी इसका दुष्प्रभाव हो सकता है जिससे अलव्युमिन मेह हो सकता है पर उपर्युक्त मात्रा में देने पर यह औषधि निरुपद्रव ही रहती है।

Cycloserine (Seromycin):-यदि किसी रोगी के क्षय जीवाणु उपर्युक्त तीनों प्रधान औषधियों के लिये हठी हो जायें तो Pyrazinamide तथा Ethionamide के साथ Cycloserine को पहले .२५ ग्राम मात्रा में दिन में १ बार मुख से देते हुये क्रमश: १५ दिन तक बढ़ाते हुए इसे .५ ग्राममात्रा में दिन में २ बार तक देते रहना चाहिये। इसका विषैला प्रभाव भी हो सकता है अर्थात् एक तो रोगी के मन पर इसका दुष्प्रभाव होकर उसके व्यक्तित्व में कुछ परिवर्तन हो जाने का डर रहता है। वह विक्षोभ शील हो सकता है। अत: जब इसकी बड़ी मात्रा दे रहे हों तब Pyridoxine को भी २५-५० मिलि० मात्रा में प्रतिदिन देते रहना चाहिये। इसे Viomycin और Pyrazinamide के साथ भी दे सकते हैं।

लाक्षणिक चिकित्सा :-

(१) शुष्क कास या खुश्क खांसी बहुत तंग करे तो Tr.Camphor Co. २० बुन्द मात्रा में Syrup Pruniserotin २० बुन्द मिलाकर देते रहें या Codeine ⅙, ¼ ग्रेन का किसी रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

(२) रक्तस्राव (Haemoptysis) होने पर रक्त के जमाव Clotting को बढ़ाने के लिये १० प्र०श० १० सी०सी० Calcium Gluconate के सोल्यूशन को शिरा द्वारा दे देना चाहिये अथवा विटामिन "के" के (Synkavit) को २५-५० मिलि० मात्रा में मांस या शिरा द्वारा दे देना चाहिये। इसी प्रकार विटामिन "सी" को ५०० मिलि० मात्रा में शिरा या मांस द्वारा दे देना भी ठीक है। Pituitrin १ सी०सी० (१० i.u.) को १०-२० सी०सी० नार्मल सैलाइन में मिला के धीरे धीरे (१ सी०सी० १ मि०में) शिरा द्वारा दे देने से फुफ्फुसों की रक्तवाहिनियों में रक्त भार गिर जाता है एवं रक्तस्राव

Primarin (Oestrogen) २० मिलि० को नाप में आनेवाले यू.सी.सी. द्रव में मिला के शिरा द्वारा भी दिया जाता है इससे सम्भवतः रक्त में जमने की प्रक्रिया बढ़ती है।

यदि इस क्षय रोग प्रबल हो या रक्तस्राव का कारण कैन्सर हो तो यह इलाज अच्छा नहीं होता।

९

जहां फुफ्फुस में हवा भरती है उधर टकोर की आवाज ऊंची होती है पर उधर श्वास प्रश्वास ध्वनियां नहीं सुनतीं। Scratch sign:— स्टेथस्कोप को उरोस्थि या रीढ़ की हड्डी पर रखकर दोनों ओर छाती पर रगड़ की आवाज को सुनते हैं जिधर Pneumothorax होता है उधर को रगड़ की आवाज ऊंची होती है। Skiagram से रोग विनिश्चय हो जाता है।

बाल सुलभ क्षय रोग चिकित्सा :-

१०

बालक को उसके प्रति किलो ग्राम भार के पीछे प्रतिदिन २०-४० मिलि० मात्रा में Streptomycin १-२ मास तक और उसके बाद सप्ताह में २-३ बार इतनी मात्रा में ३-६ मास तक दिया जाता है। Isoniazid प्रति किलोग्राम भार के पीछे प्रतिदिन ५ १०-२० मिलि० मात्रानुसार मात्रा में १-१½ वर्ष दिया जाता है।

PAS बालक को उसके प्रति किलोग्राम भार के पीछे प्रतिदिन ३००-५०० मिलि० मात्रा में १-१½ वर्ष तक दिया जा सकता है। इनके साथ Prednisone, Prednisolone, Dexamethasone किसी को १-५ मिलि० मात्रा में प्रतिदिन देने से उपर्युक्त औषधियों का बल बढ़ता है। इनके अतिरिक्त विटामिन "ए" (२५ सौ- २५ हजार यूनिट) "डी" (२५० - २५०० यूनिट) प्रतिदिन देने या Hobibut Liver Oil [redacted] १-८ बून्द (१५०० से १२ हजार यूनिट) के देने तथा विटामिन "सी" २०० मिलि० प्रति दिन देने से भी इस रोग में लाभ होता है। इनके अतिरिक्त विटामिन "बी१२" के प्रयोग से भी विशेष लाभ होता है।

बन्द हो जाता है । रोगी की चिन्ता को कम करने के लिये Phenobarbitone Sodium १-२ ग्रेन मात्रा में त्वचा द्वारा दे देना चाहिये ।

रात्रि स्वेद के कष्ट के लिये Ext.Belladona Sicc. $\frac{1}{4}$ ग्रेन दें या Atropine Sulphate $\frac{1}{150}$,$\frac{1}{100}$ ग्रेन मात्रा में रात को मुख द्वारा दे सकते हैं । यद्यपि इससे साधारण ही लाभ होता है ।

अतिसार की शिकायत हो तो भी Calcium के शिरा द्वारा देने से लाभ हो जाता है ।

Pneumothorax Pleura :- के साथ विद्यमान क्षय व्रण के खुल जाने से क्रमश: उसमें वायु का प्रवेश हो जाय तो छाती में दर्द तथा उठने बैठने पर श्वास काठिन्य के लक्षण होते हैं । इनके होने पर रोगी को पूर्ण विश्राम में लिटा रखना चाहिये जब तक Pleura की सब हवा विलीन न हो जाये । बहुधा विश्राम से आराम आ जाता है । पर यदि श्वास काठिन्य अधिक हो तो दूसरे या तीसरे Inter Space में Mid Clavicular रेखा पर Needle को Pleura में डालकर उसे Artificial Pneumothorax यन्त्र के साथ लगा के हवा को तब तक निकालना चाहिये जब तक Pleura में दबाव बाहर के वायु मन्डल जितना न हो जाय जिसका पता Manometer को ५-१० मिनट तक देखने से लग जाता है । दर्द के लिये वेदना शामक Pethidine Hydrochloride. ५०-१०० मि० दे देवें । खांसी के लिये Codeine $\frac{1}{4}$,१ ग्रेन ३-४ घन्टे के बाद दे दें । श्वास काठिन्य का लक्षण हो तो Oxygen देवें ।

Callapse Therapy :- शैथिल्य चिकित्सा :-

क्षय जनित फुफुस शोथ (Tuberculous Exudation and Cellular Infiltration) तो ऊपर कही गई जीवाणु प्रतिरोधक चिकित्सा (Chemotherapy) से बहुत कुछ ठीक हो जाता है तथा और छोटी छोटी गुहाओं (Cavities) के हो जाने का रोग भी विश्राम चिकित्सा से ठीक हो जाता है। बड़ी बड़ी गुहायें (Cavities) भी इन दोनों प्रकार की चिकित्साओं के ६-१२ मास तक जारी रखने से ठीक हो जाती हैं । पर इन दोनों प्रकार की चिकित्साओं के १-१$\frac{1}{2}$ वर्ष तक चलाने के बाद भी यदि थूक में क्षय जीवाणु मिलें तथा X-Ray द्वारा गुहाभाव के चिन्ह मिलें तो रोग ग्रस्त फुफुस खण्ड को पूर्ण विश्राम देने के लिये Callapsetherapy का प्रयोग किया जाता है ।

इस रोग की शल्य चिकित्सा सम्बन्धी मृदु (Minor) विधियां तो (१) Artificial Pneumothorax ; (२) Phrenieparalysis और (३) Pneumoperitoneum हैं तथा प्रबल (Major) विधियां (१) Thoracoplasty , (२) Extrapleural Pneumothorox तथा (३) Resection. हैं जिनमें से मृदु विधियों का प्रयोग अब नहीं किया जाता । Thoracop-

lasty तथा Resection का प्रयोग ही विशेष अवस्थाओं में किया जाता है ।

Thoracoplasty :-

Permanent Callapsetherapy :-

Callapsetherapy की मृदु विधियों से थोड़ा सा रुग्ण पुफुस एक दो वर्ष Callapsed रहने के बाद फिर बहुत कुछ स्वस्थावस्था में आ जाता है । परन्तु जीर्ण उर:क्षय रोग में जब किसी पुफुस में या उसके एक अंश में गुहा भाव (Cavitation) और स्नायु भाव (Fibrosis) इतना अधिक हो चुका हो कि जिससे वह कठोर एवं श्वास प्रश्वास के लिये सर्वथा अयोग्य हो गया हो और वह Collapsetherapy से भी कार्यकारी न बनाया जा सकता हो तो उसे स्थायी रूप से Collapsed कर दिया जाता है जिससे वह निरोग तो हो जाता है पर दोबारा श्वास प्रश्वास में भाग लेने योग्य नहीं बनता ।

इस शल्य कर्म में पीठ पर Spine के समानान्तर उससे २ इंच की दूरी पर प्रथम Thoracic Spine से लेकर नीचे Scapula के Angle के नीचे आगे की ओर मुड़ता हुआ चीरा देकर Trqpezius, Rhomboids, Latissimusdorsi. तथा Serratus Anterior को विभक्त कर दिया जाता है और Scapula को उठाकर ऊपर की पसलियों को नंगा कर लिया जाता है फिर छाती की ऊपर की प्रथम, द्वितीयपसलियों तथा तृतीय पसली के कुछ अंश को Sub-periostially निकाल दिया जाता है । फिर रोग ग्रस्त पुफुस के शिखर को छाती की दीवार से छुड़ाकर पृथककिया जाता है अर्थात् Vertebrae के Transverse Processes से, Intercostal Muscles से, Subclavian Vessels से, पृथक करके उसे उसके Hilum की तरफ संकुचित होने दिया जाता है । ऊपर की तीन पसलियों के निकाल देने से वहां छाती की दीवार अन्दर धंस जाती है तथा वह वहां मृदु भी हो जाती है । पर कुछ काल बाद धंसे हुये स्थान पर पसलियां फिर बन जाती हैं । और धंसी हुई छाती मृदु न रहकर फिर कठोर हो जाती है । इस प्रकार रुग्ण पुफुस को स्थायी रूप से निष्क्रिय Collapsed या Relaxed कर दिया जाता है । जिससे उसके अन्दर विद्यमान गुहाभाव का विकार पूर्णतया ठीक हो जाता है । पुफुस के उपरले पिछले भाग में गुहा भाव के होने पर इस शल्य कर्म से विशेष लाभ होता है । पुफुस के निम्न भाग में गुहा हो या शायद Bronchiectqsis हो या Tubercular Abscess हो तो Lobe या Segment Resection के शल्य कर्म से लाभ होता है । दोनों ओर के पुफुसों में गुहाभाव हो तो शल्य कर्म नहीं किया जाता, औषधियों पर ही निर्भर रहना पड़ता है ।

पार्श्व शूल की चिकित्सा :-

शुष्क पार्श्व शूल (Fibrinous Pleurisy) की चिकित्सा :-

बहुधा यह शूल उर:क्षय के कारण ही होता है । अत: विश्राम चिकित्सा के दो तीन सप्ताह तक करने से लाभ हो जाता है । पार्श्व पर Iodex, Kaolin पोल्टीस का लेप अथवा पसलियों की गति शीलता को कम करने के लिये आगे मध्य रेखा से पीछे की मध्य रेखा तक Adhesive Tape से Strapping भी किया जाता है । कष्ट दायक खांसी के लिये Syrup Codeine १ ड्राम दिन में दो तीन बार दिया जाता है ।

आर्द्र पार्श्व शूल (Serofibrinous Pleurisy or Pleurisy with Effusion) की चिकित्सा :-

जब तक द्रव विलीन न हो जाय रोगी को पूर्ण शय्या विश्राम में रहना चाहिये । प्राय: १ या १$\frac{1}{2}$ मास के पूर्ण विश्राम से Pleura में विद्यमान यह द्रव विलीन हो जाया करता है । यह अधिक भी हो तो ३ मास के पूर्ण शय्या विश्राम से विलीन हो जाता है । इसके बाद भी रोगी को १-२ मास में धीरे धीरे विश्राम चिकित्सा को छोड़ना चाहिये । ज्वर, नाड़ी गति की तीव्रता B.S.R. की अधिकता ये लक्षण प्राय: दो या तीन सप्ताह में शान्त होते हैं तथा द्रव उसके कुछ काल बाद विलीन होता है । इस विश्राम काल में रोगी को नमक न देते हुए तथा जल की मात्रा भी दिन में २ पाइंट तक ही देते हुए प्रोटीन, फैट, फल, विटामिन, कैल्सीयम, प्रधान आहार देना चाहिये । ग्रस्त छाती पर Liquor Iodi.mit. प्रति दूसरे दिन लगाना चाहिये । यदि द्रव दो तीन सप्ताह तक स्वयं विलीन न हो तो Prednisolone को पहले १० फिर ५ मिलि. मात्रा में दिन में २ बार १ महीना मुख द्वारा देना चाहिये । इससे यह विलीन हो जाता है । Chemotherapy अर्थात् Streptomycin तथा Isoniazid या Streptomycin और P.A.S. (या PAS 10 g/ Isoniazid 200 mg) का प्रयोग ३ या ४ सप्ताह तक करना चाहिये । इसके ठीक हो जाने पर भी क्षय नाशक उपर्युक्त चिकित्सा का प्रयोग १-१$\frac{1}{2}$ वर्ष तक करना चाहिये ।

Thoracentesis - Paracentesis अथवा Aspiration:-

जब तक तापमान रहे अर्थात् जब तक Pleura सूजा हुआ हो उसे छेड़ना उचित नहीं । परन्तु विश्राम चिकित्सा तथा Chemotherapy द्वारा जब ज्वर शान्त हो जाय तब Aspiration के द्वारा Pleura में विद्यमान द्रव को थोड़ा थोड़ा करके निकाल देना चाहिये । दो तीन सप्ताह के विश्राम के बाद भी ज्वर शान्त न हो तो द्रव का Aspiration कर ही देना चाहिये । द्रव के छाती में रहने से हानि ही होती है, लाभ नहीं । फुफ्फुस के शिखर में क्षय रोग के कारण इस द्रव की उत्पत्ति ऊपर के Pleura से होती है । परन्तु यह द्रव उत्पन्न होकर फुफ्फुस के निम्न भाग पर जमा होता है और उसे Collapse कर देता है अर्थात् फुफ्फुस का स्वस्थ भाग तो Collapsed हो

जाता है तथा ऊपर के रुग्ण भाग को अधिक कार्य करना पड़ता है । द्रव के कारण ऊपर का रुग्ण पुफ्फुस तो Collapse होता नहीं प्रत्युत नीचे का स्वस्थ पुफ्फुस Collapsed हो जाता है । साथ ही इस द्रव के Fibrin के Pleura पर जम जाने से पुफ्फुस और छाती की दीवार परस्पर जुड़ जाती हैं जिससे रोगी के पुफ्फुस में सदा के लिये एक स्थायी विकृति उत्पन्न हो जाती है। यह भी कहा जाता है कि पुफ्फुस में द्रव संचित रहे तो उसके कारण विष संचार के बने रहने का भी भय रहता है । इसके अतिरिक्त द्रव के वहां रहने से पुफ्फुस का चित्र या Roentgenogram साफ साफ नहीं आ सकता एवं पुफ्फुस में विद्यमान विकार का पता नहीं चल सकता । अत: द्रव युक्त पर्यावरण शूल में द्रव को थोड़ा थोड़ा करके निकाल ही देना चाहिये ।

रोगी को बैठाकर के या स्वस्थ पार्श्व पर आधा लिटाकर, रुग्ण पार्श्व की त्वचा को कृमि हीन करके Mid+Axillary Line में छटे या सातवें Inter Space के अन्दर Parietal Pleura तक के प्रदेश में २ प्रतिशत Procaine Fluid डाल दिया जाता है । सुई को धीरे धीरे धकेला जाता है ताकि Pleura का पृष्ट जब तक संज्ञा हीन न हो जाय तब तक सुई Pleura में न जाय । इसी Needle तथा Syringe में यदि कुछ Negative Pressure रक्खा जाय तो Pleura का द्रव स्वयं सीरिंज में खिंच जाता है और द्रव की गहराई का पता चल जाता है । इस Needle पर एक छ: इंच लम्बी रबड़ ट्यूब जिसके दोनों ओर Adapters लगे हों फिट कर दी जाती है और इस ट्यूब के साथ एक ५० सी०सी० सीरिंज लगाकर द्रव को खींच कर सीरिंज भर ली जाती है । सीरिंज के भर जाने पर ट्यूब को Spiring Clip से Clamp करने के बाद ट्यूब से पृथक करके खाली कर दिया जाता है तथा फिर पूर्ववत् ट्यूब से सम्बन्धित करके Clamp को हटाकर भर लिया जाता है । इस विधि से बार बार सीरिंज लगाई तथा खाली की जाती है । इस प्रकार एक बार में १०-१५ औंस ही द्रव निकालना चाहिये । बचा हुआ द्रव बहुधा स्वयं विलीन हो जाता है । फिर सुई को निकाल कर Collodion से सुराख को बन्द कर देना चाहिये । इससे पहले Streptomycin ३ ग्राम को १०-१२ सी०सी० शुद्ध जल में मिला कर प्लूरा में डाल दिया जाय तो यह रोग शीघ्र शान्त होने लगता है या दो दिन के अन्तर से फिर एक बार द्रव निकाल कर इसी प्रकार Streptomycin वहां पर डाल दिया जाता है । इस बीच में त्वचा द्वारा यह औषधि नहीं देनी चाहिये । Isoniazid अवश्य देते रहना चाहिये । बाद में Streptomycin का प्रयोग मांस द्वारा आरम्भ कर देना चाहिये । क्योंकि जल युक्त पार्श्व शूल के होने के दो तीन वर्ष के अन्दर अन्दर उर:क्षय हो जाने की आशंका रहती है । अत: २ वर्ष तक ३-३ मास बाद X-Ray के द्वारा पुफ्फुस की अवस्था की जांच करते रहना चाहिये तथा इन क्षय नाशक औषधियों का

प्रयोग ८-६ मास जारी रखना चाहिये ।

क्षयोदर Abdominal Tuberculosis की चिकित्सा :-

आर्द्र क्षयोदर, शुष्क क्षयोदर की अपेक्षा अधिक सुख साध्य है । रोगी को खुली हवा में रखकर पौष्टिक भोजन तथा Vitamin A.D. तथा C. देते हुये विश्राम चिकित्सा में तीन मास तक रखना चाहिये तथा साथ ही Chemotherapy प्रारम्भ कर देनी चाहिये अर्थात् Isoniazid १५०, २०० मिलिग्राम प्रतिदिन १$\frac{१}{२}$ मास तक देनी चाहिये तथा Streptomycin को तीन सप्ताह तक एक एक दिन छोड़कर इसी मात्रा में देना चाहिये । १$\frac{१}{२}$ महीने के बाद फिर रोगी को केवल Isoniazid तथा P.A.S. की १२ ग्राम की दैनिक मात्रा पर ही दो तीन महीने रखना चाहिये । इस प्रकार Chemotherapy तथा विश्राम चिकित्सा से Exudative Tuberculous Peritonitis में ६ मास में पर्याप्त लाभ हो जाता है ।

यदि Peritoneum में द्रव अधिक हो, आँतें कोष्ठ की दीवार से जुड़ी हुई न हों तो Paracentesis द्वारा जल निकालने से भी लाभ होता है ।

शुष्क क्षयोदर Chronic Fibroid या Plastic Tuberculous Peritonitis के लिये विश्राम चिकित्सा तथा Chemotherapy करनी चाहिये तथा यदि उरःक्षय न हो तो Ultra Violet X-Ray के दो मिनट तक के Exposure से प्रारम्भ करके प्रतिदिन १ मिनट बढ़ाते हुये नौवें दिन १० मिनट तक पेट को Exposure देने और फिर इतने को बीस दिन तक जारी रखने से भी लाभ होता है । इससे Exudate विलीन हो जाता है । मलबन्ध (Intestinal Obstruction के लिये Liquid Paraffine प्रतिदिन देना चाहिये ।

Ileitis:- में विश्राम चिकित्सा, प्रोटीन विटामिन प्रधान आहार, Streptomycin, Cortisone चिकित्सा से बहुधा लाभ हो जाता है ।

आन्त्र क्षय Ulcerative Enterocolitis की चिकित्सा :-

विश्राम चिकित्सा तथा Chemotherapy का प्रयोग २-३ मास करना चाहिये । Calcium Gluconate तथा Vitamin"C" का प्रयोग करने से भी व्रणों के रोहण में सहायता मिलती है ।

फिर भी आवश्यकता हो तो I.N.H. तथा PAS का प्रयोग कुछ मास तक करना चाहिये ।

मस्तिष्क क्षय Tuberculous Meningitis की चिकित्सा :-

मस्तिष्क क्षय रोगी बालक को Streptomycin या Dihydrostreptomycin की $\frac{१}{२}$ से १ ग्राम दैनिक मात्रा में अर्थात् ३ वर्ष से नीचे के बालक में $\frac{१}{२}$ इससे बड़ी आयु के बालक में १ ग्राम मात्रा २ भागों में विभक्त

Lumbar puncture के द्वारा कुछ द्रव के निकालने से भी इस रोग में लाभ रहता है। उसका मात्र यों प्रेशर घट जाता है। मस्तिष्क का रक्त भार कम करने के लिये 50 प्रतिशत का ग्लूकोज का घोल शिरा द्वारा देना चाहिए। साथ ही रोगी के पोषण के लिये उसे 5 प्र. श. ग्लूकोज सोल्यूशन कुछ घंटों के शिरा द्वारा या गुदा के द्वारा रात को दिया जा सकता है। इस सोल्यूशन में विटामिन सी अथवा दूसरे विटामिन्स भी मिलाये जा सकते हैं।

अथवा Dehydrostreptomycin और I.N.H का प्रयोग करने पर मेरुद्रव्य द्वारा औषध देने की आवश्यकता नहीं पड़ती अब सुषुम्ना द्वारा S.M. के देने की आवश्यकता नहीं मानी जाती है।

रोगी की बेचैनी के लिये उसे कोई शामक Sedative औषधि देते रहना चाहिए

उस की पीठ आदि को गर्म जल से स्वच्छ करके उस पर स्पिरिट डस्टिंग पौडर लगाना चाहिए। फोम मेटरेस पर मेकिन्टोश चादर बिछा कर उस पर मुलायम चादर बिछानी चाहिए ताकि शय्या व्रण न हो। हो जाएं तो उन्हें प्रतिदिन स्वच्छ करके सल्फोनामाइड पौडर रख कर बांधें तथा रोगी की करवट बदलते बदलते रहें इससे फुफ्फुसों में भी रक्त संचय (Hypostatic) नहीं होता

फलरस, अण्डा तथा विटामिन

करके (१ किलो० भार के पीछे ३० मिलि० दैनिक) मांस द्वारा दे देनी चाहिये। (साथ ही ५०-१०० मिलिग्राम की मात्रा में या १ किलो० भार के पीछे २ मिलि० मात्रा में इसे Intrathecally या सुषुम्ना काण्ड के द्वारा भी प्रतिदिन दे देना चाहिये) मांस द्वारा तो इसे ३-४ मास तक तथा सुषुम्ना काण्ड द्वारा इसे एक मास तक अर्थात् दो सप्ताह तो प्रति दिन २ सप्ताह १-१ दिन छोड़ कर दे देना चाहिये। इस औषधि के साथ साथ Isoniazid को ५० मिलिग्राम की मात्रा में (प्रति किलो भार के पीछे ८-१० मिलि० दैनिक मात्रा) दिन में दो बार मुख द्वारा १$\frac{1}{2}$ मास तक दिया जाता है। इसके बाद इसकी दैनिक मात्रा को आधा करके उसे दिन में २ बार १,१$\frac{1}{2}$ वर्ष दिया जाता है। साथ ही P.A.S. को १-३ ग्राम की मात्रा में ४ बार भोजन देने के बाद दे दिया जाता है। इस Chemotherapy से लगभग ३ सप्ताह में लाभ प्रतीत होने लगता है तथा दो मास की चिकित्सा से रोग बहुत कुछ शान्त हो जाता है। इन औषधियों के साथ gel. Solution of A.C.T.H १२-५० यूनिट दिन में २ बार १ सप्ताह तक त्वचा द्वारा देने से रोग में विशेष लाभ होता है। इससे सुषुम्ना द्वारा Streptomycin न भी दिया जाय तो भी रोगी की अवस्था सुधर जाती है। तीन मास बाद Streptomycin. आधी ग्राम की मात्रा में सप्ताह में तीन चार बार देना आरम्भ कर ६ मास उसे जारी रखना चाहिये, देना चाहिये। मस्तिष्क क्षय का रोग युवक में हो तो Streptomycin १ ग्राम की मात्रा में प्रतिदिन मांस द्वारा तथा १०० मिलिग्राम की मात्रा में Intrathecally एक सप्ताह तक दे देना चाहिये। बालक में सुषुम्ना द्वारा ५० मिलिग्राम मात्रा ठीक है। इसके साथ साथ Isoniazid ३०० मिलिग्राम की मात्रा में तथा P.A.S. १२ ग्राम दैनिक मात्रा में भी विभक्त करके दे देने चाहिये। तीन मास तक इनका प्रयोग करने के बाद १५ दिन तक इनका प्रयोग बन्द कर दिया जाता है और फिर दो तीन मास इसी प्रकार इन औषधियों का प्रयोग किया जाता है। इस चिकित्सा के दौरान में प्रति सप्ताह Cerebrospinal Fluid की परीक्षा की जाय तो रोगी की अवस्था में जो सुधार होता है उसका पता चलता रहता है। रोगी अच्छा होने लगे तो पहले ग्लूकोज़ की मात्रा इस द्रव में नार्मल हो जाती है।

इस रोग में रोगी के मूर्छित होने के कारण उसकी सुश्रुषा का भार अधिक होता है। अतः उसकी चिकित्सा हस्पताल में ही रखकर हो सकती है। रोगी बालक को दूध आदि द्रव भोजनों पर ही रखना चाहिये।

अस्थि क्षय Tuberculosis of the Bone की चिकित्सा :-

अस्थि क्षय का रोग Carpal, Taral, Metacarpal, तथा Metatarsal Bones, Phalanges Ribs Sternum तथा Vertebrae में हुआ करता है। बालकों में प्रतिरोधक शक्ति के पर्याप्त मात्रा में होने से अस्थिक्षय

शीघ्र ठीक हो जाता है । युवकों में यह रोग कुछ देर से ठीक होता है । परन्तु वृद्धों में स्वाभाविक प्रतिरोधक शक्ति के न्यून होने से ठीक नहीं हो पाता ।

इस रोग के निवारण के लिये एक तो खुली हवा, पौष्टिक भोजन, विटामिन आदि के द्वारा पोषक चिकित्सा की जाती है । दूसरा Chemotherapy का प्रयोग किया जाता है अर्थात् Streptomycin को १ ग्राम दैनिक मात्रा में १० दिन तक देकर फिर सप्ताह में केवल दो बार देते हुये पांच,छः मास तक जारी रक्खा जाता है । इसके साथ P.A.S. की १२ ग्राम की दैनिक मात्रा भी चार बार करके दे दी जाती है । अथवा Isoniazid को १५०-२०० मिलिग्राम की दैनिक मात्रा में दो बार करके दे दिया जाता है । इस औषधि का प्रयोग करने पर Vitamin B.Complex भी देना आवश्यक होता है । Sm. को ५ वर्ष से छोटे बालक में १/२ ग्राम, १० वर्ष से नीचे ३/४ ग्राम मात्रा में प्रति० देते हुए कुल ६०-तथा ६० ग्राम मात्रा तक दिया जाता है।

इस शारीरिक चिकित्सा के अतिरिक्त स्थानिक विश्राम चिकित्सा (Immobilization) अर्थात् Plaster of Paris की पट्टी के द्वारा रुग्ण अस्थि को ५-६ मास के लिये पूर्णतया निश्चल कर देने का उपाय भी किया जाता है । पांव में रोग हो तो Ankle Joint को भी स्थिर कर दिया जाता है । Vertebrae में अस्थि क्षय हो तो बालक को Plaster bed पर या Spinal Frame में चित्त लिटाकर कम से कम ६ मास रक्खा जाता है । यह यत्न किया जाता है कि रुग्ण अस्थि पर न तो भार पड़े और ना ही उसमें किसी प्रकार की चेष्टा हो । पृष्ठ वंशास्थि से सम्बन्धित विद्रधि में से Aspiration द्वारा पूय निकाल दि जाती है । जब तक Blood Sedimentation Rate तापमान भूख, भार तथा अस्थि का X-Ray चित्र नार्मल न हो जाय विश्राम चिकित्सा को जारी रक्खा जाता है । फिर प्लास्टर की पट्टी को हटाकर रुग्ण अस्थि को इ चमड़े तथा लोहे से बनी Splints के द्वारा एक सहारा (Support) दे दिया जाता है जिसके द्वारा वह धक्कों से बच सके । जब Vertebrae में पूर्ण Ankylosis हो जाय तथा अस्थि में उत्पन्न हुआ रोग शान्त हो जाय तभी विश्राम चिकित्सा समाप्त की जाती है । पांव की अस्थियों में उत्पन्न क्षय रोग के अच्छे हो जाने पर भी Walking Calipers पर ही रोगी को चलने की छूट दी जाती है ।

पृष्ठ वंशास्थि (Vertebrae) में अस्थि क्षय रोग के कारण बहुधा उरुस्तम्भ (Paraplegia) हो जाया करता है । उसके लिये भी Chemotherapy तथा पृष्ठ की Immobilization चिकित्सा करनी चाहिये । अर्थात् युवक को Streptomycin १ ग्राम, Isoniazid २५० मिलि Para-aminosalicylic Acid १२ ग्राम रोज मिलना चाहिये । फिर कुछ काल बाद Isoniazid + P.A.S. ये दो औषधियां ही १२-१८ महीनों तक जारी रखनी चाहियें । परन्तु यदि इस चिकित्सा से उरुस्तम्भ अथवा Paravertebral Abscess को लाभ न हो तो Vertebral body में विद्यमान

Cold Abscess को साफ करने के लिये शल्य कर्म किया जाता है । पुय के तथा Necrosed अवयव के निकल जाने पर फिर औषधियों का प्रभाव शीघ्र हो जाता है । इस शल्य कर्म में रोग ग्रस्त Vertebra पर Incision देकर वहां की एक दो पसलियों के अन्दर अन्दर के दो इंच भाग को तथा साथ ही एक दो Vertrebrae के Transverse Processes को काट कर अलग कर दिया जाता है । फिर Blunt Dissection करते हुये रोग ग्रस्त अस्थि के Body में विद्यमान Cold Abscess को खोलकर उसके अन्दर संचित पुय को भलीप्रकार साफ करके इस जख्म की ड्रेसिंग कर दी जाती है । इस शल्य कर्म को इसीलिये Costotransversectomy कहा जाता है । anterolateral decompression of the Spine

सन्धि क्षय Tuberculous Joints की चिकित्सा :-

वंक्षण, जानु, कूर्पर, आदि सन्धियों में क्षय रोग विशेषत: होता हुआ पाया जाता है । वंक्षण सन्धि (Hip Joint) में क्षय रोग हो तो Chemotherapy के अतिरिक्त पहले Immobilization with Traction की चिकित्सा की जाती है अर्थात् रोगी की रुग्ण टांग को Robert Jone's Abduction Frame में कुछ Abduction कुछ Flexion और साधारण Rotation की अवस्था में रख कर तथा खींच (Traction) देकर लिटा दिया जाता है । इस खींच के द्वारा दोनों रुग्ण अस्थियां एक दूसरे से कुछ दूर हो जाती हैं । जिससे दर्द का लक्षण शान्त हो जाता है । इससे टांग के अन्दर विषमता (Deformity) भी नहीं होती । सन्धिगत रोग के शान्त हो जाने पर जब दर्द नहीं रहता तब खींच की आवश्यकता नहीं रहती परन्तु सन्धि को स्थिर एवं निश्चल रखने के लिये बगल से लेकर सारी टांग तक Plaster Cast बांध दिया जाता है और इसे महीनों तक रक्खा जाता है । इस चिकित्सा से सन्धि की दोनों अस्थियों में Fibrous Ankylosis हो जाता है । अर्थात् दोनों सन्धिगत अस्थियां Fibrous Tissue के द्वारा परस्पर जुड़ जाती हैं । परन्तु यह जोड़ इतना पक्का नहीं होता कि सब प्रकार का भार या धक्का सहार सके । अत: फिर Plaster को हटा के रोगी की टांग पर Walking Calipers Splint बांध दी जाती है । जिस पर वह चल सकता है । इसे भी एक वर्ष तक रक्खा जाता है । इस चिकित्सा से वंक्षण संधि का क्षय रोग प्राय: शान्त हो जाता है ।

पर इतने पर भी यदि यह रोग शान्त न हो या ठीक होकर फिर हो जाय तो Arthrodesis का शल्य कर्म किया जाता है । इसे Ileofemoral Arthrodesis भी कह सकते हैं जिसमें Acetabulum के ऊपर Ileum से Greater Trochanter के बीच Bone Graft रख दिया जाता है, जिससे इस सन्धि में दृढ़ Ankylosis हो जाता है । जानु सन्धि (Knee Joint) में क्षय रोग हो तो रोगी को बिस्तरे पर लिटाकर

रुग्ण टांग को Thomas की Splint में खींच (Extension) देकर स्थिर कर देना चाहिये । साथ ही Chemotherapy जारी कर देनी चाहिये। कुछ महीनों में Synonial Type के जानु सन्धि क्षय में इससे लाभ हो जाता है अथवा Pelvis से पैर तक टांग को Plaster of Paris में स्थिर करके १ वर्ष तक इसी अवस्था में रखना चाहिये और फिर रोगी को Walking Caliper Splint पर चलने की छूट दे देनी चाहिये । (रोग अधिक हो (संधिगत अस्थियां) प्रभावित हों तो Synovectomy का आश्रय करना आवश्यक हो जाता है ।

कूर्परसंधि (Elbow Joint) की Synovial Membrane में रोग होकर श्वेत वर्ण शोथ हो जाय तो वह भी क्षाय रोग का सूचक होता है । कोहणी को ९० डिग्री से कुछ अधिक डिग्री पर रख कर तथा हथेली को कुछ ऊपर की तरफ फिराकर (Plaster of Paris) की Splint में स्थिर कर देना चाहिये । सात, आठ महीनों तक इस प्रकार कोहणी को निश्चल रखने तथा Chemotherapy का प्रयोग करते रहने से इस सन्धि का रोग शान्त हो जाता है ।

चर्म क्षाय Lupus Vulgaris की चिकित्सा :-

Lupus में Streptomycin या Dihydrostreptomycin Sulphate को १ ग्राम दैनिक मात्रा में ३ सप्ताह तक देने से विशेष लाभ प्रतीत होता है । इसी प्रकार Isoniazid के २००-३०० मिलिग्राम की मात्रा में प्रतिदिन देने और इसके ४-६ मास तक जारी रखने से इस रोग के Nodules Scales व्रण आदि पूर्ण तया साफ हो जाते हैं । इस औषधि के साथ साथ Vitamin B. Complex का प्रयोग करने से किसी उपद्रव होने का भय नहीं रहता ।

Vitamin "D" अथवा Calciferol की गोलियां त्वचा की प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाने के कारण इस रोग में लाभदायक होती हैं । इस औषधि के १ मिलिग्राम में ४० हजार International Units होते हैं । प्रतिदिन डेढ़ लाख Units की मात्रा इस औषधि की रोगी को दी जाय तथा दो तीन मास इसे जारी रक्खा जाय तो इस रोग के Nodules लुप्त हो जाते हैं । अवरक्त रश्मि का प्रयोग लुपस प्रायः रोग में होता है। Ultraviolet-Ray तथा Streptomycin के स्थानिक इन्जेक्शन का प्रयोग भी किया जाता है।

रोगी को पौष्टिक भोजन, दूध, घृत, मांस रस आदि देना चाहिये जिससे उसकी रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़े ।

Primary Tuberculous Infection, Glandular Tuberculosis, Tuberculous Laryngitis :-

आदि आदि सर्व रोगों के लिये विश्राम चिकित्सा, पौष्टिक भोजन, खुली हवा, Vitamin A.D.C. तथा Chemotherapy विशेष लाभदायक होते हैं । बालक को सूची वेध न देकर P.A.S. तथा Isoniazid ही दिये जा सकते हैं ।

ग्रन्थि क्षय :- (Lympadenitis) :-

के लिये पहले ३-४ मास Cod Liver Oil विटामिन "डी" (Calciferol-Ostelin) विटामिन "बी" तथा "सी" का प्रयोग करना चाहिये। फिर Cortisone या Prednisolone १०-१५ मिलि० दैनिक तथा Chemotherapy का प्रयोग २ मास तक करना चाहिये। फिर २ मास १-१ दिन छोड़ के फिर ३-४ मास सप्ताह में २ बार इसका प्रयोग जारी रखना चाहिये। पकी हुई ग्रन्थि बाहर को तो उसमें से Aspiration द्वारा पूय को निकाल कर आधा या १ ग्राम Streptomycin २ सी०सी० शुद्ध जल में मिला कर वहां प्रविष्ट कर देना चाहिये। यह पूय निकालने तथा द्रव डालने की प्रक्रिया सप्ताह में २ बार करनी चाहिये। मांस द्वारा Streptomycin का प्रयोग तो चालू रखना चाहिये। Ultra Violet Exposure से भी लाभ होता है।

मरणासन्न क्षय रोगी को जीवनीय या उत्तेजक औषधि न देकर उसके कष्ट को कम करने वाली कोई औषधि जैसे Morphine या Borbiturate ४-४ घन्टे के अन्तर से देनी चाहिये ताकि अन्त शान्तिमय हो।

क्षय प्रतिरोधक चिकित्सा :- Preventive Treatment of Tuberculosis :-

B.C.G. Vaccination - जीवित क्षय जीवाणुओं के अत्यन्त स्वल्प मात्रा में शरीर में प्रवेश करने पर शरीर में क्षय रोग भी उत्पन्न नहीं होता तथा इन जीवाणुओं के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति भी उत्पन्न हो जाती है। इसीलिये Primary Infection के अति मृदु रूप में होने पर सहस्त्रों व्यक्तिओं में इस रोग के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाया करती है। इसी आधार पर प्रोफेसर Calmette तथा प्रोफेसर Guerin ने १६०६ में Bovine Strain ~~afix~~ of Tubercle Bacilli की Oxbile के माध्यम पर खेती आरम्भ की। कुछ कुछ दिनों बाद उन्होंने इस जीवाणु को Transplant करके इनकी तीव्रता को कम ~~कर~~ और अधिक कम करने का यत्न किया। इस प्रकार चार वर्ष तक लगातार इन जीवाणुओं को निर्बल करते करते उन्होंने इतना निर्बल कर दिया कि गिनी पिग में इनके प्रविष्ट कर देने पर भी उनमें क्षय रोग उत्पन्न होना बन्द हो गया। परन्तु खरगोश आदि छोटे प्राणियों में फिर भी इनसे क्षय रोग उत्पन्न होते हुये उन्होंने देखा। फिर १३ वर्ष तक इनके Sub-culture करने के बाद उन्होंने यह देखा कि छोटे प्राणियों में भी उन जीवाणुओं के प्रविष्ट कर देने से अब क्षय रोग उत्पन्न नहीं होता। तब १६२७ में पहले इन जीवाणुओं को मनुष्य में प्रविष्ट करके देखा गया और उसके लिये भी इन जीवाणुओं को निरुपद्रव पाया गया। इसके बाद उनकी लेबोरटरी अर्थात् Pasteur Institute of Paris से संसार के सब देशों ने इस निर्बल हुये जीवाणु को लेकर इससे B.C.G.(Bile Cal.

mette Guerin) Vaccine बनाना आरम्भ किया ।

हमारे देश में यह Vaccine मद्रास में बड़ी सावधानता के साथ तैयार किया जाता है । Sealed तथा Sterile किये हुये Ampules में यह वहां २ से ४ सैन्टीग्रेड डिग्री पर रक्खी रहती है । वहां से निकलने के बाद ८ दिन के अन्दर अन्दर इसे प्रयुक्त करना होता है ।

जिन बालकों में Primary Infection हो जाता है उनमें तो स्वभावत: क्षय रोग के लिये प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो ही जाती है । उनमें B.C.G.Vaccine देने की आवश्यकता नहीं होती । परन्तु जिन बालकों या युवकों में अभी तक क्षय जीवाणु का Primary Infection नहीं हुआ इसलिये जिनमें Tuberculin Reaction Negative है उनके अन्दर कृत्रिम विधि से, नपी हुई मात्रा में क्षय जीवाणु का प्रवेश करके सीमित मात्रा में इस रोग (Controlled Primary Infection) को उत्पन्न कर दिया जाता है । स्पष्ट है कि स्वभावत: होने वाले Primary Infection से अर्थात् Uncontrolled Infection से यद्यपि प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न तो हो जाती है परन्तु उसमें रोग के बढ़ने (Progressive Tuberculosis) की आशंका भी रहती है । B.C.G. के द्वारा व्यक्ति में प्रतिरोधक शक्ति तो उत्पन्न हो जाती है पर जीवित जीवाणुओं को शरीर में प्रविष्ट करके भी रोग के होने का भय नहीं होता ।

इंग्लैंड की Medical Research Conncil ने B.C.G. के सम्बन्ध में जो बहुत बड़ा परीक्षण किया जिसकी एक रिपोर्ट उन्होंने १९५६ में और दूसरी १९५९ में प्रकाशित की उसका संक्षिप्त सा उल्लेख करना यहां अप्रासंगिक न होगा । उन्होंने ऐसे बालकों में से जिन्हें Tuberculin Negative पाया गया या १४१०० बालकों को तो B.C.G. का टीका दे दिया, १३३०० को नहीं दिया । पहली रिपोर्ट में उन्होंने लिखा कि जिनको टीका नहीं दिया गया था उनमें प्रति सहस्त्र के पीछे प्रतिवर्ष १.९४ में क्षय रोग होता हुआ मिला जिनको B.C.G. दिया गया था उनमें प्रतिवर्ष १००० के पीछे .३७ में ही यह रोग होता हुआ पाया गया । १९५९ में जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई उसमें उन्होंने लिखा कि जिनको B.C.G. नहीं दिया गया था उन १००० बालकों के पीछे २.२६ में क्षय रोग होते हुये देखा गया और जिनको B.C.G. दिया गया था उनके १००० बालकों के पीछे .३८ में ही इस रोग के लक्षण पाये गये । B.C.G. के देने के ७½ वर्ष तक देखने पर भी उन्हें ऐसे ही परिणाम मिले जिससे यह पता चलता है कि इस टीके के द्वारा इस रोग को रोकने में काफी सहायता मिलती है।

बांये कन्धे की त्वचा में .१ सी०सी० B.C.G.Vaccine का १ इंजेक्शन बहुत उथला (Intradermally) दिया जाता है । जिसके बाद वहां एक चक्कर सा प्रकट हो जाता है । पर वह शीघ्र लुप्त हो जाता है । १०

दिन बाद वहां एक कोठ (Papule) उत्पन्न होकर ५-६ मिलिमीटर व्यास का हो जाता है, जो पहले हलके से द्रव स्फोट (Vesicle) और फिर पूय स्फोट (Pustule) का रूप ले लेता है। यह व्रण भी तीन महीने तक पूर्ण तया ठीक हो जाता है। इसके अतिरिक्त शरीर में और कोई लक्षण नहीं होता। इस Vaccine के देने के २ मास बाद व्यक्ति Tuberculin Positive हो जाता है। अर्थात् उसमें इस रोग के लिये प्रतिरोधक शक्ति प्रकट हो जाती है जो लगभग ५ वर्ष के लिये तो रहती ही है।

क्षय रोग से रुग्ण माता पिता की सन्तान को यदि शीघ्र ही B.C.G. Vaccine का इंजेक्शन देकर दो महीनों के लिये माता पिता से दूर रख दिया जाय तो दो महीने बाद जब उसमें प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाती है तब उसके माता पिता के पास रहने पर भी उसमें इस रोग का संक्रमण नहीं होता।

इस सम्बन्ध में Sheffield के Norber और Meneer (१९५९) के एक लेख का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। उस लेख में उन्होंने लिखा कि उन्होंने २ वर्ष की आयु के ऐसे २६७ बच्चों का जो घर में क्षय रोग के होने के कारण सदा क्षय रोग के वातावरण में रहते थे और जिनको १९४९-१९५२ के बीच में B.C.G. का टीका लगाया जा चुका था, ५-७ वर्षों तक उन्होंने निरीक्षण किया। इतने समय के बीत जाने पर भी उन्होंने X-Ray द्वारा फुफ्फुस की परीक्षा करके देखा कि इनमें से केवल ३ बच्चों में से २ में अति स्वल्प सा, एक में विशेष चकता मिला। परन्तु ये चकते भी स्वयमेव Calcification की प्रक्रिया के द्वारा ठीक हो गये थे। इससे विशेष तो नहीं, इतना पता चलता है कि क्षय रोग के सम्पर्क में रहने वाले बच्चों को इस रोग से बचाने के लिये B.C.G. का सहारा लिया जा सकता है।

आयुर्वेद में क्षय रोग :-

आयुर्वेद में क्षय रोग को शरीर का शोषक होने से शोष, शारीरिक, मानसिक क्रियाओं का क्षय कारक होने से क्षय और सर्व रोगों में प्रधान होने से राज-यक्ष्मा कहा है।

कारण :-

एक तो सामर्थ्य से अधिक शारीरिक या मानसिक श्रम करने से, दूसरे किसी रोग वश जैसे रोमान्तिका, ज्वर, काली खांसी, मधुमेह, से, शारीरिक शक्ति के क्षीण हो जाने से, तीसरा भोजन सम्बन्धी वैषम्य अर्थात् शरीर को पोषक आहार के यथावत् न पहुंचने से, चौथा शरीर में से मल-मूत्र स्वेद आदि द्वारा जो मल निकलते रहते हैं उनके यथावत् रूप से न निकलने एवं अन्दर में अधिक मात्रा में संचित हो जाने से, शरीर की स्वाभाविक प्रतिरोधक शक्ति के कम

हो जाने से होने वाला रोग कहा जाता है ।

इस रोग को विशेषतः प्रतिरोधक शक्ति के हीन हो जाने से उत्पन्न होने वाला तथा त्रिदोषज कहा जाता है । वायु की वृद्धि अर्थात् प्राण शक्ति की न्यूनता से, दूसरा कफ दोष की वृद्धि अर्थात् पाचकाग्नि की मन्दता से, तथा तीसरा धातु पाचकाग्नि की वृद्धि (Excessive Metabolism) से उत्पन्न होने वाला त्रिदोष जनित ज्वर कहा जाता है । इनमें से वायु तथा पित्त की वृद्धि को विशेषतः इस रोग का कारण समझा जाता है । इसीलिये इस रोग के लिये प्राण वर्धक तथा शीत स्निग्ध गुण वर्धक चिकित्सा की जाती है। (च०।चि०।८)

क्षय रोग की चिकित्सा :-

इस रोग की चिकित्सा में शारीरिक, मानसिक विश्राम और पौष्टिक आहार के साथ साथ निम्नलिखित औषधियों का विशेष प्रयोग किया जाता है ।

(१) स्वर्ण भस्म :-

स्वर्ण भस्म २ रत्ती, अभ्रक भस्म ४ रत्ती, प्रवाल भस्म ६ माशा, शृंग भस्म १$\frac{1}{2}$ माशा भली प्रकार मिलाकर इसकी १-१ रत्ती की मात्रा प्रातः सांय २ बार मधु के साथ चटा दी जाती हैं ।

स्वर्ण मालती बसन्त :-

सुवर्ण १, मुक्ता पिष्ठी २, हिंगुल ३, मरिच ४, शुद्ध खर्पर ८ भाग को २$\frac{1}{2}$ तोला मक्खन से ३ घन्टा मर्दन करके फिर १ सप्ताह निम्बू रस से मर्दन किया जाता है । इसकी १-१ रत्ती मात्रा पिप्पली चूर्ण तथा मधु के साथ दिन में दो बार दी जाती हैं । अथवा मालती बसन्त १ रत्ती, प्रवाल भस्म २ रत्ती, सत गिलोय १ माशा, सितोपलादि २ माशा भली प्रकार मिलाकर ऐसी ३ मात्रा प्रतिदिन मधु के साथ चाटनी चाहिये ।

अथवा मृगांक, महा मृगांक :-

सुवर्ण भस्म १, रस सिन्दूर २, मुक्ता ३, गन्धक ४, स्वर्ण माक्षिक ५, रौप्य भस्म ४, प्रवाल ७, सुहागा खील २ भाग मिला , बिजौरे के रस से ३ दिन मर्दन कर, नमक भरे घड़े में सम्पुट करके १२ घन्टे की अग्नि देकर बनाया जाता है । मात्रा $\frac{1}{2}$,१ रत्ती दिन में तीन बार ।

(२) मुक्ता :-

मुक्ता पंचामृत (मुक्ता ८, प्रवाल ४, शंख १, मुक्ता शुक्ति १, कपर्द १, भाग को शतावरी स्वरस से भावना देकर १ गज पुट देवें) १ रत्ती दिन में ३ बार देवें ।

(३) वंश लोचन :-

वंश लोचन चूर्ण को १ माशा मात्रा में मिश्री के साथ दिन में ३ बार देने से या सितोपलादि या तालीशादि चूर्ण को ३-३ माशा की मात्रा में मधु के साथ या च्यवन-प्राश को दिन में तीन बार देने से भी इस रोग में लाभ होता है ।

(४) वासा :-

वासा हरीतकी अवलेह, वासा खंडकूष्माण्ड, वासाद्राक्षा-मध्वयष्टी पानक, किसी का दिन में दो बार प्रयोग किया जाता है या वासा मध्वयष्ठी क्वाथ २ सेर, कूष्माण्डरस ४ सेर में घृत १ सेर डाल, साधित करके उसमें $1\frac{1}{4}$ सेर मधु, वंशलोचन १ पाव, सूक्ष्मैला १ छं० डाल के इस वासादि घृत का दिन में २ बार सेवन करायें ।

(५) द्राक्षा :-

द्राक्षारिष्ट, द्राक्षावलेह (द्राक्षा १ सेर को बीज रहित कर पीसकर १ पाव गो-घृत में भूनकर १ सेर खाण्ड की चासनी में मिलाकर वंशलोचन इलायची छोटी, मुलहटी, चन्दन आदि १-१ तोला मात्रा में मिलाकर) १ तोला मात्रा में देने से खांसी, व निर्बलता में लाभ प्रतीत होता है ।

(६) घृत :-

साधारण गौघृत का पर्याप्त मात्रा में या अमृत प्राश घृत या पाराशर घृत या छागलादि घृत या बलागर्भ घृत या क्षीर बला घृत को $1\frac{1}{2}$ तोला की मात्रा में प्रात: सायं मिश्री और दूध के साथ पिलाने का विधान अति प्राचीन काल से चला आता है । इनसे रोगी की प्रतिरोधक शक्ति बढ़ जाती है ।

लाक्षादि तैल की या चन्दन बला लाक्षादि तैल की शरीर पर मालिश की जाती है ।

भोजन में पिप्पली, कुलथी, जौ, आंवला आदि के साथ पकाया अजा मांस रस, या अजा क्षीर, घृत, चावल, रोटी आदि शीत सुपच तथा बल्य गुण आहार पर्याप्त मात्रा में दिये जाते हैं । अजा क्षीर के अर्क का प्रयोग भी इस रोग में होता है । एतदर्थ शीत गुण औषधियों जैसे नीलोत्पल, वासा, वेद-मुश्क, गाजवां १-१ पाव, धनिया, श्वेत चन्दन $\frac{1}{2}$,$\frac{1}{2}$ छं० में ४ गुणा अजाक्षीरा ८ गुणा जल मिला निकाला हुआ अर्क भी पानी के स्थान पिलाया जाता है ।

==========

संसर्गिक रोग :-

Venereal Diseases :-

फिरंग रोग :- Syphilis:-

कारण :-

यह रोग पहले पहल १९ वीं शताब्दी के अन्त में कोलम्बस के West Indies से वापिस आये सिपाहियों के द्वारा युरोप में प्रकट हुआ और धीरे धीरे वहां से सर्वत्र फैला । सिफलिस का नाम इसे १५३० में दिया गया ।

कारण :-

प्राय: ऐसे व्यक्ति के साथ कि जिसकी जननेन्द्रिय में फिरंग जनित क्षत हो, मैथुन करने से यह रोग संक्रमण करता है । क्योंकि इस क्षत से निकलने वाले Serum में इस रोग का जीवाणु बहुत अधिक संख्या में रहता है । पहले इस जीवाणु को Spirochaete या Spirochaeta Pallida कहते थे । परन्तु अब इसे Treponema Pallidum कहते हैं । यह इस रोग के प्राथमिक स्फोट (Primary Schancre) में ही नहीं पर इस रोग के बाद में रोग की द्वितीय अवस्था में त्वचा, श्लेष्म कला आदि पर निकलने वाले कोठों या स्फोटों और उनके स्रावों में भी बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है ।

मैथुन से जननेन्द्रियों की श्लेष्म कला या त्वचा में स्वल्प सा क्षत हो जाने से भी उस प्रदेश में यह जीवाणु प्रवेश कर जाता है और २४ घन्टे के अन्दर २ वहां से यह जीवाणु लसीका वाहिनियों में प्रवेश कर जाता है । वहां से वंक्षण-लसीका-ग्रन्थियों (Inguinal Lymph Glands) में पहुंचता है । Kolle और Evers (१६२६) का कथन है कि ये आधे घण्टे के अन्दर अन्दर समीपस्थ लसीका ग्रन्थि में पहुंच जाता है । जहां से फिर यह लसीका संस्थान में चला जाता है । वहां से यह शिरा संस्थान (Veins) में जाता है और उसके द्वारा फुफ्फुस में प्रवेश करता है । वहां से यह धमनियों में चला जाता है तथा उनके द्वारा यह शरीर के प्रत्येक अंग में पहुंच जाता है । इस प्रकार शरीर में प्रवेश करने के दो चार दिनों में ही यह देह के अंगों में व्याप्त हो जाता है । परन्तु आश्चर्य है कि तो भी विष संचार (General Spirochaetaemia) का कोई विशेष लक्षण रोगी में प्रतीत नहीं होता तथा जननेन्द्रिय पर प्रारम्भिक कोठ (Primary Shancre) भी संक्रमण के लगभग १ मास बाद प्रकट होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वत्र फैल जाने पर भी यह कुछ एक स्थानों पर जैसे त्वचा, श्लेष्म कला, मस्तिष्कावरण, नेत्र आदि में विशेष रूप में अपने अड्डे (Foci) बनाकर बढ़ने लगता है । इसीलिये इन स्थानों पर इनके विरुद्ध शारीरिक प्रतिक्रिया विशेष रुप में होती है । जहां से यह प्रविष्ट होता है वहां पर भी इसका प्रधान अड्डा होने से विशेष प्रतिक्रिया होती है । प्रारम्भिक Sore होने के २ सप्ताह बाद Wassermann Reaction पाज़िटिव हो जाता है । बहुत वर्ष बाद मस्तिष्क के सेलों में इसके कारण क्षीणता

होकर पक्षाघात हो जाता तथा सुषुम्ना काण्ड (Cord) के प्रोतों -Tracts - में इसके दुष्प्रभाव से Tabes Dorsalis का रोग हो जाता है ।

अथवा इस जीवाणु के शरीर में सर्वत्र फैल जाने से इसके विपरीत अंगों में (१) प्रतिरोधक शक्ति (Immunity) उत्पन्न हो जाती है, (२) कुछ एक अंगों में इसके प्रति अति असात्म्यता- Hyper Sensitivity- उत्पन्न हो जाती है । प्रथम शक्ति के कारण जीवाणु की उपस्थिति में भी महीनों कोई लक्षण प्रकट नहीं होता । दूसरी के कारण जिस जिस अंग में जब जब Allergy उत्पन्न होती है रोग प्रकट हो जाता है ।

यह जीवाणु ८-१० माइक्रोन दीर्घ, पतला, गति शील, कीटाकार, कृमि है जिसमें १०-१२ मोड़ होते हैं । जो आर्द्रता युक्त प्रदेश में जीवित रहता है तथा जिसकी फिल्म को Giemsa के तरीके से रंग कर Dark Field Miscroscopy के द्वारा देखा जाता है । पहले पहल Schaudinn तथा Hoffman (१९०५) ने इस जीवाणु का पता लगाया । फिर Wassermann (१९०६) ने इसकी टेस्ट निकाला । उसके बाद Ehrlick (१९०९) ने इस रोग की प्रसिद्ध औषधि 606 का आविष्कार किया ।

विकृति :-

रक्तवाहिनियों में से निकल कर ये जीवाणु आसपास के लसीकामय प्रदेश (Perivascular Lymph Space) में रोहण करने लगता है । इसके वहां रोहण करने पर रक्तवाहिनी में से Mononuclear सेल जैसे Lymphocytes, Plasma Cells तथा कुछ एक Giant Cells वहां बहुत अधिक मात्रा में जमा हो जाते हैं जिससे वहां शोथ (Peri Vascular Lymphangitis) हो जाता है । इस शोथ के कारण धमनी के चारों ओर ही नहीं, धमनी में भी शोथ हो जाता है अर्थात् धमनी वहि:शोथ (Periarteritis) , धमनी मध्यशोथ (Mesarteritis) , तथा धमनी अन्त: शोथ (Endarteritis) सभी हो जाते हैं । इस प्रकार धमनी शोथ (Arteritis या Vasculitis) इस रोग की प्रधान विकृति होती है । इसके बाद Fibroblasts इस शोथ युक्त अवयव को स्नायुतन्तु (Fibrous Tissue) में परिवर्तित कर देते हैं । जिससे वह स्थान स्पर्श में कठोर हो जाता है । रक्तवाहिनी के अन्दर के स्रोत के न्यूनाधिक अवरुद्ध हो जाने से इस शोथ युक्त कठोर अवयव में रक्त भलीप्रकार नहीं पहुंच पाता (Ischaemia हो जाता है) जिससे त्वचा, में यह रोग हो तो उसका पोषण न होने से उसके ऊपर से परतें सी झड़ने लगती हैं । यदि वहां रक्तावरोध अधिक हो तो मृत्यु (Necrosis) होकर इस रोग युक्त प्रदेश में न्यूनाधिक व्रणभाव हो जाता है ।

लक्षण :-

रोग संक्रमण के लगभग २१ दिन के बाद इस रोग की प्रथमावस्था

या (Primary Syphilis) के लक्षण प्रकट होते हैं अर्थात् जीवाणु के प्रवेश स्थान पर जहां पर वह अत्यधिक मात्रा में रोहण करता है सेलों में प्रतिक्रिया (उनका Infiltration) बड़ी प्रबलता से होती है । सेलों के अति संचय से वहां एक छोटा सा, गोलाकृति, कठोर कोठ (Hard Schancre) प्रकट हो जाता है । यह कोठ शिश्नमुण्ड के मुख या उभरे भाग के पास की खाई (Coronal Sulcus) में या अग्रचर्म की श्लेष्म कला या त्वचा पर तथा स्त्री में गर्भाशय मुख (Cervix) या योनि द्वार अर्थात् भगोष्ठ (Labia) के अन्दर या बाहर कहीं उत्पन्न होता है । Labium Majus और Minus की सन्धि पर विशेष होता है । इसमें मृत्यु (Necrosis) के होने से इसमें वेदना या किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता और यदि सिरारोध (Endarteritis) के हो जाने से इसका पोषण अवरुद्ध हो जाय तो रगड़ लगने से इसमें व्रण भाव हो जाता है जिससे बड़े, कठोर, किनारों वाला, प्याले के आकार का एक छोटा सा व्रण बन जाता है । वहां Lymphocytes के अत्यधिक मात्रा में संचित होने से यह कठोरता होती है । शिश्न मुण्ड पर यह व्रण गहरे लाल काले रंग के छोटे छोटे चकते के रूप में होता है । इस व्रण के साथ ही प्रादेशिक लसीका ग्रन्थियां (Horizontal Inguinal Glands) भी सूज जाती हैं । ये स्पर्श में कठोर, वेदना रहित, समवर्ण, एक दूसरे से पृथक पृथक होती हैं । ये भी Lymphocyte के अति संचय के कारण कठोर होती हैं । इनमें पूय भाव नहीं होता । इनके ऊपर चढ़ी त्वचा में शोथ न होने से वह भी रक्त वर्ण नहीं होती। यह प्रथमावस्था १$\frac{1}{2}$,२ मास तक रहती है ।

फिरंग रोग की द्वितीयावस्था के लक्षण :- Secondary or Metastatic Lesions :-

जननेन्द्रिय पर स्थानिक कोठ के प्रकट होने के लगभग १ मास बाद अर्थात् रोग के संक्रमण के लगभग दो मास बाद जब प्रारम्भिक व्रण (Chancre) लुप्त हो जाता है, इस रोग की द्वितीयावस्था आरम्भ हो जाती है जो १-१$\frac{1}{2}$ वर्ष के समय तक रहती है । इस समय तक इस रोग के विष के सम्पूर्ण शरीर में संचार कर जाने (Septicaemia) से पाण्डुता, क्षुधानाश, सिर दर्द आदि के लक्षण भी होते हैं । पर एक तो मृदु रूप में सम्पूर्ण शरीर में लसीका ग्रन्थि शोथ (General Lymphadenitis) का लक्षण होता है । उदाहरणतः कोहनी के अन्दर की तरफ के (Condyle) से ऊपर की लसीका ग्रन्थियां (Epitrochlear Glands) स्पर्श करने में फूली हुई होती हैं । यद्यपि उनमें स्पर्शाक्षमता का लक्षण नहीं होता ।

दूसरा इस अवस्था में त्वचा, तथा श्लेष्म कलाओं में इस जीवाणु के विपरीत विशेष प्रतिक्रिया Hyperaemia के रूप में होती है । इन जीवाणुओं के रोहण करने से वहां Mononuclear Cells पर्याप्त

मात्रा में संचित हो जाते हैं। उनके संचित होने से वहां स्नायुभाव Fibrosis की प्रक्रिया भी हो जाती है जिससे वहां कोठ Papules बन जाते हैं। पर ये सेल बाद में स्नायु तन्तु में परिवर्तित होने के स्थान पर निर्बलता वश ह्रास (Involution) की अवस्था को प्राप्त होने लगते हैं। जिससे इन सेलों के क्षीण हो जाने से, त्वचा पर जो दो तीन मिलीमीटर व्यास के वृत्ताकार या अर्धवृत्ताकार ताम्र वर्ण चकत्ते (Macules) प्रकट होते हैं उनके केन्द्र का प्रदेश कुछ नीचा और मृदु हो जाता है, तथा चकत्ते का किनारा जहां सेल अत्यधिक मात्रा में विद्यमान होते हैं, कुछ ऊंचा या उठा हुआ होता है। इन चकत्तों की लालिमा का कारण रक्तवाहिनियों में से मन्द रक्त स्राव का होना प्रतीत होता है। ये Roseola Syphilitica नाम के छोटे गोल से चकत्ते विशेषत: छाती पर दोनों ओर धड़ पर तथा शाखाओं के भी अन्त: (Flexor) पृष्ठ पर, तथा हाथ पैर के तलुओं पर संघर्ष में आने वाले प्रदेशों पर, दोनों ओर निकलते हैं तथा कुछ सहसा प्रकट होते हैं।

फिरंग जनित चकत्तों (Syphilitic Macules) के कुछ सप्ताह रहने के बाद फिरंग जनित नाना ~~प्रकार~~ विधा कोठ (Papules) भी त्वचा पर निकलते हैं। ये फिरंग जनित, मसर के दाने की तरह के कोठ, छोटे छोटे, पृथक् पृथक्, स्पर्श में कठोर, ताम्र वर्ण, गोलाकृति, कण्डु, वेदना आदि से रहित, शरीर के दोनों ओर एक समान ~~निकलते~~ और कुछ सहसा ~~निकलते हैं~~ + धड़, शाखाओं और माथे पर होते हैं। शाखाओं पर जब होते हैं तो बहि: (Extensor) पृष्ठ की अपेक्षा अधिकत: अन्त: (Flexor) पृष्ठ पर होते हैं, + धड़ पर कुछ अधिक घने होते हैं। शीघ्र ही फिर ये क्षीण होकर धाव्वों (Spots या Stains) में बदल जाते हैं। इनके ताम्र वर्ण होने तथा इनमें खुजली आदि कष्ट के न होने से ये फिरंग जनित हैं ऐसा समझलेना चाहिये।

हाथों की हथेलियों तथा पैरों की तलुओं पर छोटे छोटे कुछ उठे हुये, चपटे से, धाव्वे (Squamous Spots) निकलते हैं जिनके ऊपर की स्तर, परतों में उतरती है। इस रोग के कारण नख भी प्रभा विहीन होकर नष्ट हो सकते हैं एक या अनेक ~~ह~~ नखों की धारती फूल जाती और फिर नख ताम्र वर्ण, मोटे ~~ह~~ होकर फट से जाते हैं। (Onychia)।

फिरंग जनित खालित्य (Alopecia) भी कभी कभी देखा जाता है जिसमें सिर, दाढ़ी, भौंहों आदि के बाल बीच बीच में ऐसे खाये से जाते हैं जैसे किसी कीड़े ने इन्हें खा लिया हो। Alopecia Areata में चकत्ते सर्वथा बालों से रहित होते हैं।

गीले प्रदेश में होने वाले कोठ Papules :-

त्वचा के गीले प्रदेशों जैसे गुदा या भगोष्ठ के आसपास त्वचा

[illegible] की Papillae के अन्दर Mono-nuclear Cells का संचय होकर ये कठोर और आकार में बड़ी हो जाती हैं । इनके कारण त्वचा में १ सेन्टीमीटर व्यास के चपटे से स्वल्प उठे हुये, कठोर कोठ हो जाते हैं, जिन्हें Condyloma कहते हैं । पास पास की अनेकानेक Papillae के इस प्रकार मिल जाने से गुदा के समीप कोठों (Papules) का एक ढेर सा हो जाता है । इस द्वितीयावस्था में कभी कभी फिरंग स्फोट Pustules भी निकलते हैं + जो रोगी की निर्बलता के कारण Papules में दक्षिणता की प्रक्रिया के हो जाने से बनते हैं । ये मसूरिका स्फोटों से मिलते जुलते होते हैं ।

मुख तथा गले में फिरंग व्रण :-

त्वचा पर Papules निकलने के साथ साथ जैसे त्वचा में चकत्ते Macules निकलते हैं वैसे ओठों, गालों और गले की श्लेष्म कला में भी गोलाकृति लाल चकत्ते या धब्बे (Mucous Patches) हो जाते हैं । इनके गीले रहने के कारण इनकी श्लेष्म कला के वहि:स्तर के मृत (Necrosis) हो जाने से और इनके गल जाने से ये श्वेत से धब्बे दीखते हैं । नर्म तालु तथा काकलक पर भी ये श्वेत धब्बे या उथले से व्रण हो जाते हैं । इनके चारों ओर श्लेष्मकला लाल होती है । मुख छिद्र के कोणों के समीप की श्लेष्म कला में ये हों तो मुख के कोणों में इनके कारण विवाही (Fissure) सी पड़ जाती है । इनके होने से जिव्हा के किनारों पर भी विवाहियां हो जाती हैं । ये फिरंग व्रण जिव्हा के किनारों या नीचे के पृष्ठ पर होते हैं । गले और टान्सिल पर भी ये फिरंग व्रण (Snailtrack Ulcers) हो जाते हैं । ये श्वेत से धब्बे नाक के बीच की अस्थि Septum में भी हो जाते हैं । कण्ठ (Larynx) में उसके छद (Epiglottis) पर भी ये फिरंग व्रण (Mucous Patches) हो जाते हैं + जिससे स्वर भंग का लक्षण हो जाता है । Iris की सूक्ष्म रक्त-वाहिनियों के समीप के प्रदेश में सेलों के अधिक मात्रा में संचित होने से वहां भी पिन के नक्के जितने Nodules उत्पन्न हो जाते हैं । Cornea के चारों ओर लाली हो जाती है जिससे Iris Lens के साथ चिपक सकता है + जिससे पुतली गोल नहीं रहती, + रोगी को प्रकाश सहन नहीं होता, + आंख में दर्द तथा उससे पानी बहता है । इस प्रकार Syphilitic Iritis का रोग हो जाता है । त्वचा श्लेष्म कला आदि में होने वाले इन फिरंग जनित कोठों आदि में जीवाणु अत्यधिक मात्रा में पाये जाते हैं । मुख में रोग हो तो लाला में बहुत अधिक मात्रा में यह जीवाणु पाया जाता है ।

फिरंग रोग की तृतीयावस्था :- Tertiary State of Syphilis :-

द्वितीय अवस्था में जब इस रोग का जीवाणु रक्त के

द्वारा शरीर में व्याप्त हो रहा होता है । इस रोग के लक्षण शरीर के दोनों और एक समान रूप होते हैं । परन्तु कई वर्ष उपरान्त शरीर के किसी एक अंग में प्रसुप्तरूप से पड़ा हुआ यह जीवाणु जब शरीर की प्रतिरोधक शक्ति के घट जाने से फिर बढ़ने लगता है तो उसी एक प्रदेश में यह रोग प्रकट होता है, । तब यह रोग शरीर के दोनों ओर नहीं होता । इसके अतिरिक्त द्वितीयावस्था में इस रोग से युक्त प्रदेश में अति क्षीणता या मृत्यु की प्रक्रिया (Necrosis) नहीं होती । परन्तु तृतीयावस्था में इस रोग से युक्त प्रदेश में यह प्रक्रिया अधिक होती है । यह अवस्था रोग संक्रमण के ३ वर्ष बाद तथा द्वितीय अवस्था के लगभग ५ वर्ष बाद आरम्भ होकर आयु भर रह सकती है । जिस अवयव में यह जीवाणु क्रियाशील होने लगता है उसकी छोटी धमनियों या लसीकावाहिनियों में से बाहर आने के कारण उनकी दीवार में ही पहले फिरंग जनित शोथ की प्रतिक्रिया होती है । अर्थात् इनके अन्तस्स्तर के सेलों में अति वृद्धि हो जाती है जिससे उनके मध्यस्तर (Tunica Media)में Lymphocytes,Plasma Cells आदि Mononuclear. सेलों का तथा Fibroblasts का संचय (Infiltration) विशेष रूप में होता है जिससे धमनी का स्रोत अवरुद्ध (Thrombosed) हो जाता है । (अर्थात् Arteritis तथा Endarteritis हो जाता है।)

परिणामत: पास का अवयव एक तो विष से, दूसरे रक्त के न मिलने से मृत होकर पनीर का सा या Caseous . हो जाता है । बाद में उसके चारों ओर Fibroblasts के आ जाने से धीरे धीरे स्नायु तन्तु का एक घेरा बन जाता है । इस प्रकार इस छोटी सी स्नायु तन्तु की बनी ग्रन्थि को Granuloma कह सकते हैं । इस प्रकार के अनेकानेक Granuloma से मिलकर एक बड़ा अर्बुद बन जाता है/जैसे ऊपर कहा गया है । इसके अन्दर की छोटी छोटी धमनियों के ~~[illegible]~~ स्रोत बन्द होते हैं जिससे इसके केन्द्रभाग को रक्त की मात्रा नहीं मिलती है एवं वह कुछ नर्म सा हो जाता है अर्थात् उसमें पनीर भाव (Caseation) हो जाता है । यह नर्म सा अर्बुद क्योंकि छूने में गोंद की एक डली जैसा प्रतीत होता है इसे Gumma कह दिया जाता है । (अन्दर Necrosis उसके बाहर Granulation उसके बाहर Fibrosis) क्योंकि इसमें Endothelial सेल नहीं होते। Lymphocytes . और Fibroblasts अधिक संख्या में होते हैं । इसका Tubercle से भेद सुगम हो जाता है । इसका पनीर सदृश पदार्थ कुछ पीला होता है जब कि क्षयांकुर का यह पदार्थ श्वेत रंग का होता है। यह पदार्थ इस रोग में बहुत काल तक द्रव रूप नहीं लेता, क्षयांकुर में यह पदार्थ शीघ्र द्रव रूप ले लेता है । अत: Tubercle से Gamma का भेद करना कठिन नहीं है । त्वचा, श्लेष्म कला, अस्थि या Periosteum आदि पर जहां वाह्याघात लगता रहता है वहां इसके ऊपर की त्वचा या श्लेष्मकला के निर्जीव होकर झड़ जाने से इसमें संक्रमण (Secondary Infection) होकर

इसमें पूय नाव भी हो जाता है अथवा इसके अन्दर की Necrosis की प्रक्रिया के बढ़ते जाने से यह नरम होकर खुल जाता है । इसका व्रण गोल, स्पष्ट किनारों का होता है । इस प्रकार इस रोग की तृतीय अवस्था में नाना अंगों में Gumma उत्पन्न हो जाते हैं । त्वचा, श्लैष्म कलाओं, अस्थि, सन्धि, यकृत, अण्ड ग्रन्थि Aorta तथा केन्द्रीय नाड़ी मण्डल (Central Nervous System) सुषुम्ना (Spinal Cord) में Gumma उत्पन्न होने की प्रक्रिया विशेषत: होती है।

त्वचा के फिरंग मण्डल :- Cutaneous Nodules :-

त्वचा के किसी एक या अनेक ऐसे प्रदेशों पर जहां संघर्ष विशेष रहता है, छोटी छोटी दाद्रु सी फिरंग ग्रन्थियां (Nodules) उत्पन्न हो जाती हैं । जिनके परस्पर मिल जाने से मण्डलाकार या अर्ध मण्डलाकार, नख जितने आकार के, छोटे छोटे मण्डल बन जाते हैं । पुरानी ग्रन्थियों के नर्म हो जाने और किनारों पर नई नई ग्रन्थियों (Nodules) के निकलने से ये मण्डल फैलकर बड़े होते जाते हैं तथा इनके बीच का पृष्ठ कुछ हलका, ताम्र वर्ण और साधारण त्वचा जैसा हो जाता है । इन्हें Nodular Cutaneous Syphilides. कहते हैं । यदि इन ताम्र वर्ण गोलाकृति फिरंग मण्डलों पर से छिलके भी झड़ने लगें तो इन्हें Squamous Syphilitic Eruptions कहते हैं । बाद में Nodules के स्थान पर स्नायु तन्तु (Cicatricial Tissue) आ जाता है । यदि इन Nodules में दाणिता प्रबल रूप से हो तो छिलकों के जनने के स्थान पर इनमें व्रण भाव हो जाता है जिससे वहां छिलकों से ढके छोटे छोटे व्रण हो जाते हैं । (Tubero Serpiginous Syphilide).

त्वचा के नीचे फिरंग ग्रन्थियां :-

त्वचा के नीचे के मेदो मय स्तर (Sub-cutaneous Tissue) में भी फिरंग ग्रन्थियां (Gumma) निकल आती हैं । ये गोलाकृति, वेदना रहित, स्पर्श में कठोर, रबर जैसी होती हैं । बहुत धीरे धीरे बढ़ती हैं और अपने ऊपर की त्वचा से जुड़ जाती हैं अर्थात् इनकी त्वचा जो अब तक समवर्ण थी अब वह भी कुछ रक्त वर्ण हो जाती है । बाद में इसमें व्रण भाव हो जाता है । जिससे कठोर दीवार वाला गोलाकृति व्रण बन जाता है । ऐसे अनेक व्रण पास पास निकल सकते हैं । टांगों, बाहुओं (पिछली ओर) भौंहों, नाक आदि की त्वचा के नीचे ये ग्रन्थियां विशेषत: निकलती हैं । इन्हें Sub-cutaneous Gumma कहते हैं ।

श्लैष्म कला में फिरंग ग्रन्थियां :-

मुख और गले की श्लैष्म कला के नीचे के अवयव (Sub-mucous Tissue) में फिरंग ग्रन्थियां (Gumma) निकल आती हैं । तालु, काकलक, गले, Tonsil , जिव्हा, किसी प्रदेश में ये दिखाई पड़ सकती हैं ।

इनके खुल जाने से इनमें उत्पन्न हुये व्रण अनेक होते, चिरस्थायी होते तथा वेदना रहित होते हैं, देखने में विषम आकृति के होते हैं । इनके कारण लसीका ग्रन्थियां सूजती नहीं हैं । जिव्हा पर उसके मध्य भाग पर भी Gumma के कारण पहले एक गोल सा उभार होता है फिर उसके नर्म होकर खुल जाने से कठोर दीवार का छिद्राकार, वेदना रहित व्रण हो जाता है । परन्तु बहुधा जिव्हा की छोटी रक्तवाहिनियों के समीप के प्रदेश में छोटे छोटे Gumma समीप समीप हो जाते हैं जिनके ऊपर की स्तर के दांतों के संघर्ष के कारण मृत हो जाने से श्वेत झिल्ली से छाये हुये विषमाकृति के उथले व्रण हो जाते हैं, जिन्हें Leucoplakia कहते हैं । इसी प्रकार के मृत हुई श्वेतझिल्ली से छाये हुये व्रण गालों पर भी हो जाते हैं । जिव्हा में उत्पन्न हुई इन फिरंग ग्रन्थियों में जब स्नायु तन्तु बढ़ जाता (Fibrosis हो जाता है) तो जिव्हा पर गहरी विवाहियां (Fixures) पड़ जाती हैं अथवा यदि जिव्हा की फिरंग ग्रन्थियों के ऊपर की श्लेष्म कला परकर झड़ जाय, उसकी Papillae. भी नष्ट हो जायें तो जिव्हा के किसी प्रदेश के नग्न हो जाने पर वहां पर मिर्च, मसाले तथा उष्ण आहार लगने लगते, और वेदना जनक हो जाते हैं । तृतीयावस्था की ये फिरंग ग्रन्थियां जिव्हा के ऊपर के पृष्ठ के मध्य भाग में हुआ करती हैं, जबकि द्वितीयावस्था के फिरंग व्रण (Snail Track) जिव्हा के निचले पृष्ट या किनारों पर हुआ करते हैं ।

कण्ठ में फिरंग ग्रन्थियां :-

इस रोग की द्वितीय या तृतीय अवस्था में कण्ठ में उसकी स्वर तन्त्रियों (Vocal Cords) की श्लेष्म कला के नीचे के अवयव में भी फिरंग ग्रन्थियां हो जाती हैं । बाद में इनके ऊपर गहरे व्रण भी हो सकते हैं जिससे स्वर भंग हो जाता है । इनमें वेदना का लक्षण नहीं होता ।

अस्थियों में फिरंग रोग :-

शरीर की चपटी अस्थियों जैसे कपालास्थियों, नासास्थि, तात्वस्थि, जंघास्थि (Tibia), उरोस्थि, फलकास्थि, हंसली की हड्डी (Clavicle) की Periosteum में विशेषत: तथा अन्य अस्थियों में उनके Periosteum के नीचे Gumma बन जाते हैं । नासास्थि में ये ग्रन्थियां (Snuffles) निकलें तो चिरकाल तक प्रतिश्याय रहता है तथा नासा बन्द रहती है और बाद में इसका निदान ठीक ठीक न हो तो Septum के निर्बल हो जाने से नासास्थि बैठ जाती है । कईयों को इस रोग में नाक पर रात को विशेष दर्द रहता है । तात्वस्थि (Palate Bone) में gumma निकलने से मध्य रेखा पर एक गोल उभार निकलता है जो फट कर फिर व्रण हो जाय तो इसमें छिद्र (Perforation) होकर नासा और मुख मार्ग परस्पर मिल

जाते हैं । कपालास्थियों में ये Gumma हों तो ऊपर की त्वचा के क्षीण हो जाने से संक्रमण (Secondary Infection)होकर कपालास्थि में अनेक व्रण हो जाते हैं ।

अन्तरस्थि फिरंग ग्रन्थि :- Endosteal Gumma:-

शाखाओं की दीर्घास्थियों के मध्य भाग के अन्दर फिरंग ग्रन्थिके हो जाने से वहां अस्थि में उभार सा हो जाता है अर्थात् अस्थि के अन्दर [illegible] फिरंग जनित Osteomyelitis हो जाता है । इसके कारण वहां अस्थि में शूल होता प्रतीत होता है जो इस ग्रन्थि के द्वारा नाड़ियों के दब जाने से होता है । आग के सेक से या रात को गर्म कपड़ों में जब वहां रक्तवाहिनियों में रक्त अधिक जमा हो जाता है तब नाड़ियों पर दबाव के बढ़ जाने से दर्द और बढ़ जाता है । अत: ऐसा रोगी गर्मी या गर्म कपड़ों में टांग को नहीं रखना चाहता । वहां दबाने से भी दर्द होता है ।

सन्धियों में फिरंग :-

सन्धियों में विशेषत: जानु सन्धियों Synovial Membrane में Gumma, हो जाने से दोनों ओर Chronic Synovitis हो जाता है । अर्थात् सन्धि कोष द्रव के भरने से फूल जाता है । पर जानुओं में वेदना नहीं होती । यह शोथ कठोर, पर रबर की तरह लचकीला होता है । सहज फिरंग रोग के कारण हो तो १०-१५ वर्ष की आयु में यह रोग होता है । इसमें रोग मांस पेशियां कृश नहीं होतीं जिससे क्षय रोग जनित सन्धि शोथ से इस का भेद हो जाता है ।

यकृत फिरंग :- यकृत में अनेक गोल गोल फिरंग ग्रन्थियां हो जाती हैं जिनमें स्नायु तन्तु की वृद्धि विशेष होती है । बाद में इनके केन्द्र भाग के मृदु हो जाने पर ये ग्रन्थियां कुछ नीचे दब जाती हैं । यकृत के पृष्ठ पर स्पर्श करने से ये ग्रन्थियां अनुभव होती हैं । इनमें स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है तथा यकृत का पृष्ठ विषम प्रतीत होता है । इन्हें देखकर यकृद्विद्रधि या कैंसर का सन्देह हो सकता है, परंतु विद्रधि में चिर प्रवाहिका का इति वृत्त होता है तथा केन्सर रोग में कामला, जलोदर, तथा कृशता के लक्षण विशेष होते हैं जो इसमें नहीं होते । फिरंग जनित यकृत् [illegible] वृद्धि का रोग ४५ वर्ष की आयु से पहले होता तथा केन्सर जनित यकृद्वृद्धि का रोग इस आयु के उपरान्त होता है ।

अण्ड में फिरंग रोग :-

अण्ड ग्रन्थि (Testis) के स्नायु तन्तु(Interstitial Tissue) में व्यापक रुप से फिरंग ग्रन्थियां Gumma बनने की प्रक्रिया होने से यह तन्तु आकार में बढ़ जाता है जिससे अण्ड ग्रन्थि आकार में बड़ी तथा स्पर्श में कठोर हो जाती है, उसमें दर्द नहीं होता, दबाने से भी कोई दर्द नहीं होता ।

इसे Syphilitic Sclerosis of Testis कह सकते हैं । कभी कभी अण्ड ग्रन्थि में स्थानिक फिरंग ग्रन्थि (Localised Gumma) भी होती है । एक ओर की अण्ड ग्रन्थि ही इस तरह इस रोग से ग्रस्त होती है ।

महा धमनी फिरंग :-Syphilitic Aortitis :-

महाधमनी (Aorta) के प्रथम भाग की दीवार में उसकी पोषक धमनियों (Vasa Vasorum) में वहि: तथा अन्त: शोथ (Periarteritis तथा Endarteritis) के विकार फिरंग जीवाणु के कारण होते हैं । इस कारण महा धमनी का पोषण ठीक ठीक न होने, एवं उसे आक्सिजन ठीक ठीक न मिलने के कारण उसमें क्षीणता की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है । उसका लचकीलापन घट जाता है तथा महाधमनी की मांस मय स्तर क्षीण होकर स्नायु तन्तु में परिणत हो जाती है। (उसमें Mesarteritis हो जाता है।) आभ्यन्तर कला (Endothelium) में भी स्नायु तन्तु के उत्पन्न हो जाने से वह भी क्षीण हो जाती है । इस प्रकार महाधमनी का यह प्रथम भाग जब निर्बल हो जाता है तो रक्त के दबाव से शिथिल होकर फैल जाता है। (उसमें Saccular Aneurism हो जाता है) महाधमनी के प्रथम भाग के शिथिल हो जाने से, इसका मूल भाग अर्थात् Aortic Valve का Ring या महाधमनी छिद्र भी चौड़ा हो जाता है । महाधमनी की आभ्यन्तर कला में क्षीणता के होने से महाधमनी कपाटियों (Valve-Cusps) में भी स्नायु भाव की प्रक्रिया या क्षीणता हो जाती है । इस प्रकार महाधमनी कपाटी (Aortic Valve) में असमर्थता उत्पन्न हो जाती है, जिससे विश्राम काल (Diastole) में रक्त की कुछ मात्रा वापिस वाम क्षेपक हृदय में लौट.आती है एवं वह आकार में बढ़ा हो जाता है ।

इस Aortitis का एक यह भी उपद्रव होता है कि आभ्यन्तर कला (Intima) के कुछ मोटा हो जाने से हृदय पोषक धमनियों के- जो कि इस महाधमनी के मूल भाग से निकलती हैं,- मुख भी तंग हो जाते हैं। हृदय पोषक धमनियों (Coronary Arteries) के मुखों के तंग हो जाने से हृदय को रक्त की मात्रा नार्मल से कम पहुंचती है जिससे उसके मांस में स्नायु तन्तु की वृद्धि (Fibrosis) की प्रक्रिया हो जाती है अर्थात् हृदय की शक्ति घट जाती है । इसी को फिरंग हृदय रोग (Syphilitic Heart Disease) कहते हैं ।

महाधमनी फिरंग के लक्षण :-

फिरंग जनित महाधमनी शोथ का रोगी, मध्यमायु का होता पर आयु की अपेक्षा अधिक वृद्ध प्रतीत होने वाला होता है । उसे पहले फिरंग रोग हो चुका होता है । वाम क्षेपक हृदय में रक्त के महाधमनी में से वापिस आते रहने से फुफ्फुस में भी रक्त संचय बढ़ जाता है, जिससे श्रम करने पर श्वास चढ़ जाता है, तथा वाम क्षेपक आकार में बढ़ा हो जाता है । हृदय में स्नायु

तन्तु की वृद्धि हो तो श्रम या मानस आवेश से न्यूनाधिक हृदय शूल का लक्षण भी होता है ।

इस रोग में Aortic Regurgitation अर्थात् महाधमनी कपाटी में से रक्त के वापिस वाम हृदय में आ जाने के सूचक लक्षण होते हैं । विश्राम काल (Diastole) के आरम्भ में रक्त के कुछ अंश के वापिस वाम हृदय में आ जाने से उरोस्थि (Sternum) की बांई और Parasternal प्रदेश में सुनने से एक कुछ फूत्कार ध्वनि सुनाई पड़ती है जिसे Aortic Diastolic Murmur कहते हैं । वाम हृदय की निर्बलता के लक्षण भी स्पष्ट होते हैं ।

रोग विनिश्चय :-

४०-५० वर्ष की आयु के व्यक्ति में हृदय शूल का लक्षण हो, आराम करते समय अर्थात् रात को भी हो, श्रम से शीघ्र श्वास चढ़ जाता हो, हृदय आकार में बढ़ा हो तो फिरंग जनित हृदय रोग का सन्देह हो जाना चाहिये।

मस्तिष्क में फिरंग रोग :- Cerebral Syphilis :-

सौभाग्य से १५-२० वर्ष पहले सुषुम्ना तथा मस्तिष्क सम्बन्धी फिरंग रोगजितना सुलभ था, अब नहीं रहा है तथापि इसका वर्णन संक्षिप्त रूप में यहां किया जाता है ।

फिरंग जीवाणु संक्रमण करने के बाद जैसे त्वचा श्लेष्म कला आदि में संश्रय करता या अपने अड्डे (Foci) बनाता है वैसे ही यह मस्तिष्क के आवरणों में भी करता है । इसीलिये इस रोग की द्वितीय अवस्था में भी मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव Cerebrospinal Fluid में Wasserman Test-positive होता है । परन्तु यह जीवाणु चिरकाल तक पड़ा हुआ भी वहां वृद्धि नहीं कर पाता, प्रसुप्त अवस्था में पड़ा रहता है । १०-१५ वर्ष बाद सम्भवत: प्रतिरोधक शक्ति के घट जाने से यह वहां मस्तिष्कावरण में विद्यमान धमनियों के समीप के लसीकामय प्रदेश (Perivascular Lymph Spaces) में बढ़ने लगता है जिससे इसके विपरीत Mononuclear Cells और Giant Cells की प्रबल प्रतिक्रिया होती है और धमनियों के आसपास तथा धमनियों में शोथ (Periarteritis तथा Endarteritis Obliterans) के विकार हो जाते हैं । फिर इस शोथ के घटने पर इन सेलों के स्थान पर स्नायु तन्तु उत्पन्न हो जाता है। (Granulation या Scar Tissue बनता है) बहुत से Granuloma. के मिलने से Gumma बन जाते हैं जिससे Pia में विशेषत: तथा Arachnoid और Dura में भी छोटी छोटी फिरंग ग्रन्थियां (Gumma) बनकर फिरंग जनित मस्तिष्कावरण शोथ (Gummatous या Syphilitic Meningitis) हो जाता है । देखने में मस्तिष्कावरण सूज कर फूले हुये दीखते हैं तथा Sub-arachnoid Space में भी चिकना परिस्राव (Exudate) बढ़ा हुआ होता है ।

मस्तिष्क के निम्न पृष्ठ पर के आवरण में यह रोग विशेषत: होता है । जिससे वहां पर विद्यमान मस्तिष्क नाड़ियाँ (Cranial Nerves) पर चढ़े हुये आवरण में इस रोग के कारण नाड़ियां भिंच जाती हैं, या बहुत सम्भवत: वहां रक्तवाहिनियों में इस रोग की प्रक्रिया से अवरोध (Thrantosis) हो जाता है जिससे नाड़ियों को रक्त न मिलने से वे क्षीण हो जाती हैं । Oculomotor Nerve के आवरण में यह फिरंग जनित आवरण शोथ (Meningitis) विशेषत: होता है । कभी कभी यह फिरंग जनित शोथ (Meningitis) पांचवीं तथा छटी मस्तिष्क नाड़ी पर भी हो जाता है ।

कभी कभी मस्तिष्कावरण की अपेक्षा मस्तिष्क धमनियों में फिरंग जनित शोथ अधिक होता है तब मस्तिष्क के निम्न स्तर पर विद्यमान Circle of Willis में तथा उसकी शाखाओं में शोथ (Syphilitic Endarteritis) होने से उनमें सिरावरोध (Thrombosis) अनायास हो जाता है । जिससे उनसे पोषित मस्तिष्क में मृत्यु की प्रक्रिया (Softening) आरम्भ हो जाती है ।

लक्षण :-

मस्तिष्क में फिरंग रोग के दुष्प्रभाव से अर्थात् फिरंग जनित Meningitis के कारण जल वृद्धि या Hydrocephalus होकर अथवा सिर के अन्दर के भार के बढ़ने से शिर दर्द का लक्षण होता है जो रात को अधिक होता है । बुद्धि की तीव्रता घट जाती है । स्मृति शक्ति निर्बल हो जाती है । इस रोग के कारण मस्तिष्क की द्वितीय नाड़ी (Optic Nerve) पर दुष्प्रभाव होकर तिमिर रोग (Optic Neuritis या Optic Atrophy) हो जाता है । मस्तिष्क की तृतीय नाड़ी के ऊपर दुष्प्रभाव विशेष हो तो पुतली के विकार तथा Starbismus या Squint का रोग हो जाता है ।

यदि फिरंग रोग का दुष्प्रभाव मस्तिष्क धमनियों पर विशेष हो (Syphilitic Endarteritis Obliterans हो) तो पहले किसी एक शाखा में अस्थायी निर्बलता का लक्षण या किसी अंग में कम्प (Twitching) का लक्षण होता है । शिर दर्द का लक्षण भी होता रहता है । बाद में Middle Cerebral Artery की Lenticulostriate शाखा में अवरोध (Thrombosis) होकर पक्षाघात का लक्षण हो जाता है । Upper Motor Neuron के रोग के कारण मृत अंग में स्तब्धता (Spasticity) भी होती है । मस्तिष्क द्रव की परीक्षा करने पर उसमें Lymphocytes बढ़े हुये पाये जाते हैं तथा उसमें प्रोटीन की मात्रा बढ़ी हुई होती है ।

सुषुम्ना काण्ड में फिरंग रोग :- Spinal Syphilis, Syphilitic Myelitis:-

(१) Spinal Meningomyelitis of the Dorsal Region:- पृष्ठगत सुषुम्ना-फिरंग :-

बहुधा सुषुम्ना के Thoracic प्रदेश के सुषुम्नावरणों (Piaarachnoid) में फिरंग ग्रन्थियां उत्पन्न हो जाया करती हैं (Gummatous Meningitis हो जाता है) ये आवरण सूजकर मोटे हो जाते एवं Cord के साथ चिपक जाते हैं । जिससे इस प्रदेश की रक्त वाहिनियों पर दबाव पड़ जाता है । उनमें अवरोध(Endarteritis) भी हो जाता है जिससे इस प्रदेश को रक्त की उचित मात्रा नहीं मिलती । इसीलिये सुषुम्ना में मृदुता आ जाती तथा उसके अनेक नाड़ी सेल नष्ट हो जाते हैं जिससे पहले पृष्ठ प्रदेश पर दर्द रहता है और फिर इसके कारण दोनों जंघायें धीरे धीरे निर्बल और स्तब्ध प्रतीत होने लगती हैं, अर्थात् उनमें उरुस्तम्भ का लक्षण हो जाता है । (Spastic Paraplegia हो जाता है) टांगों में चिमचिमाहट (Tingling) शूल, सुप्ति आदि संज्ञा सम्बन्धी विकृतियां भी हो सकती हैं । मूत्राशय पर भी नियंत्रण निर्बल हो जाता है अर्थात् उसमें मूत्राघात (Retension) होने लगता है ।

(२) Cervical Pachymeningitis :-

कभी कभी ग्रीवा प्रदेश की सुषुम्ना(Cervical Cord के Duramater) में यह रोग विशेष होता है । वह सूजकर Piaarachnoid के साथ जुड़ कर सुषुम्ना काण्ड पर दबाव डाल देता है । अर्थात् Cervical Pachymeningitis का रोग हो जाता है । इससे ग्रैवेय नाड़ियों (Cervical Nerves) के मूल भिंच जाते हैं । जिसका परिणाम यह होता है कि पहले ग्रीवा के पृष्ठ प्रदेश पर तीव्र शूल होता है फिर बाहुओं की मांस पेशियों में कृशता और निर्बलता के लक्षण होने लगते हैं जो एक ओर या दोनों ओर हो सकते हैं ।

(३) कलायखंज Locomotor Ataxy Tabes Dorsalis :- (Tabes =क्षय)

फिरंग रोग विष के संक्रमण के लगभग १० वर्ष बाद अर्थात् ३५-४५ वर्ष की आयु के पुरुषों में सुषुम्ना काण्ड के पश्चिम सूत्र स्तम्भों (Posterior Columns) में सुषुम्ना काण्ड के आवरण (Meninges) में से इस रोग की विष का संक्रमण हो जाया करता है जिससे इनमें क्षीणता (Atrophy + Gliosis) उत्पन्न हो जाती है । इन संज्ञा सूत्रों में से वेदना वाहक सूत्रों के रोग ग्रस्त होने से जंघाओं में समय समय पर क्षण भर के रहने वाले विद्युत्सदृश शूल के दौरे होते तथा पांवों में सुप्ति या सुइयों के चुभने की सी प्रतीति होती है । यह शूल शीत लगने या श्रम करने से बढ़ता है । जंघाओं के निम्न अग्रिम पृष्ट पर या नासिका पर या अग्रबाहुओं के आभ्यन्तर पृष्ठ पर सुप्ति की प्रतीति होती है । क्योंकि इसमें स्थिति की प्रतीति तथा कम्पन (Vibration) की प्रतीति भी पश्चिम सूत्रों के द्वारा होती है । स्वभावत: ये दोनों प्रतीतियां भी मन्द हो जाती हैं ।

सुषुम्ना में प्रतिक्षेप या Reflex वाहक सूत्रों के रोग

अर्थात् Hydrocortisone hemisuccinate [इन्जेक्शन] का मांस द्वारा
आमिना आप देना चाहिए।
अथवा पेनिसिलीन देने से $\frac{1}{2}$ घं. पहले antihistaminic
औषधि का पूर्व देना चाहिए या Penicillin की
2-3 बूंद त्वचा में डालकर पहले देख लेना
चाहिए कि त्वचा में शोथ या लालिमा तो नहीं होती।
त्वचा में यदि ऐसा न हो तभी उप मांस द्वारा देना चाहिए।

ग्रस्त हो जाने से Ankle Jerk, Knee Jerk (3-4 L) लुप्त हो जाते हैं। मूत्राशय के Reflex सूत्रों के रोग ग्रस्त हो जाने से मूत्र की प्रतीति कम हो जाती है जिससे मूत्र करते समय वह देर में उतरता है अथवा रात को बिस्तर पर निकल जाता है (Incontinence)। सुषुम्ना में Reflex सूत्रों के ग्रस्त होने से टांगों की मांस पेशियों में जो अकड़ाव Tone स्वभावत: रहती है वह घट जाती है अर्थात् उनमें Hypotonia का लक्षण पाया जाता है। दोनों पैरों को जोड़ कर खड़े होने पर खुली आंखों की अपेक्षा आंखों को बन्द कर देने पर रोगी लड़खड़ाने लगता है (Romberg's Sign) पुतलियां भी अधिक संकुचित रहती हैं + प्रकाश से भी प्रभावित नहीं होतीं। (Argyll Robertson's Pupil).

फिरंग रोग की चिकित्सा :-

Mahoney, Arnold तथा Harris (१९४३) ने पहले Penicillin को इस रोग के लिये उपयोगी पाया। इस रोग का निश्चय होते ही अर्थात् प्रथम तथा द्वितीय अवस्था में Procaine Penicillin के ६ लाख मात्रा में प्रतिदिन ८ दिन तक दे देने से पूर्ण लाभ हो जाता है या किसी देर तक कार्यकारी Penicillin (Penidure) का प्रयोग भी हितकर है।

इस रोग की तृतीयावस्था के लक्षणों के प्रकट होने पर भी Procaine Penicillin $१\frac{१}{२}$ Mega Units की मात्रा में प्रतिदिन देते हुये २१ दिन तक इसे जारी रखना चाहिये। तृतीयावस्था में Gumma संबन्धी शोथ की शान्ति के लिये इस औषधि के इस बड़ी मात्रा में देने से Herx Heimer Reaction से बचने के लिये रोगी को Pot. Iod. १० ग्रेन, Liq. Hydrrg. Per. Chlor. ३० बुन्द, Liq. Arse. २ बुन्द, Aquachlorof. $\frac{१}{२}$ औंस, जल $\frac{१}{२}$ औंस, मिलाकर बना मिश्रण दिन में तीन बार पैनिसिलिन के साथ साथ तथा इससे पहले पीछे ४-६ सप्ताह तक भी दे दिया जाता है। साथ ही Bismostab. ·१ ग्राम मात्रा में सप्ताह में १ बार मांस द्वारा दे देना चाहिये। Penicillin अनुकूल न होता हो तो Tetracycline की पहली १ मात्रा १ ग्राम की दे के फिर ·२५ ग्राम मात्रा ६-६ घन्टे पर १४ दिन तक दे देने से यह विष नष्ट हो जाता है। तृतीय अवस्था में यह औषधि सहन न हो तो Tetracycline की ·५ ग्राम मात्रा ६-६ घन्टे पर ३ सप्ताह तक देने से यह रोग निर्मूल हो जाता है। (१ मीगा युनिट = १० लाख युनिट्स)। इनके देने के साथ साथ Penicillin के बड़ी मात्रा में देने पर भी उपर्युक्त Reaction होने की आशंका नहीं रहती।

संक्रामक पूय मेह :- Gonorrhoea :-

कारण :-

Neisser के द्वारा प्रथम बार (१८७९) प्रदर्शित पूयमेह जीवाणु या Gonococcus नामक जीवाणु के मूत्र मार्ग में प्रवेश कर जाने के २-१० दिन

के अन्दर अन्दर उसके अग्रिम (Bulbous) भाग की श्लेष्म कला में शोथ हो जाता है जिससे वह लाल होकर सूज जाती है । कारण यह है कि यह जीवाणु बिना दबाव हुए श्लैष्मिक स्तर (Epithelium) में भी प्रवेश कर जाता है । फिर इसके अन्दर के Submucous स्तर में भी इसी प्रकार शोथ हो जाता है । इसका प्रत्युपाय न किया जाय तो दो तीन सप्ताह के बाद इस जीवाणु का संक्रमण मूत्र मार्ग के पिछले (Prostatic) भाग में भी हो जाता है । अब भी इसका प्रत्युपाय न हो तो फिर इस जीवाणु का संक्रमण वहां की श्लेष्म ग्रन्थियों की प्रणालियों (Mucous Ducts) तथा अष्ठीला ग्रन्थि (Prostate) की प्रणालियों में तथा श्लेष्म कला के गहरे स्तर में भी हो जाता है । इस अवस्था में फिर जीवाणु का निराकरण कुछ कठिन हो जाता है । इन प्रणालियों के पक जाने से व्रण बन जाते हैं । अष्ठीला में बने व्रण से यह जीवाणु उपाण्ड (Epididymis) में जा सकता है । इसके तथा शुक्राशय (Seminal Vesicles) के ग्रस्त होने से पुंस्त्व नाश हो सकता है ।

मूत्र-मार्ग के जिस भाग में यह शोथ या व्रण भाव चिरकाल बना रहता है वहां के आभ्यन्तर स्तर (Epithelium) के स्तम्भाकृति (Columnur) सैल क्रमशः क्षीण होकर चपटे (Squamous) हो जाते हैं और फिर उन क्षीण हुये सैलों के स्थान पर स्नायु तन्तु (Scar Tissue) आ जाता है जिससे मूत्र मार्ग के उस स्थान में संकोच (Stricture) उत्पन्न हो जाता है ।

लक्षण :-

पूय मेह रोग के प्रारम्भ होने पर मूत्र नाली के मुख पर लालिमा और खुजली के लक्षण होते हैं तथा मूत्र लग कर या जलन के साथ आता है । मूत्र मार्ग से पहले तो पतला और फिर गाढ़ा पीत वर्ण पूय निकलता है । मूत्र मार्ग के मुख को दबाने से भी पूय आता है । एक सप्ताह तक तीव्र मूत्र मार्ग शोथ हो जाता है । जिससे तबियत गिर जाती तथा हलका तापमान भी हो सकता है । पर १०-१२ दिन में यह तीव्रता शान्त हो जाती है, यद्यपि पूय जारी रहता है ।

पूय मेह जीवाणु के पश्चिम मूत्र मार्ग में संक्रमण कर जाने पर मूत्र के बार बार आने, उसके जल्दी से लगने तथा उसमें कृच्छ्रता के बढ़ जाने के लक्षण होते हैं । मूत्र के पहले भाग के निकल जाने पर उसके पिछले भाग को एक गिलास में लेकर देखने पर वह धुंधला दीखता है । आने वाले पूय में इस रोग का जीवाणु Neisseria Gonorrhoeae देखा जा सकता है । प्रोस्टेट ग्रन्थि में शोथ हो जाय तो सीवन प्रदेश तथा मलाशय में दर्द प्रतीत होने लगता है, जो मल त्याग के समय बढ़ जाता है ।

जीर्ण पूय मेह रोग (Gleet) में :-

समय समय पर मूत्र मार्ग से पूय आता रहता है । मूत्र मार्ग से सम्बन्धित विद्रधि Periurethral Abscess सीवन प्रदेश में अधिकतः होती है

४. लाभ

Urethral Fistula तथा मूत्र मार्ग में अवरोध (Urethral Stricture) के उपद्रव भी हो सकते हैं। इस अवस्था में अष्ठीला ग्रन्थि (Prostate) तथा उपाण्ड (Epididymis) में भी जीवाणु संक्रमण जनित शौथ हो सकता है। मलाशय परीक्षा करने पर अंगुली को सूजा हुआ प्रोस्टेट अनुभव होता है। मूत्राशय के निम्न भाग में शौथ हो जाय तो बार बार मूत्र आता है और मूत्र के अन्त में दर्द प्रतीत होता है। इस अवस्था में रक्त के अन्दर भी जीवाणु का संक्रमण होकर कलाई की सन्धि में या कन्धे के ऊपर Deltoid के नीचे की थैली (Bursa) में शौथ (Fibrositis) और दर्द के लक्षण हो सकते हैं। हाथों की कण्डराओं (Tendon Sheaths) में तथा एडी के नीचे के मृदु मांस (Plantar Rascia) या Tendoachillis तथा एडी की हड्डी के बीच की थैली में शौथ तथा दर्द के लक्षण हो सकते हैं। नेत्र के कृष्ण पटल (Iris) या बाह्य पटल (Conjunctiva) में भी शौथ हो सकता है और इससे दृष्टि में धुंधलापन हो सकता है। स्त्री में योनि मार्ग के मुख (Vulva) पर गर्मी तथा मूत्र के समय दर्द होने का लक्षण होता है। यदि Cervix या गर्भाशय पर शौथ हो जाय तो लाल पानी आने लगता तथा कटि शूल का लक्षण हो जाता है। योनि मार्ग के द्वारा गर्भाशय तथा प्रणालियों (Fallopion Tubes) में भी शौथ तथा पूय भाव के फैल जाने से अर्थात Endometritis, Menorrhagia, Metrorrhagia, Salpingitis होकर पेड़ू में और कमर में दर्द हो जाता है साथ ही ज्वर भी होता है। सौभाग्य से संक्रामक पूय मेह से होने वाले उपर्युक्त उपद्रव पहले की अपेक्षा अब बहुत कम देखने में आते हैं।

चिकित्सा :-

Procaine Penicillin के ६ लाख यूनिट की मात्रा में मांस द्वारा १-२ दिन देने से यह रोग शान्त हो जाता है।

अथवा Streptomycin के १ ग्राम की दैनिक मात्रा में मांस द्वारा १-२ बार देने से भी यह रोग ठीक हो जाता है। अष्ठीला ग्रन्थि (Prostate) गर्भाशय तथा उपाण्ड में शौथ हो या जीर्ण पूय मेह रोग हो तो इस औषधि का प्रयोग ४-५ दिन तक किया जाता है। मूत्र की जलन को रोकने के लिये Pot.Cit. ३० ग्रेन तथा Tr. Hyoscyamus ३० बुन्द का प्रयोग किया जा सकता है। Tetracycline १ ग्राम दैनिक मात्रा को ४ बार करके ६-६ घन्टे पर देने से भी ४ दिन में यह रोग ठीक हो जाता है।

Sulpha-Thiazole या Sulphadiazine के प्रथम २ ग्राम और फिर १-१ ग्राम मात्रा में ६-६ घन्टे बाद देने से ३ दिन में यह रोग शान्त हो जाता है। पूय मेह जनित उपद्रवों के लिये Penicillin को ६ लाख से १० लाख यूनिट मात्रा में प्रतिदिन १ बार सप्ताह तक दे देना चाहिये। Iritis

का उपद्रव हो तो Hydrocortisone को आंख में प्रतिदिन २-३ बार डालना भी उचित है ।

आयुर्वेदानुसार :-

आयुर्वेद में इस आगन्तु रोग (फिरंग) की निवृत्ति के लिये चिरकाल से सोमल और पारद का प्रयोग किया जाता है । उदाहरणत: सोमल, हरताल, हिंगुल एक एक भाग को मिलाकर निम्बु स्वरस से अनेक बार मर्दन करके फिर उसमें टंकण १२ भाग, लोह भस्म ३/२ भाग मिलाकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाकर दिन में दो तीन गोलियां कुछ दिन तक दी जाती हैं ।

संक्रामक पूयमेह में आयुर्वेदानुसार शीत गुण मूत्रल औषधियों के प्रयोग से जब मूत्र खुल कर अधिक मात्रा में आता है तब यह जीवाणु बाहिर निकल जाता है। जिससे मूत्र मार्ग का शोथ शान्त हो जाता है । इस प्रयोजन से गोखरु २ तोला, हजरुलयहूद २ तोला, इलायची छोटी, शीतल चीनी १-१ तोला, यवक्षार ६ माशा, शोरा कलमी ३ माशा मिलाकर २ माशे की मात्रा में बराबर मिश्री के साथ दिन में ३-४ बार दूध की लस्सी के साथ दे सकते हैं । अथवा सत विरोजा, शीतल चीनी, इलायची छोटी, श्वेत राल, वंश लोचन २-२ तोला, प्रवाल भस्म १ तोला, मिलाकर २ माशे की मात्रा में बराबर मिश्री के साथ मिलाकर दूध की लस्सी के साथ दिन में २-३ बार दे सकते हैं । २-३ सप्ताह तक इनका प्रयोग जारी रखना चाहिये ।

===========

723-945

दंश रोग :- (Bites)

सर्प दंश :- Snake Bite :- Snake Venompoisoning.

सर्प, कृषि प्रधानप्रदेशों में अधिक होते हैं। इनका प्रधान आहार चूहे होते हैं और वे क्योंकि कृषि प्रधान प्रदेशों में रहते हैं इससे ये भी वहां ही अधिकत: रहते हैं। इनके मुख की लाल ग्रन्थियां (Parotid Glands) ही विष की ग्रन्थियां होती हैं तथा उर्ध्व हनु अस्थि (Maxilla) में दोनों ओर एक एक बड़ा दांत होता है जो एक नाली के द्वारा विष ग्रन्थियों से सम्बन्धित रहते हैं। विषधर सर्पों में से एक तो फणधार श्रेणी या Cobra श्रेणी के सांप होते हैं जो अपने फण से पहचाने जाते हैं। दूसरे Krait श्रेणी के छोटे आकार के सांप होते हैं। तीसरे Daboia या Russles Viper जाति के सांप होते हैं। ये सभी अपनी लाला ग्रन्थियों या विष ग्रन्थियों के स्राव के द्वारा अपने शिकार को मारते हैं तथा उसे पचाते भी हैं। यह विष द्रव कुछ एक प्रोटीनस का बना हुआ होता है। जिस प्रोटीन का दुष्प्रभाव नाड़ी मण्डल (N.System) पर विशेष होता है उसे Neurotoxin या Neurolysin जिसका विशेषत: रक्त पर दुष्प्रभाव होता है उसे Haemolysin तथा जिसका हृदय पर दुष्प्रभाव विशेष होता है उसे Cardiotoxin कहते हैं। प्रत्येक सर्प की विष में ये न्यूनाधिक मात्रा में होते हैं। Neurolysin का ~~दुष्प्रभाव~~ संज्ञावाही, चेष्टावाही तथा अनैच्छिक नाड़ियों पर तथा घातक (Paralytic) प्रभाव होता है। श्वास प्रश्वास के केन्द्र पर ऐसा प्रभाव होने से ऐसे व्यक्ति में श्वास कर्म फेल होने लगता है। इसी प्रकार रक्त संचार कर्म भी फेल होने लगता है। श्रवण दर्शन आदि संज्ञायें भी लुप्त होने लगती हैं। Proprioceptive या स्थिति के लिये आवश्यक नाड़ियों पर दुष्प्रभाव होने से खड़ा नहीं हुआ जाता। जिव्हा, कण्ठ आदि में भी घात (Paralysis) के लक्षण हो जाते हैं।

सर्प विष में कुछ प्रोटीन्स रक्त नाशक या Haemolysins होते हैं। इनसे रक्त कणों के बड़ी मात्रा में नष्ट हो जाने से अवयवों तक आक्सिजन उचित मात्रा में नहीं पहुंच पाती। रक्त के Prothrombin या Thrombin के नष्ट हो जाने से सूक्ष्म रक्त वाहिनियों में से रक्त स्राव होने का लक्षण हो जाता है। Cobra के विष में भी ये Haemolysins होते हैं पर Daboia श्रेणी के सर्पों में ये विशेष होते हैं।

सर्प विष में प्रोटीन पाचक तत्व Proteolysins भी होते हैं। जिससे दष्ट स्थान के अवयव ढीले पड़ जाते या मर जाते हैं। रक्तवाहिनियों के ~~भेदक~~ अन्दर की झिल्ली Endothelium के स्थान स्थान पर नष्ट हो जाने से रक्त स्राव होने लगता है। इससे शरीर में Histamine की उत्पत्ति भी ~~अब~~ अधिक होती है और उससे हृदय तथा रक्तवाहिनियों की शक्ति क्षीण होजाती

रोगी के लिए बोलना या निगलना कठिन हो जाता है मुख से
लार टपकने लगती है। (फिर श्वास में कुछ कठिनता होने
लगती है। श्वासप्रश्वास के फेल होने से ही अन्त में रोगी)
की मृत्यु होती है वैसे रोगी अन्त तक होश में रहता है

है ।(Cardio Vascular Failure होती है)। Daboia श्रेणी के सर्पों में यह विशेषत: होता है। Krait जाति के सर्पों की विष में भी यह विशेष रूप में होता है।

लक्षण :-

हमारे देश में अधिकतर सर्पदंश Cobra तथा Kraits के कारण होते हैं। इन दोनों के लक्षण लगभग एक से होते हैं जो दंश के बाद १५ मिनट से लेकर एक घन्टे तक आरम्भ होते हैं। पहले अरुचि और वमन के लक्षणों के साथ निद्रा का लक्षण होता है अर्थात् रोगी सुस्त सा हो जाता और खड़ा नहीं रह सकता। दष्ट स्थान की परीक्षा करने पर दंश के स्थान अधिक स्पष्ट नहीं होते। स्थानिक शोथ व स्थानिक वेदना का लक्षण भी स्पष्ट नहीं होता। Daboia जाति के सर्प दंश के स्थान पर ये लक्षण अधिक स्पष्ट होते हैं तथा वहां से रक्त मिश्रित द्रव भी निकलता दीखता है। Cobra तथा Kraits के दंश में खड़ा हो सकना या भाषण कर सकना भी कठिन हो जाता है। बाद में जब जिव्हा गले आदि में घात (Paralysis) होने लगता है तब निगरण भी कठिन हो जाता है। मुंह से लार गिरती रहती है। आंखों की ऊपर की पलकें भी नीचे गिर जाती हैं। क्रमश: श्वास प्रश्वास उथला होता जाता तथा उसकी गति मन्द होती जाती है। और अन्त में उसके फेल हो जाने से मृत्यु हो जाती है। श्वास केन्द्रों के साथ साथ हृदय और रक्तवाहिनियों की निर्बलता भी मृत्यु का कारण होती है।

Daboia जाति के सर्प का दंश हो तो स्थानिक शोथ और वेदना तथा आसपास के रक्त पित्त (Ecchymoses) के लक्षणों के अतिरिक्त सर्वांग शैत्य (Collapse) नाड़ी नैर्बल्य, मूर्छा, फैली हुई निस्संज्ञ पुतली, गिरा हुआ रक्त भार, नासिका आदि की श्लेष्म कलाओं से रक्त स्राव या मल मूत्र के साथ रक्त स्राव होने के लक्षण होते हैं। मूत्र की परीक्षा करने पर दंश के बाद ही उसमें रक्त कण देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार रक्त का Coagulation Time यदि १० मि० से कम हो तो समझना चाहिये कि सांप इस जाति का नहीं है।

Echis Carinatus जाति के सांपों के दंश से भी ऐसे ही लक्षण होते हैं। पर वे Daboia जाति के सर्पों की अपेक्षा कम विषैले होते हैं। यदि विष के लक्षण शीघ्र प्रकट हो जायें, दृष्टि नाश हो जाय, मूर्छा हो जाय, रक्त भार शीघ्र शीघ्र गिरता जाय तो ऐसे दंश को असाध्य समझना चाहिये।

चिकित्सा :-

स्थानिक-बन्धन चिकित्सा :-

काटने के कुछ मिन्टों के अन्दर अन्दर ही जब तक कि

विष लसीका वाहिनियों द्वारा ऊपर न गया हो तब तक बन्धान कर देने से विष को फैलने से रोका जा सकता है । विष लसीका वाहिनियों द्वारा जाता है + उनका बन्द कर देना आवश्यक होता है, + शिराओं का बन्द कर देना आवश्यक नहीं । इसके लिये $\frac{3}{8}$ इंच मोटी रबर की नाली कपड़े की काई पट्टी या यज्ञोपवीत या बूट के तस्मे आदि से काम लिया जा सकता है । अंगुली में दंश लगा हो तो उसकी जड़ में बन्धान लगाना चाहिये । पांव या टांग में दंश हो तो गोड़े से ऊपर उरु अस्थि पर और हाथ व अग्रबाहु पर दंश हो तो कोहणी से ऊपर ऊर्ध्व बाहु Humerus पर बन्धान को एक लकड़ी की सहायता से इतना कस कर बान्धना चाहिये कि नख रक्त हीन, श्वेत दीखने लगें अर्थात् वहां रक्त संचार लगभग बन्द हो जाय । प्रति १५-२० मिनट पर २०-३० सैकण्ड के लिये बन्धान को ढीला कर देने से वह श्वेत हुआ प्रदेश फिर लाल हो जाता है और रोगी बन्धान से बेचैन भी नहीं होता । फिर दष्ट स्थान को Potassium Permanganate के घोल से धोकर Carbolic Acid के ५ प्र०श० जलीय घोल को $\frac{1}{2}$,१ सी०सी० या कुछ बून्दों की मात्रा में दष्ट स्थान के आसपास $\frac{1}{3}$ इंच गहराई तक डाल देना चाहिये। कार्बोलिक एसिड न मिले तो उसकी सहायता से बने लाइफबाय साबुन को उबले पानी में घोलकर उसकी बून्दे इंजेक्शन द्वारा वहां डाल देनी चाहियें । इस ऐसिड से Cobra तथा Krait की विष नष्ट होती हैं । Daboia की विष पर इसका प्रभाव नहीं होता । Daboia या Echis जाति के सर्प के काटने पर जब रक्त में Haemolysis की प्रक्रिया होती है एवं जब रक्त की जमने की शक्ति घट जाती है, शीत चिकित्सा Cryotherapy ठीक रहती है अर्थात् बंधान या Ligature के बाद दंश स्थान पर बर्फ रख दी जाती है । ऊपर सारी शाखा को बर्फीले जल में रख दिया जाता है । ५ मिनट उसमें रखने के बाद बन्धान को खोल दिया जाता है । शाखा को २ घन्टे तक इस प्रकार बर्फीले जल में रखा जाता है । उसके बाद सारी शाखा पर पिसी हुई बर्फ २४ घन्टे तक बांधी जाती है । इससे विष का विलयन रुक जाता है ।

यदि चपटी जगह पर अर्थात् पांव या धड़ पर सांप ने काटा हो तो वहां Cross-incisions देकर ऊपर कप लगा के या ब्रेस्ट पंप लगा के विष को बाहर खींचना चाहिये + (Suction), कोई औषधि न मिल सके तो चीरा देकर रक्त निकालना चाहिये

सीरम चिकित्सा :- Serum Therapy :-

Cobra Venom के विपरीत घोड़ों से तैयार किया हुआ Anti-Venene उसकी विष तथा कुछ Krait जाति के सर्पों की विष को नष्ट कर सकता है । Daboia तथा Echis की विष को नष्ट नहीं कर सकता । इनकी विष के द्वारा इनके विपरीत तैयार किया Serum केवल इन्हीं की विष को नष्ट कर सकता है । Cobra या Krait जातियों के सांपों

Antivenine को १ पौण्ड ग्लूकोज सेलाइन में मिलाकर ड्रिप कर के शिरा द्वारा देना चाहिये। इसी में Hydrocortisone या Efcorlin soluble १०० मिलि. मिला देना चाहिए। इससे रोगी को allergy से भी बचाया जा सकता है। Allergy से बचाने के लिये रोगी को Anthisan १०० मिलि. मात्रा में मांस द्वारा साथ ही दे देना चाहिए। Allergy के लक्षण प्रकट हो तो Antivenine को बन्द कर के Adrenaline आधा सी.सी. मांस द्वारा देना चाहिए और फिर ०८८ कर ३५ फुक्त इन्जेक्शन शिरा द्वारा देना चाहिए।

की विष को नहीं कर सकता । इससे पहले कि सर्प विष दष्ट स्थान से शरीर में फैले इसका प्रयोग हो जाना चाहिये अर्थात् शिरा द्वारा इसकी २०-३० सी०सी०की मात्रा तो रक्त में डाल ही देनी चाहिये । साधारण सांप के काटने पर कुछ बुन्दों से लेकर दो सी०सी० तक की मात्रा सर्प विष की शरीर में प्रविष्ट होती है । यदि औसतन $\frac{१}{२}$ या १ सी०सी० की कल्पना कर ली जाय तो क्योंकि २ सी०सी० विष में ठोस Venom की मात्रा ६५० मिलि० के लगभग हुआ करती है । अत: $\frac{१}{२}$ से १ सी०सी० अन्त: प्रविष्ट विष के द्वारा शरीर में ठोस विष की १५०-३०० मिलि० के लगभग मात्रा शेरीर में प्रविष्ट हो जाती है । अब क्योंकि कसौली में तैयार की गई Anti Venene या Mixed Antivenene की एक सी०सी० की मात्रा २ मिलि० Cobra तथा ४ मिलि० Daboia विष को नष्ट कर सकती है. अत: १५०-३०० मिलि० Cobra की ठोस विष को नष्ट करने के लिये इस Antivenene की औसतन ७५ से १५० सी०सी० की मात्रा शरीर में डालनी आवश्यक हो जाती है । यदि सांप काटे हुये कुछ मिनट ही हुये हों या १, १$\frac{१}{२}$ घन्टा तक का ही समय बीता हो तो इसकी कुछ मात्रा दष्ट स्थान के आसपास के अवयवों में भी डाल देनी चाहिये ताकि वहां पर विद्यमान विष को निष्क्रिय किया जा सके । बालक तथा पतले व्यक्ति को तरुण तथा स्थूल व्यक्ति की अपेक्षा बड़ी मात्रा में यह Serum दिया जाता है । एक इंजेक्शन देने के ३-४ घन्टे बाद यदि रोगी की अवस्था न सुधारे तो दूसरा इंजेक्शन फिर देना चाहिये । प्रथम इंजेक्शन देने के १$\frac{१}{२}$ घन्टा बाद प्रथम बांधे हुये बन्धान को खोल देना चाहिये ।

रोगी को लिटा के गर्म रखना चाहिये । गर्म पानी या गर्म काफी Spirit Ammonia Aromatic १५-२० बुन्द डाल के पिलाते रहने का रिवाज है पर रक्तसंचार को उत्तेजित नहीं करना चाहिये क्योंकि विष को फैलने में मदद मिलती है बाद में चाहिये । रक्त भार को गिरने से रोकने के लिये Adrenaline या Posterior Pituitary(Pitressin) या Cortin का इंजेक्शन देना चाहिये या Coramine का इंजेक्शन देना चाहिये । Shock या अति नैर्बल्य के लिये ५ प्र०श० Dextrose Solution को शिरा द्वारा बुन्द बुन्द करके रक्त में डालना चाहिये ।

आयुर्वेदानुसार सर्प दंश :-

चरक तथा सुश्रुत ने सर्पों का प्रधानत: दर्वीकर (फणियर) मण्डली (Daboia) तथा राजिमान् (Krait) इन तीन जातियों का उल्लेख किया है।(च०चि०।२३ अ०।१२३ श्लो०, सु०कल्प०अ०।४)। दर्वीकर के लिये कहा है कि वह कृष्ण वर्ण, फणी तथा शीघ्र गामी होता है । मण्डली को स्थूल, चमकदार, मण्डल युक्त कहा है । राजिमान् उनसर्पों को कहा है जो विविध वर्ण की रेखाओं वाले चित्रित होते तथा आकार में बड़े नहीं होते ।

दर्वीकर की विष को वाताधिक, क्षिप्र प्रकोपक, मण्डली

पित्ताधिक
की विष को [illegible], त्रिगुण प्रकोपक तथा राजिमान् की कफाधिक त्रिगुण प्रकोपक कहा गया है ।

दर्वीकर दंश के लक्षणों के विषय में कहा है कि इसका दंश स्थान अस्पष्ट, रुक्ष, कुछ कृष्ण वर्ण तथा स्रावी होता है । इसकी विष के रक्त में व्याप्त होने पर त्वचा, नख, मुख आदि पर कृष्णता, शरीर में शीतलता, अशक्ति, निश्चेष्ठता, गले, कण्ठ आदि में अशक्ति, मुख में फेनोद्गम लाला प्रसेक, सन्धियों में विश्लेष, तन्द्रा, निद्रा, श्वासोपरोध, रक्त स्रोतोवरोध, स्वेद प्रवृत्ति आदि लक्षण होते हैं ।

मण्डली दंश के लक्षणों के विषय में कहा है कि इसका दष्ट स्थान स्थूल, स्पष्ट, उष्ण, शोथ युक्त, रक्त स्रावी होता है । उसमें क्लेद, कोथ के लक्षण भी हो जाते हैं । इसकी विष के व्याप्त होने पर दाह, मद, मूर्छा, पिपासा, [illegible] शीतेच्छा, रक्तस्राव आदि लक्षण होते हैं ।

राजिमान् दंश के लक्षणों के विषय में कहा है कि इसका
दष्ट स्थान स्थिर, पिच्छिल, स्निग्ध,
शोफ युक्त, पाण्डुवर्ण, शीत होता है । इसकी विष के व्याप्त होने पर अरुचि वमन, हृल्लास, मुख स्राव, निद्रा, त्वगादि श्वेत वर्णता, अंग गौरव, तमःप्रवेश, कृच्छ्रोच्छ्वास आदि लक्षण होते हैं ।

सर्पदंश चिकित्सा :-

स्थानिक चिकित्सा :-

सर्प दंश को अधिक देर न हुई हो तो शाखागत दंश स्थान से चार अंगुल ऊपर दृढ़तर अरिष्टा या वेणिका बन्धन कर देने का विधान किया है और कहा है कि दंश स्थान को थोड़ा सा पच्छ कर मुख में वस्त्र या गुंधा हुआ आटा रख के विष को ऊपर चूस लेना चाहिये या सिंगी आदि से उसे बाहर खींचना चाहिये । फिर समीपस्थ सिराओं में किसी में वेधन करके कुछ रक्त निकाल देना चाहिये ताकि जो विष ऊपर जा रहा हो वह बाहर निकल जाय। जो विष उस स्थान पर रह जाय उसके नष्ट करने के लिये श्वेत रत्ती, नीला थोथा, सज्जी, गृहधूम की आक के दूध में बनी १-१ रत्ती की गोलियों में से एक गोली को आक के दूध में घिसकर वहां लेप करने के लिये कहा है । वैद्य लोग केवल नीले थोथे को ही आक के दूध में घिस कर या केवल आक के दूध को ही लगा देते हैं । ऊपर शरीर में व्याप्त विष को निकालने के लिये रीठे के वक्कल के सूक्ष्म चूर्ण को ४-६ माशे की मात्रा में १ पाव जल में मिला पिला कर वमन करा देते हैं । आधे घन्टे तक वमन न हो तो दूसरी मात्रा भी पिला देते हैं । कुछ लोग वन्ध्या कर्कोटकी मूल के १ तोला चूर्ण को ५-७ मिर्चों के साथ १ पाव जल में भली प्रकार घोट छान कर पिलाते हैं जिससे वमन हो जाती है । कुछ देर बाद भी वमन न हो तो दूसरी मात्रा भी पिला देते हैं । वमन हो जाने पर १ छटांक घृत पिलाते हैं । फिर प्याज के रस

की १ तोला की मात्रा १-१ घन्टे पर हृदय की दब रक्षा के लिये देते रहते हैं। इसमें २-२ माशे टंकण भी कोई कोई मिला के देते हैं। कहा जाता है कि केले के तने का रस १ पाव ५-७ काली मिर्चों के साथ पिलाने से शरीर में गया सर्प विष नष्ट होता है पर इस विषय में निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता।

श्वान दंश या जल त्रास :- (Hydrophobia) अथवा Rabies (Rabere=Range =क्रोध) :-

उन्मत्त कुत्ते के तथा कभी कभी उन्मत्त भेड़िये और गीदड़ के आदमी या गाय आदि जन्तुओं को काटने से उनकी लाला में विद्यमान तथा Porcelain Filters में से छन जाने वाला १००-१५० मिलि माईक्रोन व्यास का Virus काटे व्यक्ति की बहिस्त्वक् (Epidermis) के नीचे की नाड़ियों में पहुंच जाता है और उनके मध्य सूत्र या Axis Cylinders में वृद्धि करता हुआ ऊपर को फैलता जाता है और १ से ३ महीने तक के समय में सुषुम्ना काण्ड तथा मस्तिष्क के सेलों तक पहुंच कर उनको ग्रस्त कर देता है एवं जल त्रास रोग के रूप में प्रकट होता है अर्थात् यह सूक्ष्म विष नाड़ियों पर ही आक्रमण करता है। (Neurotropic है) जिसके कारण वे उत्तेजित हो जाती हैं। नाड़ियों के द्वारा ही यह विष लाला ग्रन्थियों तक पहुंचता है, यद्यपि आदमी में यह लाला ग्रन्थियों में नहीं जाता। रोगी पशुओं के रक्त, लसीका (Lymph), दुग्ध, वीर्य आदि धातुओं में यह विष नहीं पाया जाता तथा यह रोग कुत्तों में किसी ऋतु में भी हो सकता है।

ग्रीवा में या सिर में कुत्ते ने काटा हो तो रोग लगभग एक महीने में, बाहु में काटा हो तो $1\frac{1}{2}$ महीने में, टांगों में काटा हो तो ३ महीने के समय (Incubation Period) के बाद यह रोग प्रकट होता है। बालकों में इस विष के प्रसरण का यह समय छोटा होता है।

विकृति :-

रोग ग्रस्त प्राणी के सुषुम्ना तथा मस्तिष्क की परीक्षा करने पर Cerebrospinal Fluid मात्रा में बढ़ा हुआ पाया जाता है। आवरणों अर्थात् Pia और Arachnoid में रक्त पित्त के चिन्ह (Petechiae) पाये जाते हैं। नाड़ी सैलों के Cytoplasm के अन्दर विशेषत: Hippocampus, Cerebellar Cortex में अण्डाकृति या गोलाकृति Inclusion Bodies पाये जाते हैं जिन्हें Negri ने पहले देखा था। अत: इन्हें Negri Bodies भी कहते हैं। Neurones में तथा लाला ग्रन्थियों के स्रावी सैलों में क्षीणता का लक्षण पाया जाता है।

लक्षण :-

कुत्ते में रोग हो तो वह भटकना और उन्मत्त होकर भागने

लगता है । रास्ते में जो पशु या व्यक्ति मिलता है उसे झुक मार के काट लेता है । उसके मुख या अधोहनु गले व कंठ में घात (Paralysis) के हो जाने के कारण उसका खाना पीना बन्द हो जाता है । उसके मुख से लार टपकती रहती है । कण्ठ में घात होने से उसकी आवाज बदल जाती है । फिर पहले पिछली टांगों और बाद में सारे शरीर में घात होकर २ से ५ दिन के अन्दर अन्दर उसकी मृत्यु हो जाती है ।

मनुष्य में रोग हो जाय तो प्रारम्भावस्था (Premonitory Stage) :- प्रारम्भ में १ दिन दंश स्थान में रह रहकर दर्द दाह या चिमचिमाहट होने लगती है । वाह्य हवा, शब्द, प्रकाश आदि के लिये सहनशीलता घट जाती, दूसरे शब्दों में इनके लिये विक्षोभ शीलता बढ़ जाती है । मांस पेशियों में विशेषत: मुख, गले आदि में स्तम्भ के होने से निगलने में कठिनता हो जाती है, आवाज भी बैठ जाती है, मन में भय, चिन्ता या विषाद का लक्षण होता है ।

विक्षोभावस्था :-(Stage of Excitement):-

दूसरे दिन विक्षोभ शीलता और मांस पेशियों में स्तम्भ हो जाने का लक्षण अधिक स्पष्ट हो जाता है । हवा का झोंका लगने से भी मांस पेशियों में विक्षोभ एवं स्तम्भ उत्पन्न हो जाता है (Aerophabia) मुख, गले व कण्ठ में विशेषत: स्तम्भ होता है (Dysphagia) और जल को देखने मात्र से ही यह स्तम्भ हो जाता है परिणामत: जल अन्दर जा नहीं सकता मुख में डाला जल बाहिर आ जाता है । मुख से लार टपकती रहती है, क्योंकि वह अन्दर जा नहीं सकती । नाड़ी मण्डल की विक्षोभशीलता इतनी बढ़ जाती है या दूसरें शब्दों में उसकी सहन शक्ति इतनी घट जाती है कि जल के शब्द से ही जल त्रास का यह दौरा हो जाता है । कण्ठ में स्तम्भ के बढ़ने से आवाज बैठ जाती है । रोगी भयभीत दीखता है । कटि में भी स्तंभ हो सकता है (Opisthotonus) Reflexes Diaphragm में भी स्तम्भ हो जाता है बढ़े हुऐ होते हैं । इसके बाद घात की अवस्था आरम्भ होती है (Stage of Paralysis) इसमें सर्व अंग शिथिल हो जाते हैं । मृत्यु चौथे, पांचवें दिन तक हृदय के फैल हो जाने से होती है । रोगी की समझ अन्त तक बनी रहती है । परीक्षा करने पर रोगी का तापमान १०१ फा० के लगभग होता है। नाड़ी गति तीव्र होती मुख से लार टपकती है । नाक से भी श्लेष्म स्राव होता है । रोगी में चेष्टा प्रधान मानस रोग के लक्षण होते हैं । २-३ दिन बाद अन्त में Paralysis या मांस पेशियों में घात का लक्षण दृष्टि गोचर होता है ।

रोग निदान :-

जल आदि के निगलने में कठिनता के साथ साथ सुषुम्ना एवं मस्तिष्क के विक्षोभ सम्बन्धी लक्षण हों और कुत्ते के काटने का इतिवृत्त हो

वृश्चिक दंशमें हो सकता है वेदना तीव्र न हो परन्तु हृदय और रक्तसंचार पर कुप्रभाव होकर हृदयगति निर्बल, तीव्र हो अतिशीतपित्त तथा स्वेद के लक्षण विशेष हों तो Aminophylline 250 मि.ग्रा. को 50 सी.सी. ग्लूकोज़ सोल्यूशन में मिलाकर शिरा द्वारा देदेना चाहिए। Calcium gluconate 10% को 10 सी.सी. मात्रा में भी शिरा द्वारा देदेना चाहिए। एक दो घण्टे बाद इन्हें दुहरा भी सकते हैं। इनके देने से नाड़ीगति मन्द हो जाती है हृदय बलवान् होता है। नींद के लिये Phenobarbitone 2-3 ग्रेन 6-8 घं. बाद दे सकते हैं।

वृश्चिक दंशमें वेदना और बेचैनी विशेष हो तो Morphine का सूचीवेध देदेना चाहिए

2% 2 सी.सी.

या Emetine hydrochlor. के या streptomycin solution के ½-½ सी.सी के

या वहां पर Pulvis Ipecac और Light Ammonia के मिश्रण को वहां लगाने से दर्द को शान्त किया जा सकता है

तो इस रोग का निश्चय कर लेना चाहिये।

चिकित्सा :-

Strong Soap Solution से धो देना चाहिये और रक्त को बहने देना चाहिये

दंश स्थान को और या Nitric Acid से जला देना चाहिये और फिर Acid को Lime Water से या साबुन से या Saturated soda Solu. से धोकर उदासीन कर देना चाहिये। या १ प्र०श० Benzolkonium Chloride (Zephyran Chloride) का लगाना इस समय सर्वोत्तम माना जाता है या Phenol लगाके एंटिसेप्टिक से धो दें। यदि कुत्ता वस्तुत: उन्मत्त हो तो •५ प्र०श० उन्मत्त कुत्ते के मस्तिष्क से युक्त Carbolized Anti-Rabic Vaccine के ५ प्र०श० घोल (Suspension) को २-५ सी०सी० मात्रा में कोष्ठ की दीवार की त्वचा के नीचे १४ दिन तक प्रतिदिन डाल दिया जाता है। इससे रोगी में रोग के उत्पन्न होने से पहले ही विष विपरीतकारी (Immunity) शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

रोग के उत्पन्न हो जाने पर Antirabic Serum से भी लाभ नहीं होता और इस प्रकार यह रोग असाध्य होता है। केवल लक्षण विपरीत चिकित्सा की जा सकती है। रोगी को शान्त अंधेरे कमरे में रख के स्तम्भों के शमन के लिये उसे Chloroform सुंघा सकते हैं या Morphine का सूची वेध दे सकते हैं या Chloral तथा Bromides के घोल गुदा द्वारा दिये जा सकते हैं।

वृश्चिक दंश :- (Scorpion Stings)

बिच्छू की पूंछ के अन्तिम खण्ड में विष ग्रन्थि होती है। और उसी में चुभोने वाली सुई होती है। इसकी विष तीव्र वेदना जनक होती है जो कि ... रहते हैं। काटने के तुरन्त बाद दंश स्थान में हलका चीरा देकर Potassium Permangnate के गाढ़े घोल से उसको धो दें तो विष को नष्ट किया जा सकता है। अथवा Novocaine तथा Adrenaline के सूची वेध के उस प्रदेश में देने से दर्द को शान्त कर दिया जा सकता है। अथवा ऊपर बंधन (Tourniquet) देकर दंश स्थान पर बर्फ लगायें ताकि विष फैले नहीं।

आयुर्वेदानुसार :-

सुश्रुत ने (कल्प०अ०६।श्लो० ४०) कहा है कि कुत्ते, शृगाल, भेड़िये आदि में पहले उसका कफ तत्त्व दूषित हो जाता है और उसके कारण फिर उसके संज्ञा स्थान में स्थित वायु तत्त्व दूषित हो जाता है जिससे उसकी संज्ञा नष्ट हो जाती है और वह उन्मत्त सा हो जाता है। अष्टांग संग्रह कार ने (उत्तर०अ० ४६) कहा है कि संज्ञा स्थान में बढ़े हुये दोष सारे शरीर को विक्षुब्ध कर देते हैं और वह अंधा व बहरा होकर दौड़ने लगता है। मांस पेशियों में घात या Paralysis हो जाने से ऐसे कुत्ते की पूंछ, अधो-हनु, ग्रीवा, कन्धे नीचे की ओर झुक जाते हैं और वह सबको काटने लगता है। उससे दष्ट हुआ व्यक्ति उसका प्रत्युपाय न करे और उसे जल त्रास का रोग अर्थात्

जल की आवाज सुनने के भी भय हो जाय तो वह ठीक नहीं होता । श्वान आदि से दष्ट व्यक्ति का जल त्रास रोग या तो प्रसुप्त (Paralysed) या उत्थित (Excited) दो प्रकार का होता है । ये दोनों ही घातक होते हैं ।

इसलिये श्वान दंश में से रक्त को निकाल देना चाहिये तथा उसे अधिक गर्म किये घी से जला देना चाहिये । अगद प्रभाव की अर्थात् विष को नष्ट करने वाली किसी औषधि का लेप लगाना चाहिये । तथा रोगी को पुराण घृत का पान कराना चाहिये । श्वान दंश के एक पक्ष बाद तथा २५ वें दिन से पहले पहले रोगी को प्रातः एक चम्मच भर के कोयले के चूर्ण का दे के आधे घन्टे बाद काले धतूरे का रस एक औंस के लगभग पिलाने के लिये विधान किया है, - वह उलट कर बाहर नहीं आना चाहिये । फिर रोगी को बांधकर धूप में ४ घन्टे रक्खा जाता है । इससे रोगी उन्मत्त सा हो जाता है । इसके बाद उस पर कई घड़े शीत जल डालने को कहा है । यद्यपि वह पानी से डरता है । इसके बाद उसे हलका आहार देने के लिये कहा गया है । वर्तमान समय में इस विषैली चिकित्सा का प्रयोग उतना आवश्यक नहीं रहा क्योंकि Serum से ही विष का प्रतिरोध हो जाता है ।

वृश्चिक विष चिकित्सा :-

वृश्चिक के दंश से वेदना होती है जो ऊपर को फैलती जाती है ।

सुश्रुत (कल्प०अ० ८।श्लो० ६५) ने इस पर कोल्हू के तेल या चक्र तेल के लेप या अवसेचन करने का विधान किया है । चरक ने (चि०।अ०।२३।श्लो० १७२) घृत और सैन्धव लवण को गर्म गर्म लगाने या अवसेचन करने का विधान किया है । वाग्भट्ट (अष्टांग हृदय-उत्तर स्थान-अ० ३७।श्लो० ४३) ने सिरस के बीज को अर्क दुग्ध से तीन बार भावित कर समान पिप्पली चूर्ण मिला गोली बना, दंश स्थान में कुछ घाव करके पानी के साथ घिसकर उसके लगाने का विधान किया है ।

वृश्चिक दंश की अनेकानेक प्रचलित चिकित्साओं में से कुछ एक निम्नलिखित हैं :-

(१) अपामार्ग मूल को पीसकर लगाया जाता है तथा अपामार्ग क्षुप के द्वारा वेदना को ऊपर से नीचे की ओर २-३ मिनट तक झाड़ा जाता है ।
(२) चित्र मूल छाल को कूट कर ऊपर बांध दिया जाता है ।
(३) पुनर्नवा को पीस कर लगाया जाता है ।
(४) मधु, घृत और चूना समान समान मिला के लगाया जाता है ।
(५) पोटासियम परमांगनेट और निम्बू सत को मिला के दंश स्थान पर रख के ऊपर पानी की बुन्द डाल दी जाती है ।
(६) नौसादर ४ भाग, पोटासियम परमांगनेट २ भाग, शोरा कलमी १ भाग

या उसे मला जाता है

(११) या नमक के पुणो घोल की
कुछ बूंदों के पुतली को रख को
आंख में डाल देने से
आराम हो जाता है।

मिला इसके चूर्ण को दंश स्थान पर रख के ऊपर पानी की बुन्द डाली जाती है ।

(७) प्याज़ को पीस कर लगा दिया जाता है ।

(८) बिच्छू से तय्यार की स्पिरिट भी लगाई जाती है ।

(९) फेन बाम को भी लगाया जाता है ।

(१०) सत्यानाशी की जड़ से भी विष को ऊपर से नीचे झाड़ा जाता है ।

============

निस्स्रोतस ग्रन्थियाँ (Ductless Glands) के रोग :-

गलाग्र ग्रन्थि :- Thyroid के रोग :-

गल ग्रन्थि की रचना तथा कार्य :-

कण्ठ के निचले तथा कण्ठ नाली के ऊपरी भाग के आगे पड़ी हुई यह ग्रन्थि अपने दो खण्डों (Lateral Lobes) तथा उनको मिलाने वाले संयोजक खण्ड (Isthmus) के मिलने से बनी हुई है। इनमें से प्रत्येक खण्ड छोटी छोटी खण्डिकाओं (Lobules) से-जिनमें से प्रत्येक में २०-४० सूक्ष्म थैलियां (Vesicles, Alveoli, follicles) चारों ओर से स्नायुतंतु के द्वारा बंधी हुई हैं- बना हुआ है। दोनों पार्श्वीय खण्ड श्वास नाली (Trachea) के आजू बाजू रहते, बीच का संयोजक खण्ड इस नाली के दूसरे तीसरे चौथे मनके (Rings) के आगे रहता और उनके साथ जुड़ा रहता है। Cervical Fascia में लिपटी हुई यह ग्रन्थि पीछे Larynx तथा Trachea के साथ बंधी हुई है।

रक्त, ऊपर तो इसमें दोनों ओर Superior Thyroid Artery से जो कि External Carotid की एक शाखा है आता है, नीचे दोनों ओर Inferior Thyroid Artery से जो कि Subclavion की शाखा है, आता है। इन्हीं के साथ साथ ऊपर दोनों ओर Superior Laryngeal Nerve तथा नीचे Recurrent Laryngeal Nerve इस ग्रन्थि के पीछे तथा भोजन प्रणाली (Oesophagus) के आगे से कण्ठ (Larynx) में प्रवेश करती है।

जिन छोटी छोटी थैलियों से यह ग्रन्थि बनी हुई है उनमें से एक की परीक्षा की जाय तो इसके अन्दर की झिल्ली या श्लैष्मिक स्तर (Epithelium) छोटे छोटे चौकोर सेलों से बनी हुई मिलती है तथा इनके अंदर एक लेसदार द्रव-Colloid- भरा हुआ रहता है जो एक प्रोटीन पदार्थ होता है जिसे Iodothyroglobulin कहते हैं, इसमें इस ग्रन्थि के सूक्ष्म रस (Hormones) रहते हैं। प्रत्येक थैली और उनसे बनी खण्डिकाओं के चारों ओर सूक्ष्म रक्त वाहिनियों और लसीका वाहिनियों का एक जाल सा छाया रहता है। थैलियों की झिल्ली में क्योंकि Basement Membrane नहीं रहता इससे इन थैलियों के सेलों का सूक्ष्म रक्तवाहिनियों की दीवार (Endothelium) के साथ अति निकट का सम्बन्ध रहता है, यों कह सकते हैं कि मानों ये थैलियां रक्त के अन्दर डूबी हुई रहती हैं।

रक्त में भोजन के द्वारा आये Iodide में से [illegible] पार्थिव Iodine को चाहे वह कितनी स्वल्प मात्रा में भी हो इस ग्रन्थि के सेल पूर्णता के साथ साफ कर लेते हैं या पकड़ लेते हैं। इस परिवर्तन के लिये उनमें Peroxidase तथा Oxygen की उपस्थिति आवश्यक होती है।

फिर यह Iodine वहां Tyrosine के साथ मिलकर पहले Monoiodotyrosine में और फिर Diiodotyrosine में परिवर्तित हो जाता है। इस परिवर्तन के लिये वहां सेलों में Cytochrome Enzyme की उपस्थिति आवश्यक होती है। फिर यह कम्पौण्ड उसी Enzyme की उपस्थिति में Iodine के २ और अणुओं को पकड़ के Thyroxine बन जाता है। और इस ग्रन्थि के अन्दर विद्यमान Colloid या Iodothyroglobulin में जमा होता रहता है। पहले पहल E. C. Kendell (१९१६) ने इस Colloid में से इस सूक्ष्म रस Thyroxine को पृथक् करके दिखाया। बाद में Harington (१९२६) ने इसका फार्मूला भी निकाल लिया तथा अगले वर्ष उसने कृत्रिम विधि से इसे बना भी लिया। इस Colloid पर एक Proteolytic Enzyme का प्रभाव होकर जो Thyrozine बनता है वह शरीर की आवश्यकतानुसार बाहर जाने वाली शिराओं के "प्लाज्मा अलब्यूमिन" के साथ हलका सा बंधा हुआ सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है।

इस Thyroxine के अतिरिक्त इसी से मिलता जुलता परन्तु इससे ५ गुण अधिक क्रियाकारी एक और सूक्ष्म रस भी "प्लाज्मा प्रोटीन" में पाया जाता है जिसे Triiodothyronine इसलिये कहते हैं क्योंकि इसके Molecule में Iodine की तीन अणु होते हैं। इसका पता पहले पहल इंग्लैण्ड के Gross तथा Pitt-Rivers (१९५२) ने लगाया था। वस्तुत: इस ग्रन्थि के लेसदार द्रव या Thyroglobulin में से Proteolytic Enzyme के द्वारा Thyroxine ही नहीं पर उसके साथ ५-१० प्र०श० मात्रा में Triiodothyronine भी प्लाज्मा के अलब्यूमिन के साथ हलका सा बंधा हुआ शरीर में जाता रहता है। रक्त में Iodine की मात्रा सामान्यत: एक सी रहती है। अर्थात् १००. मिलिलि० में ४-८ माइक्रोग्राम रहती है।

गलग्रन्थि के इन सूक्ष्म रसों के शरीर के सेलों में जाते रहने से उनमें परिपक्व या धात्वीय परिपक्व (Metabolism) की प्रक्रिया ठीक ठीक चलती रहती है। दूसरे शब्दों में उनमें आक्सिजन को खर्च करने की शक्ति उत्पन्न होती है। यदि इस ग्रन्थि से ये सूक्ष्म रस शरीर के सेलों में न जायें तो उनमें खाद्य पदार्थ खप नहीं पाते। जिससे शिशु में अंगों की वृद्धि नहीं होती, शरीर छोटा और अविकसित रह जाता है अर्थात् वामनता (Cretinism) का रोग हो जाता है। यदि बड़ी आयु में पहुंचने पर यह ग्रन्थि क्षीण होने लगे जिससे इसके सूक्ष्म रस कम बनें तो शरीर में परिपक्व तथा ऊष्मा के कम हो जाने से शीत असह्य हो जाता है अर्थात् Myxoedema रोग हो जाता है।

Anterior Pituitary तथा गल ग्रन्थि :-

Anterior Pituitary ग्रन्थि में से एक सूक्ष्म रस

निकलता है जो इस गल ग्रन्थि के अन्दर विद्यमान Idothyroglobulin की मात्रा को बढ़ाने तथा उसके अन्दर जमा हुए २ सूक्ष्म रसों को प्रवृत्त करके अधिक मात्रा में रक्त द्वारा शरीर में भेजने का काम करता है । इसीलिये उसे Thyrotropic Hormone कहते हैं । उदाहरणत: Sympathetic नाड़ी मण्डल के उत्तेजित होने पर Anterior Pituitary का यह सूक्ष्मरस अधिक प्रवृत्त होता है, परिणामत: गल ग्रन्थि के सूक्ष्म रस भी रक्त में अधिक जाने लगते हैं । इसके विपरीत जब रक्त में गल ग्रन्थि के सूक्ष्म रसों की मात्रा बढ़ती है तब उसके कारण यह Thyrotropic Hormone मन्द पड़ जाता है । उदाहरणत: जब Iodine या Iodine दिया जाता है तब Colloid और गल ग्रन्थि के सूक्ष्म रसों की वृद्धि के परिणाम रुप में यह Thyrotropic Hormone कम हो जाता है । इससे गल ग्रन्थि के अन्दर से सूक्ष्म रसों की निकासी भी घट जाती है । ऐसा भी हो सकता है कि Iodine या Thyroid (Desiccated) का बहुत काल तक सेवन करने पर Thyrotropic Hormone शांत ही हो जाय और तब अपने उत्तेजक सूक्ष्म रस के शान्त होने पर यह गल ग्रन्थि भी लघु (Atrophied) हो जाय और परिणामत: Myxoedema के लक्षण होने लग जायें । यह भी होता है कि यदि गल ग्रन्थि के सूक्ष्म रस कम पड़ जायें जैसे कि बाहर से आयोडीन के न मिलने पर होता है तब Thyrotropic Hormone के प्रबल हो जाने पर गल ग्रन्थि में अति वृद्धि (Hyperplasia) होकर वह आकार में बढ़ी हो जाय ।

Anterior Pituitary के उपर्युक्त सूक्ष्म रस के अतिरिक्त रक्त में एक और गल ग्रन्थि उत्तेजक (Thyroid Stimulating) तत्व Adams (१६५८) ने देखा है परन्तु वह कहां से उत्पन्न होकर रक्त में आता है इसका अभी तक पता नहीं लगा ।

गल ग्रन्थि अधिक सक्रिय हो जाय तो गल ग्रन्थि विष संचार (Thyrotoxicosis) का रोग हो जाता है । यदि वह अधिक निष्क्रिय हो जाय तो Myxoedema का रोग हो जाता है । इस ग्रन्थि की सक्रियता तथा निष्क्रियता की जांच के लिये जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है उनका यहां उल्लेख किया जाता है ।

(१) Basal Metabolid Rate मौलिक परिपक्व का बल (B.M.R.)

Robertson Reid के अनुसार नार्मल - १०से+१५ % के बीच में रहती है । इससे बढ़ा हुआ हो तो इस ग्रन्थि के अधिक सक्रिय होने या Thyrotoxicosis का सन्देह करना चाहिये । इससे नीचे हो तो इस ग्रन्थि के अधिक निष्क्रिय होने या Myxcedema रोग का सन्देह हो जाना चाहिये।

(२) The Percentage Uptake of Radio-Iodine.

Radio Active Isotope of Iodine जिसका Atomic Weight १३१ (साधारण Iodine का १२७) होता है इसलिये जिसे I^{131} लिखा जाता है उसे ३०-५० Microcuries (Curie का १ लाखवां भाग = १ माइक्रोक्युरी) की मात्रा में खाली पेट आदमी को १०० मिलिलिटर जल में मिला के देने के २४ घंटे बाद Geiger (Scintillation) Counter के द्वारा देखा जाता है कि इस गल ग्रन्थि में उसकी कितनी प्रतिशतक मात्रा है । साधारणत:यह ग्रन्थि उसकी ३०-४० प्रतिशतक मात्रा को अपने में जमा कर लेती है । पर यदि उसमें इसकी ४०-६० प्र० श० मात्रा मिले तो समझा जाता है कि यह ग्रन्थि अधिक सक्रिय हुई है अर्थात् उसमें Hyperthyroidism है । यदि यही ग्रन्थि उसे २०-१० प्रतिशतक मात्रा से कम जमा करे तो इस ग्रन्थि को अधिक निष्क्रिय या Hypothyroidism से ग्रस्त हुआ २ समझना चाहिये ।

(३) Thyroid Inhibition Test:-

Greer तथा Smith (१९५४) ने देखा कि नार्मल ग्रन्थि के व्यक्तियों में Desiccated Thyroid की ५४० मिलि०की दैनिक मात्रा १-२ सप्ताह तक देने के बाद $Iodine^{131}$ की १ मात्रा देने पर इस ग्रन्थि द्वारा उसकी पकड़ नार्मल पकड़ (Uptake) से २० प्र०श० से नीचे आ जाती है । परन्तु सक्रिय गल ग्रन्थि के रोगियों अर्थात् Hyperthyroidism के रोगियों में इसी प्रकार पहले Desiccated Thyroid देने के बाद जब $Iodine^{131}$ की १ मात्रा दी गई तो २४ घण्टे के बाद देखने पर उनमें से किसी में भी इसकी यह पकड़ नार्मल पकड़ (Uptake) से २० प्र०श० से नीचे नहीं आई । Perlmutter तथा Slater (१९५५) ने यही परीक्षण Triiodothyronine के द्वारा किया और देखा कि इसके प्रयोग के बाद भी $Iodine^{131}$ की १ मात्रा देने पर साधारण गल ग्रन्थि के अन्दर इसकी पकड़ जितनी कम हो जाती है (३२%) उतनी Hyperthyroidism के रोगियों में नहीं होती ।

(४) Protein Bound Iodine of the Serum:- या Butanol extractable iodine

स्वस्थ व्यक्ति के सीरम में Protein Bound Iodine ६•६ (माइक्रोग्राम) प्र०श० (मिलिलि) हुवा करता है । यदि गल ग्रन्थि अधिक सक्रिय हो तो इसकी मात्रा उसमें ८ से ३५ तक माइक्रोग्राम प्र०श० (तक) हो जाती है ।

(५) Blood Cholesterol की मात्रा :-

नार्मल गल ग्रन्थि के व्यक्ति के रक्त में Cholesterol १४० मिलि० से २८० मिलि० प्र०श० के लगभग होता है । गल ग्रन्थि के सक्रिय हो

जाने पर इसकी मात्रा घट जाती है। उसके निष्क्रिय हो जाने पर इसकी मात्रा बढ़ जाती है।

गल गण्ड, गिल्हड़ :- Simple Goitre. Endemic Goitre:-

इस रोग में गल ग्रन्थि आकार में बड़ी हो जाती है पर उसके कार्य में कोई न्यूनता या दोष उत्पन्न नहीं होता। हमारे देश में हिमालय की वस्तियों में रहने वाले व्यक्तिओं में बहुत अधिक गल गण्ड का रोग पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जहां जल में Calcium Carbonate या Fluoride अधिक मात्रा में होता है वहां Iodine शरीर में भलीप्रकार नहीं पहुंचता। यह तो निश्चित है कि यह गिल्हड़ का रोग जल तथा भोजन में Iodine की न्यूनता या उसके आंतों में से भलीप्रकार विलीन न होने के कारण होता है। इसलिये आंतों में किसी जीवाणु Microorganism की उपस्थिति में भी इसका विलयन ठीक ठीक नहीं होता। कुछ अवस्थाओं में इसकी अधिक आवश्यकता होती है जैसे कि नवयुवावस्था में, या गर्भावस्था में, या शीत और वसन्त ऋतु में, या किसी संक्रामक रोग के होने पर, इन अवस्थाओं में Iodine के कम मिलने पर हमारी गल ग्रन्थि आकार में बढ़ जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि Iodine के कम मिलने पर और इस ग्रन्थि के कुछ निष्क्रिय होने पर Thyrotropic Hormone प्रवलता से उत्पन्न होता है जिससे गलग्रन्थि में व्यापक अतिवृद्धि (Epithelial Hyperplasia) की प्रक्रिया होकर यह ग्रन्थि आकार में बड़ी हो जाती है जिससे इसमें आवश्यक मात्रा में सूक्ष्म रसों की उत्पत्ति होकर शरीर का काम चल जाता है। सैलों से बनी झिल्ली तथा आसपास के स्नायुतन्तु दोनों में अति वृद्धि होती है।

बहुधा ऐसा हो सकता है कि इस ग्रन्थि की थैलियों की झिल्ली में Involution की प्रक्रिया होकर उनमें लेसदार पदार्थ या Colloid तो मात्रा में अधिक भर जाता है और थैलियों की झिल्ली पतली पड़ जाती है। इस एक समान फूले हुए गिल्हड़ को Colloid Goitre कहते हैं ~~इसमें इस ग्रन्थि के अन्दर Iodine नार्मल से अधिक मात्रा में जमा हुआ २ रहता है।~~

जब इस ग्रन्थि की थैलियों की झिल्ली कुछ मोटी (Columnar) होती है और इनके बीच भरा लेसदार द्रव्य (Colloid) नार्मल से कम होता है तब इस गिल्हड़ को Parenchymatous Goitre कहते हैं। इसमें आयोडीन की मात्रा नार्मल से कम होती है।

अर्बुद युक्त गल गण्ड :- Nodular Goitre:-

कभी कभी इस गल ग्रन्थि के एक भाग में अति वृद्धि होकर वहां एक या अनेक Adenoma बन जाते हैं जो प्रारम्भ में स्पर्श में कठोर होते हैं।

बाद में मृदु (Cystic) भी हो सकते हैं।

यह गल गण्ड या गिल्हड़ का रोग प्राय: निरुपद्रव होता है। यद्यपि जब तक इस देशको न छोड़ दिया जाय तब तक बना ही रहता है। गल गण्ड के पुराने हो जाने पर इसमें स्नायुभाव (Fibrosis) तथा कठोरता (Calcification) भी हो जाती है।

चिकित्सा :- Iodine वाले भोजन में Cod liver oil जो गाजर, फलियों, मटर, पत्रशाक रोगीको विशेष मात्रामें देने चाहिये।

जिस प्रदेश में यह रोग होता है वहां जल को उबाल कर लिया जाय तो यह रोग नहीं होता। अथवा १००-२०० माइक्रोग्राम Iodine प्रतिदिन लेते रहने पर अर्थात् दूसरे शब्दों में ५-१० हजार भाग नमक में १ भाग Potassium Iodide मिलाकर उसका सेवन किया जाय तो यह रोग नहीं होता। या १ किलोग्राम नमक में २०० मिलि० Pot.Iod. मिला के इसी का सेवन करना चाहिये। ऐसा नमक रोज १० ग्राम भी लिया जाय तो उसमें Pot.Iod. २ मिलि० शरीर में जाता है जिसके द्वारा १.५ मिलि० आयोडीन प्रतिदिन अन्दर जाता है। अथवा शहर की टंकी के ५० हजार गैलन पानी में १ पौण्ड Sod. Iod. मिला देने से इसे रोका जा सकता है। अथवा बालकों को वर्ष भर में २ बार १०-१० दिन तक २-३ ग्रेन Sod. Iod. दिन में एक बार दूध जल आदि के साथ पिला दिया जाता रहे तो इस रोग से उन्हें बचाया जा सकता है। गर्भिणी स्त्री को प्रति सप्ताह १ मात्रा १० मिलि० Pot. Iod. के दे देने पर शिशु में इस ग्रन्थि के रोग होने का भय नहीं रहता। रोगी को Lugol's Solution (१५ बुन्द में $\frac{४}{५}$ ग्रेन Iodine) ३-५ बुन्द आधा गिलास जल के साथ तब तक देते रहना चाहिये जब तक गिल्हड़ ठीक न हो जाय या Syrup Ferriiod. ३० बुन्द जल के साथ दिन में १ बार या Pod.Iod. $\frac{१}{२}$ या २ ग्रेन दिन में १ बार दूध में भोजन से आधा घण्टा पहले जब तक रोग रहे दे देना चाहिये या Hydrargeriiod.Rubrum की १ प्र०श० की मलहम गले पर लगाते रहना चाहिये।

सदोष गल गण्ड - गल ग्रन्थि विष संचार :- Thyrotoxicosis - Hyperthyroidism :- Toxic goitre, Graves' disease:

ऐसे प्रदेशों में जहां गिल्हड़ का रोग प्रादेशिक रूप में नहीं होता कभी कभी यह ग्रन्थि २०-४० वर्ष के व्यक्तियों में विशेषत: स्त्रियों में आकार में बढ़ ही नहीं जाती पर साथ ही अधिक सक्रिय भी हो जाती है अर्थात् इसमें से इसके सूक्ष्म रस अधिक मात्रा में रक्त में संचार करने लग जाते हैं जिससे शरीर का धात्वीय परिपक्व प्रबल हो जाता है। इस ग्रन्थि के अधिक सक्रिय हो जाने की यह प्रवृत्ति एक परिवारों में जन्म से आती है, और सम्भवत: बाद में किसी शारीरिक या मानसिक आघात के लगने पर अर्थात् चिन्ता, दु:ख

व्याकुलता आदि के कारण के उपस्थित हो जाने पर या किसी जीवाणु संक्रमण के हो जाने पर जब Sympathetic नाड़ी मण्डल विद्युब्ध हो जाता है तब उसके कारण Anterior Pituitary के भी विद्युब्ध हो जाने से Thyrotropic Hormone अधिक प्रबलता से उत्पन्न होता है और उसके परिणाम रुप में गल ग्रन्थि अधिक सक्रिय हो जाती है। परन्तु Sympathetic नाड़ी मण्डल को विद्युब्ध करने वाले इन कारणों के दूर हो जाने के बाद भी यह रोग क्यों कायम रहता है इसका पता नहीं चल सका।

गल ग्रन्थि की परीक्षा करने से वह आकार में कुछ बढ़ी हुई होती है, अधिक बढ़ी हुई नहीं होती। रक्त वाहिनियों तथा स्नायु तन्तु में वृद्धि के कारण स्पर्श करने में यह न अधिक कठोर, न अधिक मृदु होती है। ग्रन्थि के किनारे भी कुछ मोटे और कुछ उठे हुए स्पष्ट अनुभव होते हैं। सूक्ष्म परीक्षा करने पर पता चलता है कि इसकी छोटी छोटी थैलियों की झिल्ली, अति वृद्धि (Hyperplasia) के कारण स्थूल हो गई है। थैलियों के अन्दर का अवकाश बहुत घट जाता है एवं उनमें विद्यमान Colloid की मात्रा बहुत कम होती है अर्थात् इस ग्रन्थि के अन्दर संचित Iodine की मात्रा कम हो जाती है। थैलियों के चारों ओर स्नायु तन्तु रक्तवाहिनियों, लसीका मय प्रदेश में भी पर्याप्त वृद्धि हो जाती है (रक्तवाहिनियाँ फैली हुई होती हैं)। कभी कभी एक या अनेक Adenoma भी हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है ग्रन्थि में आयोडीन की पकड़ बढ़ जाती है और सूक्ष्म रसों की उत्पत्ति तथा रक्त के द्वारा उनकी निकासी भी तीव्र हो जाती है, परन्तु ग्रन्थि के (अन्दर) Thyroglobulin के रुप में इसकी उपस्थिति कम हो जाती है।

Toxic Nodular Goitre - या Secondary Thyrotoxicosis:-

चिरकाल से बढ़े हुए गिल्हड़ में बाद में Adenoma या अर्बुद होकर उसके दुष्परिणाम रुप में जब यह रोग होता है तब इसे Toxic Nodular Goitre कहते हैं। यह रोग ३५ वर्ष की आयु के बाद होता है। रोगी को गिल्हड़ चिरकाल से होता है। बाद में कभी धीरे धीरे अज्ञात रुप में इस रोग के लक्षण आरम्भ हो जाते हैं। परीक्षा करने पर गिल्हड़ में एक अर्बुद दिखाई पड़ता है।

लक्षण :-

यह दोष युक्त गल ग्रन्थि का रोग बहुधा सहसा प्रारम्भ होता है। रोगी देखता है कि उसका गला फूल गया है या उसकी आँखें कुछ आगे को उभर गई हैं (Exophthalmos) (आँतों में स्रावों तथा चेष्टा के बढ़ जाने से) या उसकी क्षुधा और पिपासा बढ़ गई है पर साथ ही वह यह भी देखता है कि अधिक खाने पर भी शरीर कृश होता जाता है। उसकी कार्य करने की शक्ति घटती जाती

है या थोड़ा सा श्रम करने पर भी वह थक जाता है या उसकी हृदय गति तीव्र हो जाती है अर्थात् उसे धड़कन होने लगती है । उसका श्वास चढ़ जाता है । उसे पसीना अधिक आने लगता है या उसे प्रतीत होता है कि श्रम से शीघ्र थकावट हो जाने पर भी उसकी क्रिया शीलता बढ़ गई है । यह रोग क्योंकि सर्दी के अन्त में, गर्मी के शुरु में आरम्भ होता है । रोगी को यह भी पता लगता है कि उसे गर्मी सहन नहीं होती या उसे पता लगता है कि उसके मूत्र की मात्रा बढ़ गई है जिससे उसे रात को २-३ बार मूत्र त्याग करने के लिये उठना पड़ता है । स्वेद तथा मूत्र के अधिक आने से उसे प्यास भी अधिक लगने लगती है ।

हृदय :-

हृदय की परीक्षा करने पर हृदय तथा नाड़ी गति ९०-१४० प्रतिमिनट होती है जो मानसिक उद्वेग से और बढ़ जाती है । ग्रीवा में Carotid धमनी का धमन होता हुआ दिखाई पड़ता है । मानसिक रोग में निद्रा काल में नाड़ी गति मन्द हो जाती है । पर इस रोग में उस समय भी नाड़ी गति तीव्र रहती है। क्योंकि शरीर में पचन प्रक्रिया के तीव्रतर हो जाने से उसे रक्त अधिक चाहिये होता है । अत: हृदय को तीव्र रहना पड़ता है । हृदय का संकोच कालिक (Systolic) रक्त भार बढ़ा हुआ होता है । इसीलिये रोगी का नाड़ी भार (Pulse Pressure) बढ़ा हुआ होता है (नार्मल ४० के लगभग होता है) रोग चिरकाल तक रहे तो हृदय शिथिल (Dilated) होकर आकार में बड़ा हो जाता है, निर्बल हो जाता और अन्त में उसके मांस में क्षीणता होकर auricular fibrillation (अति हृदय वैषम्य) का रोग हो जाता है ।

आंखों के आगे की ओर उभर जाने या ऊपर की पलकों के पीछे की तरफ संकुचित हो जाने से नेत्रोद्गम Exophthalmos का लक्षण इस रोग में इतना स्पष्ट होता है कि इस रोग को Exophthalmic Goitre भी कहते हैं । आंखों के पीछे के आवरण में fatty oedema या अति वृद्धि के हो जाने से ये आगे को उभर जाती है ।

नाड़ी मण्डल सम्बन्धी लक्षण :-

इस रोग के कारण रोगी के मन तथा शरीर में विक्षोभशीलता तथा चेष्टा शीलता (Nervousness) का लक्षण बढ़ जाता है । बिस्तरे पर पड़ा हुआ भी चेष्टा शील रहता है । उसमें अस्थिरता (Hyperkenesis) का लक्षण इतना बढ़ा होता है कि वह एक स्थिति में देर तक नहीं रह सकता । मानसिक विक्षोभ शीलता इतनी होती है कि स्वल्प कारण से क्रुद्ध हो जाता एवं आपे से बाहर हो जाता है । शीघ्र विचलित हो जाने के कारण अकारण रोदन का लक्षण भी हो सकता है, उसे निद्रा भी कम आती

है । मानसिक अस्थिरता के बढ़ने से चेष्ठा प्रधान मानस रोग (Mania) भी हो सकता है । अस्थिरता की वृद्धि के कारण हाथों की अंगुलियों में कम्पन (Tremors) होने का लक्षण भी होता है जो हाथ को फैलाने, लिखने, या प्याले को उठाकर मुख तक लाने या क्रोध के समय अधिक स्पष्ट हो जाता है ।

त्वचा सम्बन्धी लक्षण :-

२-रक्तवाहिनियां फैली रहती हैं Vasodilatation हो

Vasomotor नाड़ियों के विक्षोभ के कारण स्वेद अधिक आता है जिससे चेहरे, हाथ-पांव गर्म तथा कुछ गीले से रहते हैं । त्वचा के गर्म रहने से गर्मी सहन नहीं होती । बाल भी गिरने लग जाते हैं ।

भेदक लक्षण :-

हृदय रोग, चिन्ता प्रधान मानस रोग तथा क्षय रोग से इस रोग का सन्देह हो सकता है । परन्तु यदि गल ग्रन्थि आकार में बढ़ी हो, रोगी की आयु मध्यमायु से ऊपर की हो, ज्वर न हो, निद्रा के समय भी नाड़ी गति कम न होती हो, ५ ग्रेन Pot.Iod. के २-३ सप्ताह तक दिन में एक बार देने से रोगी को लाभ हो जाता हो तो इस रोग का निश्चय हो जाता है । उपर्युक्त परीक्षा विधियों से भी इस रोग का निश्चय हो जाता है अर्थात् Basic Metabolic Rate इस रोग में + २० से + ६० प्र०श० तक बढ़ा हुआ होता है । Blood Cholesterol घटकर १४० मिलि० प्र०श० से नीचे आ जाता है ।

चिकित्सा :-

सामान्य चिकित्सा :-

इस रोग में क्योंकि धात्वीय पचन प्रक्रिया बढ़ी हुई होती है । रोगी को पड़े हुए, विश्राम की अवस्था में ही रहना चाहिये । हलका भोजन अधिक मात्रा में देना चाहिये, उसमें प्रोटीन्स, Dextrose, तथा विटामिन्स अधिक होने चाहियें । जल अधिक मात्रा में पिलाना चाहिये । ३ हजार कैलोरीज का भोजन देने से रोगी का Negative Nitrogen Balance नार्मल हो जाता है । विटामिन " बी " कम्प्लेक्स का प्रयोग भी होना चाहिये ।

रोगी में शारीरिक एवं मानसिक अस्थिरता या चेष्ठा वृद्धि की शान्ति के लिये उसे Phenobarbitone $\frac{1}{2}$ ग्रेन की मात्रा में प्रातः सांय २ बार या ३ बार मिलना चाहिये या Reserpine का .२५ मिलि० मात्रा में दिन में २-३ बार प्रयोग करना चाहिये ।

शरीर में कहीं पर पूयभाव (Sepsis) हो तो उसकी चिकित्सा भी होनी चाहिये ।

गल ग्रन्थि विरोधी (Antithyroid) औषधियां :-

Thiouracil तथा उसके समस्त योगों (Compounds) में से :-

(१) Propylthiouracil का प्रयोग इस रोग में विशेष रुप से किया जाता है। इसका प्रयोग करने पर इस ग्रन्थि के अन्दर Inorganic Iodide से organic Iodine को तैयार करने की प्रक्रिया मन्द हो जाती है। इससे सूक्ष्म रसों (Hormones) के बनने की प्रक्रिया स्वभावत: मन्द पड़ जाती है अर्थात् Peroxidose की क्रिया जो Iodine की उत्पत्ति के लिये आवश्यक होती है वह मन्द पड़ जाती है। रोग मृदु हो तो इसे १०० मिलि० मात्रा में दिन में २ या ३ बार, रोग तीव्र हो तो दिन में ४ बार ६-६ घन्टे पर दिया जाता है। इससे १-१½ मास में रोगी का B.M.R. नार्मल हो जाता है। दूसरे शब्दों में उसकी नाड़ी गति तथा भार आदि नार्मल हो जाते हैं। इसके बाद इस औषधि की चालू मात्रा २५-५० मिलि० की प्रतिदिन लगभग १ वर्ष तक जारी रखनी चाहिये। श्वेत कण परीक्षा या W.B.C. की परीक्षा करते रहना चाहिये और जब वे ४५०० से कम होने लगें तब इस औषधि का प्रयोग बन्द कर देना चाहिये। क्योंकि Agranulocytosis इस औषधि के विषैले प्रभाव का सूचक होता है। इस औषधि के प्रयोग से ५०-६० प्र०श० रोगी अच्छे हो जाते हैं अर्थात् फिर उन्हें इस रोग का पुनराक्रमण नहीं होता।

(२) Carbimazole (Neomercazole) :- यह भी ग्रन्थि में Iodide से organic Iodine की उत्पत्ति को कम करती है। इस समय गलगण्ड विरोधी औषधियों में यह सबसे अधिक प्रचलित औषधि है। Thiourea के समासों से कम विषैली है और उनके बराबर कार्यकारी है। रोग मृदु हो तो ५ मिलि० मात्रा में दिन में ३-४ बार दी जाती है। रोग कुछ प्रबल हो तो १० मिलि० मात्रा में दिन में ३ बार दी जाती है। रोग अधिक प्रबल रुप में हो तो २० मिलि० मात्रा में दिन में ३ बार दी जाती है अर्थात् इसकी दैनिक मात्रा ३० से ६० मिलि० तक होती है। इसकी १ गोली ५ मिलि० की मिलती है। जब रोगी का B.M.R. नार्मल हो जाय तब रोगी की अवस्था को देखते हुये इसकी ५ से ३० मिलि० दैनिक मात्रा चालू कर देनी चाहिये और इसे धीरे धीरे कम करते हुए १ वर्ष तक का समय हो जाने पर बन्द कर देना चाहिये। बाद में ६ मास तक समय समय पर रोगी की जांच होती रहनी चाहिये क्योंकि यदि इस रोग ने फिर होना होता है तो ६ मास तक यह फिर हो जाता है तब तक यह रोग न हो तो फिर बहुत कुछ निश्चिन्तता हो जाती है। agranulocytosis कण्डू, लाल चकत्ते, शीत पित्त आदि लक्षण होने लगें तो भी इसे बन्द कर देना चाहिये। तथा Penicillin ... [illegible]

Potassium Perchlorate (Peroidin) यह औषधि बाहर से आये Iodide का गल ग्रन्थि में संचित होना बन्द कर देती है। इसीलिये इसके प्रयोग के समय Iodide की औषधि का प्रयोग नहीं करना चाहिये प्रारम्भ में इसे २५० मिलि० मात्रा में दिन में ४ बार दिया जाता है। इससे $१\frac{1}{2}$,२ मास में रोगी का B.M.R. नार्मल हो जाता है। जब भी वह ऐसा हो जाय तब इसे २५० मिलि० मात्रा में केवल २ बार देना आरम्भ करना चाहिये फिर इसकी दैनिक मात्रा क्रमश: २५० और २०० मिलि० दैनिक करते हुये इसे लगभग १ वर्ष तक जारी रखना चाहिये। बन्द करने के बाद ६ मास तक रोगी की जांच होती रहनी चाहिये / कि उसका B.M.R. फिर बढ़ता तो नहीं। यह औषधि बहुत कम विषैली है। तो भी इसके सेवन काल में अरुचि, त्वचा पर चकत्ते (Maculopapular Rash) होने लगें तो इसे बन्द कर देना चाहिये। इन औषधियों के २-३ मास के प्रयोग के बाद लाभ प्रतीत होने लगता है आधे के लगभग रोगियों में इन औषधियों से काफी आराम आ जाता है।

Radio Active Iodine. Iodine १३१ -

जिन रोगियों को गल गण्ड विरोधी उपर्युक्त औषधियों के प्रयोग से भी लाभ नहीं होता तथा आयु के बड़े होने या हृदय के रुग्ण होने के कारण जो शल्य कर्म के भी योग्य नहीं हैं, ऐसे ४५ वर्ष से ऊपर के व्यक्तियों के लिये यह चिकित्सा बड़ी उपयोगी है। केवल एक ग्लास जल जिसमें Isotope (अर्थात् जिसे I Iodine जिनके atom में Neutrons को प्रविष्ट करके कृत्रिम तौर से उसका Atomic weight बढ़ा लेते हैं) घुला होता है एक बार पीना पड़ता है। परन्तु क्योंकि पहले इसकी एक Tracer मात्रा ३०-५० Microcuries की मुख द्वारा देकर २४ घन्टे बाद यह ग्रन्थि उसे कितना पकड़ लेती है इसकी जांच करके और बढ़ी हुई गल ग्रन्थि का भार कितना है इसकी भी जांच करके इस औषधि की चिकित्सा सम्बन्धी मात्रा निकालनी पड़ती है / इसलिये यह चिकित्सा विशेष सुव्यवस्थित और इस चिकित्सा के विज्ञ चिकित्सकों से युक्त चिकित्सालयों में ही हो सकती है। साधारणत: इसकी चिकित्सा सम्बन्धी मात्रा ~~३-५~~ ९० Millicuries की होती है (क्योंकि औसतन गल ग्रन्थि का भार ५० ग्राम होता है) जो एक ग्लास जल में मिला मुख द्वारा दी जाती है। क्योंकि उसे Radio Active औषधि दी गई है + (जिनसे Radiation होता है या उनमें से Energy निकलती रहती है) इसलिये इसके बाद रोगी का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। यह औषधि इस ग्रन्थि के अन्दर पहुंच कर उन सैलों को जो इसे पकड़ कर अपने अन्दर जमा कर लेते हैं नष्ट कर देती है। इस औषधि की इतनी मात्रा दी जाती है कि जिससे इस ग्रन्थि के अन्दर सैलों का नाश अधिक न हो जाय, / इतना ही हो कि जिससे रोग शान्त हो जाय। १ मास के समय के बाद इसका प्रभाव आरम्भ हो जाता है और ३ मास के समय तक गल ग्रन्थि आकार में छोटी हो जाती तथा उसका कार्य भी नार्मल हो जाता है / (इतना समय रोगी को प्रतीक्षा करनी चाहिये) लगभग ५० से ८० प्र०श० व्यक्तियों में यह रोग शान्त हो जाता है / (और रोगी शारीरिक मानसिक रूप से स्वस्थ हो जाता है) अधिक सैलों के नष्ट हो जाने से

Hypothyroidism के होने का भय अवश्य रहता है जो इस चिकित्सा का एक बड़ा दोष है। १२ वर्ष से जब से यह चिकित्सा विधि आरम्भ हुई है (१६६२) २०-२५ प्र०श० में यह उपद्रव होता देखा गया है।

Subtotal Thyroidectomy, Partial Thyroidectomy :-

यदि किसी गल गण्ड विरोधी (Antithyroid) औषधि के १ वर्ष तक देने पर भी फिर यह रोग हो जाता हो या इस औषधि के देने से गल ग्रन्थि आकार में और बड़ी हो जाती हो या जब इन औषधियों का किसी पर विषैला प्रभाव शीघ्र हो जाता हो या यह बढ़ी हुई ग्रन्थि Nodular हो या Toxic Nodular Goitre हो तब यह शल्य कर्म किया जाता है, जिसमें इस ग्रन्थि का एक भाग निकाल दिया जाता है। शल्य कर्म से पहले निम्नलिखित औषधि चिकित्सा करने से इसके अन्दर विद्यमान रक्त की मात्रा कम हो जाती है। ग्रन्थि आकार में छोटी हो जाती है। रोगी की हृदय तथा नाड़ी गति कम हो जाती हैं। उसकी शारीरिक मानसिक विक्षोभशीलता घट जाती है। B.M.R. घट जाता है।

Iodine चिकित्सा :-

रोगी को Lugol's Solution (१० प्र०श० Pot.Iod. के घोल में ५ प्र०श० Iodine होता है तथा इसकी १ बुन्द में ६ मिलि० Iodine रोगी के अन्दर जाता है) ५-१० बुन्द की मात्रा में १ औन्स दूध या सन्तरे के रस में मिला कर (जिसमें इसका स्वाद व रंग छिप जाते हैं) दिन में ३ बार १२-१५ दिन तक दे दिया जाता है। जब तक इसका प्रभाव अपनी पूर्णता पर पहुंच जाता है और उसके बाद कम होने लगता है।

उपद्रव चिकित्सा :-

Exophthalmos:- नेत्रोद्गम के लक्षण का कारण निश्चित नहीं हो पाया है। समझा जाता है कि Periorbital (नेत्र गोलक के चारों ओर के) अवयवों में शोथ के कारण यह लक्षण होता है तथा Prednesolone के २० मिलि० दैनिक मात्रा में देने से यह शान्त होने लगता है। नेत्रों में किसी स्नेह के डालते रहने तथा अन्धेरे चश्मे के लगाने से उभरे हुए नेत्रों की वाह्य द्रव्यों से रक्षा हो जाती है।

हृदय सम्बन्धी उपद्रवों के लिये विश्राम के साथ Digoxin तथा मूत्रल औषधियों का प्रयोग करना चाहिये। चेष्टा प्रधान मानस रोग हो तो Chlorpromazine २०-५० मिलि० का प्रयोग करना चाहिये।

आयुर्वेद में :-

सुश्रुत (नि०११) ने Simple Goitre को क्योंकि उसमें इस

ग्रन्थि के अन्दर अति वृद्धि की प्रक्रिया होती है । श्लैष्मिक गल गण्ड कहा है । तथा सदोष गल गण्ड (Hyperthyroidism) को क्योंकि उसमें इस ग्रन्थि के अन्दर क्षीणता की प्रक्रिया होती है वातिक गल गण्ड कहा है । इसके कारण रोगी का शरीर क्षीण होने लग जाय तो सुश्रुत का कथन है कि वह असाध्य होता है । अर्बुद युक्त गल गण्ड(Nodular Goitre) को उसने मेदोमय गलगण्ड कहा है । इसकी चिकित्सा के विषय में (सु०चि०१८) इतना ही उल्लेखनीय है कि सामुद्रादि पंच लवणों को तेल के साथ पीने का विधान जो उसने श्लैष्मिक गल गण्ड में किया है वह बड़ा वैज्ञानिक है ।

Primary Myxoedema :-

पहले पहल Sir William Gull (१८७३) ने इस रोग का पता हमें दिया तथा Dr.Ord. (१८७७) ने इस रोग का नाम Myxoedema रक्खा क्योंकि उनका कथन था कि धातु पाक की कमी के कारण Mucin त्वचा के नीचे जमा हो जाता है जिससे Oedema हो जाता है, यद्यपि इस श्वयथु में दबाने से गढ़ा नहीं पड़ता। बाद में यह पता चला कि Mucin नहीं पर Mucus की तरह का पदार्थ (Mucoid) त्वचा में बैठता है तो भी ऑर्ड साहब का चलाया हुआ नाम ही अब तक चला आता है । जिन प्रदेशों में गिल्हड़ (Goitre) का रोग होता है उनमें विशेषत: ३०-६० वर्ष की आयु की स्त्रियों में आर्तव नाश काल या गर्भावस्था में गल ग्रन्थि के अन्दर क्षीणता (Atrophy) के हो जाने का रोग हो जाता है । इसके कारण के विषय में कुछ निश्चय नहीं हो पाया । परीक्षक लोग बताते हैं कि इस रोग से रुग्ण व्यक्तियों में से ८० प्र०श० के प्लाज्मा में उन्होंने इस ग्रन्थि के Thyroglobulin आदि तत्वों के विपरीत Antibodies पाये हैं । Doniac et al. (१९५६) ने नार्मल गल ग्रन्थि के Extract को रोगी के सीरम में मिला के Precipitate भी प्राप्त किया है ।

४५ वर्ष से ऊपर की आयु की स्त्रियों में पाये जाने वाले एक गिल्हड़ के रोग में भी जिसमें यह ग्रन्थि आकार में बड़ी पर रबड़ की तरह मुलायम होती है जिसमें चिरस्थायी शोथ के कारण इस ग्रन्थि के अपने अवयव तो लुप्त हो जाते, उनके स्थान पर Lymphoid Follicles (लसीकावाही सूक्ष्म ग्रन्थियां) भर जाते हैं जिससे इसे Lymphadenoid Goitre कहते हैं । और क्योंकि पहले पहल जापान के Hashimoto (१९१२) ने इसका पता लगाया । इसलिये जिसे Hashimoto's Disease भी कहते हैं । ये Antibodies पाये जाते हैं । स्पष्ट है कि प्लाज्मा में पाये जाने वाले ये Antibodies गल ग्रन्थि के अन्दर विद्यमान किसी Antigen के विपरीत उत्पन्न होते हैं (autoimmune thyroiditis) । अनुमान है कि रोगी के अन्दर विद्यमान यह Autoimmunity, इस ग्रन्थि के नष्ट करने का कारण हो सकती है अर्थात् रोगी के

रक्त के सीरम में कोई ऐसा Cytotoxic पदार्थ है जो गल ग्रन्थि के सेलों के लिये भंजक (Lysis के करने वाला) होता है। तथापि इस ग्रन्थि के इस प्रकार क्रमशः नष्ट होते जाने की प्रक्रिया अभी तक कुछ स्पष्ट नहीं हुई है।

सम्भव है Iodine के जल तथा भोजन आदि द्वारा उचित मात्रा में न मिलने से तथा गिल्हड़ (Goitre) के उपद्रव रूप में या रक्त में विद्यमान किसी विष या संक्रमण (Infection) के कारण Thyroiditis (गल ग्रन्थि शोथ) के चिरकाल तक रहने से या Pituitary ग्रन्थि की मन्दता (Hypopituitarism) के कारण, या गल ग्रन्थि विरोधी किसी औषधि के चिरकाल तक सेवन करते रहने से यह रोग उत्पन्न होता है।

गल ग्रन्थि की परीक्षा करने पर वह आकार में छोटी होती है। इसकी स्रावी सेलों से बनी झिल्ली में स्नायु भाव के हो जाने से यह कुछ कठोर हो जाती है। इस प्रकार गल ग्रन्थि के क्षीण हो जाने के साथ साथ स्त्री पुरुष ग्रन्थियां (Ovaries,Testes) भी क्षीण हो जाती हैं। गल ग्रन्थि के क्षीण हो जाने से शरीर की परिपक्व प्रक्रिया (B.M.R.) क्रमशः मन्द, मन्दतर होती जाती है। (-३५ से -४५ प्र०श० तक हो जाती है) परिणामतः रक्त के अन्दर Cholesterol की मात्रा बढ़ जाती है और १०० मिलिलि० में ३००-४०० मिलि० तक हो जाती है (नार्मल १४०-२८० मिलि०) प्रोटीन का परिपक्व कम होने से वह शरीर में नाना स्थानों पर जमा हो जाती है। रक्त के सीरम में भी उसकी मात्रा बढ़ जाती है। कार्बोहाइड्रेट का परिपक्व कम होने से इनमें से बहुत सों में Carbohydrate Tolerance बढ़ जाती है अर्थात् ४ युनिट Insulin के शिरा द्वारा देने के बाद नार्मल व्यक्ति के रक्त में खाण्ड की जितनी मात्रा घट जाती है इस रोगी में उतनी नहीं घटती। परिपक्व प्रक्रिया की मन्दता के कारण शरीर का तापमान कम रहता है। हाथ पांव ठन्डे रहते हैं। पिपासा कम लगती है। अन्दरूनी गरमी की कमी से बाहर की सरदी असह्य हो जाती है। गरमी की मौसम अधिक अनुकूल मालुम होती है।

परिपक्व की न्यूनता के कारण एक प्रकार का Mucoid पदार्थ या प्रोटीन पदार्थ त्वचा के नीचे बैठता जाता है जिससे चेहरे, पलकों, ग्रीवा हंसली की हड्डियों (Clavicles) के ऊपर के गढ़ों, हाथों, पैरों आदि के ऊपर की त्वचा फूली हुई या उभरी हुई दीखती है। इसी तरह नासा पश्चिम प्रदेश, गले, मुख, जीभ, कण्ठ, भोजन प्रणाली आदि की आभ्यन्तर श्लैष्म कलाओं के नीचे भी यही प्रोटीन पदार्थ बैठता जाता है। शारीरिक सेलों के बीच बीच के (Extracellular या Interstitial) प्रदेशों में भी यह पदार्थ बैठता जाता है। वहां वहां Osmotic भार के बढ़ जाने से वहां वहां लवण तथा जल की मात्रा भी बढ़ जाती है

इन लक्षणों के अतिरिक्त धात्वीय पचन (Metabolism) की न्यूनता के कारण शरीर की कार्यकारिणी शक्ति (Energy) जो इसी पचन के परिणाम में होती है घट जाती है । अर्थात् रोगी की शारीरिक, मानसिक, वाचिक सभी चेष्टायें मन्द पड़ जाती हैं । इसीलिये रोगी देखने में मन्द, निद्रालु, उदासीन, भावहीन, सा दीखता है ।

त्वचा सम्बन्धी लक्षण :-

रोगी की त्वचा देखने में शुष्क, खर, कठोर, शीतल और फीके रंग की होती है । रोम मूलों और स्वेद ग्रन्थियों का पोषण न होने से सिर भौंहों आदि के बाल गिरने लगते हैं, ~~xxxxxxxxxx~~ वे संख्या में कम व पतले हो जाते हैं । स्वेद कम आता है । नख भंगुर हो जाते हैं । चेहरा, हाथ, पैर, होठ, पलकें आदि भारी दीखती हैं ।

हृदय सम्बन्धी लक्षण :-

हृदय गति, नाड़ी गति मन्द होती है । नाड़ी की Volume भी छोटी होती है अर्थात् प्रतिमिनिट में आगे जाने वाली रक्त की मात्रा घट जाती है । दूसरे शब्दों में रक्त संचार की गति कम होती है । निर्बलता वश हृदय कुछ फैल जाता या शिथिल हो जाता है । (Dilated) उसके शब्द भी कुछ मध्यम होते हैं । हृदय पोषक रक्तवाहिनियों में कुछ अवरोध (Atheroma) हो सकता है । शरीर की रक्त वाहिनियां भी मोटी हो जाती हैं । रक्त भार घटा हुआ नहीं होता । कुछ बढ़ा हो सकता है ।

मस्तिष्क सम्बन्धी :-

गन्ध, स्वाद, श्रवण आदि संज्ञाओं की प्रतीति मन्द हो जाती है । चेष्टायें भी मन्द होती हैं । स्मृति, बुद्धि आदि मानस शक्तियां भी मन्द होती हैं । Thyrotoxicosis की उन्निद्रता और तीव्रता के विपरीत इसमें तन्द्रालुता और मानसिक मन्दता या मूर्छा का लक्षण होता है ।

पाचन सम्बन्धी :-

आमाशय रस की उत्पत्ति कम होती है । (Hypochlorhydria ५० प्र०श० में Achlorhydria) आमाशय गति तथा आन्त्र गति भी मन्द होती हैं । परिणामतः भूख कम लगती है । भोजन की मात्रा घट जाती है । Thyroid के अधिक सक्रिय होने पर अतिसार का लक्षण होता है । इस ग्रन्थि के मन्द हो जाने पर मल बन्ध का लक्षण हो जाया करता है ।

रक्त सम्बन्धी :-

रक्त कणों तथा रक्त रंजक द्रव्य दोनों की उत्पत्ति कम होती है । अर्थात् पाण्डु Mycrocytic Hypochromic तथा Mocrocytic

किस्म का होता है अर्थात् Achlorhydria और Pernicious Anaemia दोनों लक्षण इस रोग में पाये जाते हैं। सम्भवत: Thyroid तथा आमाशय दोनों Foregut से उत्पन्न होने के कारण Iodide को पकड़ते हैं।

जननेन्द्रिय :-

इस रोग में पुंस्त्व शक्ति नष्ट हो जाती है तथा आर्तव भी कम हो जाता है। (Hypomenorrhoea).

इन लक्षणों के अतिरिक्त Serum Protein Bound Iodine १०० मिलिलि० सीरम में ४ Gamma से कम होता है। Radioactive Iodine (आयोडीन १३१) के देने पर २४ घन्टे बाद इस ग्रन्थि की पकड़ (Uptake) १० प्र०श० से कम मिलती है।

Myxoedema की चिकित्सा :-

Thyroideum (Dried Extract of Thyroid) का इस रोग में प्रयोग होते हुए ६० वर्ष के लगभग हो चुके हैं। इसका प्रयोग अति स्वल्प मात्रा में आरम्भ करना चाहिये क्योंकि इस औषधि के देने से शरीर में होने वाली धात्वीय पक्व की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है जिससे हृदय पर रक्त को आगे भेजने का कार्य भार आ पड़ता है परन्तु यदि रोगी की आयु बड़ी हो, हृदय में अतिवृद्धि या शिथिलता हो या उसकी पोषक धमनियों में Atheroma के होने से हृदय मांस का पोषण ही न हो रहा हो तो हृदय के ऊपर कार्य भार के बढ़ जाने पर उसके पोषण के कम होने से उसमें Myocardial Infarction का उपद्रव हो सकता है। अत: प्रारम्भ में इस औषधि की मात्रा बहुत छोटी होनी चाहिये। $\frac{1}{8}$ ग्रेन से $\frac{1}{4}$ ग्रेन मात्रा में इसे दिन में १ बार देना चाहिये। १ सप्ताह बाद मात्रा $\frac{1}{4}$ ग्रेन की वृद्धि करनी चाहिये। जब तक या तो रोग सुधारने लग जाय या हृदय गति या नाड़ी गति बढ़ कर ७५ प्रतिमिनट से ऊपर हो जाय या शरीर पर स्वेद आने लग जाय तब इस औषधि को २ सप्ताह के लिये बन्द करके फिर इस औषधि की वह उचित मात्रा शुरु कर दें जिससे नाड़ी ७५-८० से ऊपर न जाये। इस औषधि की परम दैनिक मात्रा १$\frac{1}{2}$,३ ग्रेन है। इससे अधिक देने की आवश्यकता नहीं रहती।

रोगी की आयु छोटी हो तो हृदय सम्बन्धी निर्बलता का लक्षण नहीं होता। तब इस औषधि को $\frac{1}{2}$ ग्रेन दैनिक मात्रा में शुरु कर सकते हैं। और प्रति सप्ताह इसमें $\frac{1}{2}$ ग्रेन की वृद्धि कर सकते हैं। इस औषधि की चालू मात्रा प्राय: १-२ ग्रेन दैनिक पर्याप्त होती है।

(२) Thyroxine से बनी Thyroxine Sodium (Eltroxin tab. Glaxo) की गोलियां भी मिलती हैं। इस औषधि की .१ मिलि० मात्रा १ ग्रेन Thyroid के समान बलवान होती है। इसकी कीमत कुछ अधिक होती है। परन्तु इस औषधि

का बल उपर्युक्त औषधि की अपेक्षा अधिक निश्चित है ।

Thyroxine Sodium या Sodium Levothyroxine को १/५०००, १/२५०० ग्रेन मात्रा में प्रतिदिन १ सप्ताह तक देना चाहिये तथा इसके बाद प्रति सप्ताह १/२५०० ग्रेन मात्रा इसकी बढ़ाते जाना चाहिये । जब तक यह १/६००, १/३०० ग्रेन दैनिक न हो जाय । फिर इसे तब तक कायम रखना चाहिये जब तक रोग शान्त न हो जाय या इसके विषैले लक्षण न होने लगें । तब जो उचित मात्रा हो उसमें आगे के लिये इसे जारी रखना चाहिये ।

कहा जाता है कि Thyroid के सूक्ष्म रसों में Thyroxine के अतिरिक्त १० प्र०श० Triiodothyronine भी होता है । Thyroxine के देने से यह शरीर में नहीं जा पाता । इस उद्देश्य से Diotroxin एक कम्पौण्ड बना हुआ मिलता है जिसमें ६० प्र०श० Thyroxine १० प्र०श० Liothyronine Sodium (L.Triiodothyronine Sodium) होते हैं । परन्तु Thyroxine Sodium से भी इस रोग में पूर्ण लाभ होता है ।

(३) Sodium Liothyronine (Triiodothyronine, Cytomel) इस औषधिका विशेष अवस्थाओं में जब शीघ्र ही प्रभाव अपेक्षित हो (स्थायी प्रभाव अपेक्षित न हो) प्रयोग किया जाता है क्योंकि यह शीघ्र प्रभाव करती है, उपर्युक्त औषधियों के समान स्थायी प्रभाव नहीं करती । स्वल्प मात्रा में ~~इसका प्रयोग करना चाहिये ।~~ अर्थात् ५-१०० माइक्रोग्राम या .००५ मिलि० मात्रा में दिन में १ बार आरम्भ में इसका प्रयोग करना चाहिये । फिर इसके बाद उपर्युक्त औषधियों का प्रयोग करते रहना चाहिये ।

पाण्डुता के लिये लोह तथा विटामिन बी$_{१२}$ का प्रयोग करना चाहिये ।

वामनत्व :- Cretinism, Dwarfism:-

यदि जन्म से ही शिशु में गल ग्रन्थि का विकास न हो पाया हो जिससे शरीर को इसके सूक्ष्म रस न मिलें या बहुत कम मात्रा में मिलें तब शरीर का विकास नहीं हो पाता जिसे वामन रोग या Cretinism कहते हैं ।

जिन प्रदेशों में गिल्हड़ का रोग होता है अर्थात् जहां जल आदि से स्वभावत: आयोडीन कम मिलता है वहां यदि माता या पिता में से किसी को गिल्हड़ हो या यह ग्रन्थि अधिक निष्क्रिय हो तो गर्भस्थ शिशु को आयोडीन के न मिलने से उसमें इस ग्रन्थि का विकास नहीं होता । गर्भावस्था में माता को Iodine मिलता रहे तो यह रोग नहीं होता ।

रोगी की गल ग्रन्थि की परीक्षा करने से पता लगता है वह बहुत छोटी है । उसकी थैलियों की फिल्ली लघु तथा क्षीण (Atrophied) होती है । थैलियां छोटी तथा संख्या में कम होती हैं । स्नायुतन्तु की मात्रा बढ़ी हुई होती है ।

लक्षण :-

ऐसा शिशु उत्पन्न होने के समय नार्मल ही प्रतीत होता है परन्तु किसी शिशु में रोते समय उसके गले की आवाज बैठी हुई हो, त्वचा के नीचे प्रोटीन्स सदृश पदार्थ के बैठ जाने से वह मोटी सी दीखे तो इस रोग का सन्देह करना चाहिये। और यदि फिर उसकी शारीरिक, मानसिक वृद्धि न हो अर्थात् उसमें बैठ सकने, खड़े हो सकने, बोलने, समझने, समय पर दन्तोद्गम होने आदि के लक्षण दिखाई न पड़ें, शिर, भौंहों के बाल ठीक ठीक न उगें, खुश्क से हों, कम हों, दूर दूर हों, भंगुर हों, नासिका चौड़ी चपटी हो, नथुने बड़े बड़े हों, नाक का पिछला हिस्सा बैठा हुआ हो, ओंठ मोटे हों, जीभ मोटी हो, बाहर निकली हुई रहती हो, शाखायें छोटी हों, हाथ पैर छोटे चपटे से हों, अंगुलियां आगे से चपटी सी हों, ब्रह्म रंध्र का छिद्र देर तक बना रहे, पेट आगे को उभरा हुआ हो, अस्थियों की वृद्धि यथावत् न हो, इस रोग का सन्देह कर लेना चाहिये तथा शीघ्र ही उसकी चिकित्सा आरम्भ कर देनी चाहिये। ऐसा बालक देखने में ही बुद्धिहीन, भाषण शक्ति से हीन और कभी कभी श्रवण शक्ति से भी हीन होता है।

परीक्षा करने पर ऐसे शिशु की नाड़ी गति नार्मल से कम होती है। तापमान भी नार्मल से कम होता है। B.M.R. भी कम होता है। उसे शीत सहन नहीं होता तथा मलबन्ध भी रहता है।

चिकित्सा :-

रोगी की चिकित्सा शीघ्र आरम्भ न की जाय तो बालक शरीर में वामन (Dwarf) बुद्धि हीन, गूंगा, बहरा, रह जाता है। यदि चिकित्सा शीघ्र आरम्भ कर दी जाय तो रोग को रोका जा सकता है और बालक को बहुत कुछ स्वस्थ बनाया जा सकता है। इस ग्रन्थि की न्यूनता को पूर्ण करने के लिये १ वर्ष से कम शिशु को Thyroideum (Desiccated Thyroid Extract) की $\frac{१}{८}$, $\frac{१}{४}$ ग्रेन की १ मात्रा प्रतिदिन दे देनी चाहिये। शिशु १ वर्ष से बड़ा हो जाय तो २-३ वर्ष की आयु में उसे यह औषधि $\frac{१}{२}$ ग्रेन मात्रा में प्रतिदिन दे देनी चाहिये। इससे बड़ी आयु के बालक में इसे १ ग्रेन मात्रा में दिया जा सकता है। इस औषधि के देने के एक सप्ताह के अन्दर २ इस औषधि के गुण मालुम होने लगते हैं। मूत्र आने लगता, स्वेद आने लगता, शरीर का बोझ घटने लगता, नये बाल आने लगते, हाथ पांव तथा शरीर के अंग ठीक ठीक बढ़ने लगते और रक्त में Cholesterol की प्रतिशतक मात्रा कम होने लगती है। कुछ काल बाद उसकी मानसिक अवस्था में भी सुधार के लक्षण दीखने लगते हैं।

Thyroideum के समान Thyroxine Sodium को .०२५ से - .१ मिलि० मात्रा में दिन में १ बार देते रहने से भी इसी प्रकार लाभ होता है।

प्रतिषेधक चिकित्सा :-

जिन प्रदेशों में गिल्लड़ रोग बहुत होता है वहां माता को बड़ा गिल्लड़ हो तो गर्भावस्था में उसे Sodium Iodide १-२ ग्रेन दैनिक मात्रा में मिलता रहना चाहिये । इससे गर्भस्थ शिशु को इस रोग से ग्रस्त होने से बचाया जा सकता है ।

Adrenal ग्रन्थि के रोग :-

इतिहास :-

पहले पहल Eustachius (१५६३) ने Adrenal का एक ग्रन्थि के तौर पर वर्णन किया था । यद्यपि वह इसके कार्य से परिचित नहीं था । फिर Meckle (१८०६) ने कहा था कि यह ग्रन्थि यकृत प्लीहा आदि के समान शरीर में धात्वीय परिपक्व Metabolism का संचालन करती है तो भी सबसे पहले Thomus Addison (१८५५) ने उस रोग का वर्णन किया जो इस ग्रन्थि के क्षीण या नष्ट हो जाने से होता है । इसीलिये इस ग्रन्थि के निष्क्रिय हो जाने से उत्पन्न होने वाले रोग को अभी तक Addison का रोग कहते हैं । परन्तु इस ग्रन्थि के सूक्ष्म रसों Hormones का पता तो १६३० के लगभग पहले Hartman, Mac Arthur आदि ने और फिर Kendall, Reichstein आदि ने भलीप्रकार पता ही नहीं लगा लिया उन्हें कृत्रिम रुप से बना भी लिया ।

रचना :-

पीले से रंग की १ ड्राम के लगभग भार की यह त्रिकोणाकृति ग्रन्थि दोनों ओर वृक्कों के ऊपर के सिरे पर टोपी की तरह उसके अन्दर की तरफ तथा कुछ आली और झुकी हुई पड़ी रहती हैं (माप (१½ × ½ × ⅛ इन्च दाहिनी, १¾ × ¾ × ⅛ इं. बाईं))। इसके बाहर २ के कठोर खोल को Cortex तथा अन्दर के मृदु, गहरे रंग वाले गूदे को Medulla कहते हैं । ये दोनों भाग हर तरह से एक दूसरे से सर्वथा विभिन्न अंग हैं ।

Cortex उसी प्रकार के झिल्ली के बनाने वाले सेलों से बना है जिनसे Gonads अर्थात् लिंगग्रन्थियां बनी हैं । इन सेलों में वसा सदृश पदार्थ अर्थात् Lipoid विशेष होता है । ये सेल बाहर से अन्दर की ओर तीन क्षेत्रों में विभक्त हैं जिन्हें क्रमश: Zonaglomerulosa (सेलों के गोलाकृति होने से), Zonafasciculata (सेलों के स्तम्भाकृति Columnar होने से), तथा Zona Reticularis कहते हैं । इस ग्रन्थि में रक्त बहुत अधिक मात्रा में आता है ।

(१) Superior Supra Renal Artery के द्वारा जो Inferior Phrenic Artery की शाखा है इसमें रक्त आता है ।

(२) Middle Suprarenal Artery से जो Aorta की शाखा है इस ग्रन्थि में रक्त आता है ।

(३) Inferior Suprarenal Artery से जो Renal Artery की शाखा है इसमें रक्त आता है । इसमें से रक्त केवल एक Vein के द्वारा वापिस जाता है । दांयी ओर की ग्रन्थि से यह Adrenal Vein निकल कर सीधी Inferior Venacava में जा मिलती है । बांये ओर की ग्रन्थि से निकली

Adrenal Vein उधार की Renal Vein में जा मिलती है । यह शिरा दोनों और अपेक्षाया कुछ मोटी होती है । इस ग्रन्थि में Sympathetic नाड़ी सूत्र Splonchnic के द्वारा Coeliac Ganglion से जाते हैं ।

कार्य :-

Kendall तथा Reichstein ने इस Cortex में से बहुत से Corticosteroids जो इस ग्रन्थि के सूक्ष्म रस Hormones हैं पृथक् किये हैं, जिनमें से ६ प्रमुख माने जाते हैं ।

(१) 17-Hydroxycorticosterone या कम्पौण्ड F. या Hydrocortisone.

(२) 17-Hydroxy-11 Dehydrocorticosterone. या कम्पौण्ड E. या Cortisone.

(३) 11-Desoxycorticosterone acetate (DOCA) या Deoxycortone Acetate (B.P.) U.S.P.

(४) Aldosterone (Electrocortin).

(५) 11-Dehydrocorticosterone या कम्पौण्ड A.

(६) Corticosterone या कम्पौण्ड B. हैं ।

इनका अपने प्रभावों के अनुसार तीन वर्गों में वर्गीकरण किया जा सकता है ।

(१) इनमें से 11-Desoxycorticosterone तथा Aldosterone रक्त द्वारा विशेषत: वृक्क की मूत्र स्राविणियों (Tubules) पर प्रभाव करते हैं एवं उनमें सोडियम तथा जल को पुनर्विलीन करके शरीर में इन्हें सुरक्षित रखने का काम करते हैं । जिससे रक्त की मात्रा कम नहीं होती शरीर मात्रा तथा रक्त भार ठीक बना रहता है (जब रक्त में सोडियम बढ़ता है एवं वह कुछ alkaline होता है तब मूत्र स्राविणियों से Chloride का पुनर्विलीयन होता है) साथ ही ये सेलों में से आये Potassium को मूत्र द्वारा बाहिर निकालने का काम करते हैं (जिससे रक्त में sod. chlor. बढ़ता तथा Pot. घटता है)। इस प्रकार क्योंकि ये इन Electrolytes को शरीर में नियमित रखते हैं और Cortex से निकलते हैं, इन्हें Mineralocorticoids कह देते हैं । सम्भवत: ये भाग के zona glomerulosa से उत्पन्न होते हैं।

(२) Corticosterone (कम्पौण्ड B.) Cortisone, तथा Hydrocortisone, जो सम्भवत: zona fasciculata से उत्पन्न होते हैं शरीर की शक्ति को बढ़ाने के लिये धातुओं में विद्यमान प्रोटीन को (यकृत में glycogen को) सम्भवत: फैट को भी ग्लूकोज़ में परिवर्तित करने का काम करते हैं, विशेषत: शरीर या मन पर अति कार्य भार आ पड़ने पर उत्पन्न हुई शक्ति की पूर्ति के लिये वे ऐसा करते हैं अर्थात् इनके कारण Gluconeogenesis की प्रक्रिया होती है। इस प्रकार ये प्रोटीन फैट तथा कार्बोहाइड्रेट के परिपचन को ठीक रखते हैं । इन्हें Glucocorticoids या carbohydrate regulating steroids कहते हैं । इनकी अतिमात्रा हो जाने पर रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है। शोथ व व्रण शान्त करने से इन्हें anti inflammatory steroids भी कहते हैं Eosinophils, lymphocytes कम करते हैं

(३) जिस प्रकार Androgens अर्थात् पुल्लिंगी सूक्ष्म रस तथा Oestrogens अर्थात् स्त्रीलिंगी सूक्ष्म रस क्रमश: अण्ड तथा डिम्ब ग्रन्थियों से उत्पन्न होते हैं वैसे कुछ अंश में इस Cortex के zona reticularis में से भी उत्पन्न होकर ये दोनों रक्त में जाते हैं तथा ये Androgens Nitrogen को पकड़ कर उससे प्रोटीन्स को एवं शारीरिक धातुओं को बनाने (Protein Anabolism) का कार्य करते हैं । साथ ही स्त्री पुरुष

[margin note: अत्यधिक मात्रा में शरीर में अमीनोacids बनाकर उनको शक्ति के रूप में ... keto acids के रूप में ... ACTH ...]

सूक्ष्म वाह्य लक्षणों को भी उत्पन्न करने का काम करते हैं। पुरुष के मूत्र के द्वारा प्रतिदिन जितनी मात्रा Androgens की 17-Ketosteroids के रूप में बाहर निकलती है उसका $\frac{2}{3}$ भाग इसी ग्रन्थि में से आता है और केवल $\frac{1}{3}$ भाग अण्ड ग्रन्थि में से आता है। स्त्री के मूत्र में Androgens की प्रतिदिन जो मात्रा निकलती है वह सारी की सारी इसी ग्रन्थि में से आती है। इस ग्रन्थि में पाये जाने वाले Androgens में प्रधान Androsterone है।

इस Adrenal ग्रन्थि का Pituitary ग्रन्थि के साथ सम्बन्ध :-

शरीर पर बाहर से या अन्दर से अर्थात् वाह्य या मानसिक किसी प्रकार का आघात आ पड़े तो नाड़ियों के द्वारा Thalamus और Hypothalamus विक्षुब्ध [illegible] हो जाते हैं। उनके इस विक्षोभ से Anterior Pituitary ग्रन्थि विक्षुब्ध हो जाती है। Adrenaline के रक्त के द्वारा उस पर प्रभाव होने से भी वह विक्षुब्ध होती है। उसके विक्षोभ से उसमें से Adrenocorticotropic Hormone (ACTH) उत्पन्न होकर रक्त के द्वारा Cortex में पहुँच कर उसे उत्तेजित करता है जिससे उसमें से उपर्युक्त Adrenocorticosteroids अधिक मात्रा में उत्पन्न होने लगते हैं। वैसे तो इस ग्रन्थि के सूक्ष्म रस स्वल्प मात्रा में उत्पन्न होते ही रहते हैं। इस ग्रन्थि से Hydrocortisone की उत्पत्ति दिन भर में पुरुष में १३ और स्त्री में ११ मिलि० के लगभग होती है। दिन में इसकी उत्पत्ति कुछ अधिक, रात को बहुत कम होती है। परीक्षा करने से दिन के समय प्रति १०० सी०सी० रक्त में यह ५-२५ माइक्रोग्राम मात्रा में मिलता है। ACTH के द्वारा इसकी मात्रा बढ़ जाती है। दूसरी ओर जब रक्त में Hydrocortisone की मात्रा बढ़ती है तब Anterior Pituitary के मन्द हो जाने से ACTH की मात्रा कम उत्पन्न होती है। इसीलिये ACTH के देते रहने पर जब इस ग्रन्थि में कुछ अति वृद्धि (Hyperplasia) हो जाती एवं Hydrocortisone की उत्पत्ति उसमें से अधिक होने लगती है ऐसी अवस्था में जब ACTH का देना सहसा बन्द कर दिया जाता है तब अन्दर Pituitary में से भी इसकी स्वाभाविक उत्पत्ति बहुत कम हुई २ पाई जाती है। इसी प्रकार Hydrocortisone देर तक लिया जाय तो अन्दर ACTH की उत्पत्ति कम होने से Adrenal Cortex में भी कुछ क्षीणता (Atrophy) हो जाती है और फिर Hydrocortisone के सहसा बन्द करने पर Adrenal Cortex की क्षीणता के कारण उसके सूक्ष्म रसों की उत्पत्ति दिनों और सप्ताहों तक कम ही होती है। इसीलिये इन औषधियों के प्रयोग को सहसा नहीं, पर क्रमशः धीरे धीरे समाप्त किया जाता है।

इस ग्रन्थि सम्बन्धी परीक्षायें (Tests)

(१) जल निष्क्रमण सम्बन्धी परीक्षा :- Kepler's Water Excretion Test:-

वृक्कों के अन्दर विद्यमान रक्त में इस ग्रन्थि के सूक्ष्म रस (Hydrocortisone आदि) न हों या कम हों तो वे जल को भली प्रकार बाहिर नहीं कर सकते। इसीलिये यदि इस रोग के रोगी को रात भोजन न देकर, प्रातः उसे मूत्र कराके उसके मूत्राशय को खाली करके हलका सा गर्म जल रोगी के प्रतिकिलो ग्राम भार के पीछे २० मिलिलिटर के हिसाब से उसे आधी घन्टे के अन्दर अन्दर थोड़ा थोड़ा करके पिला दें (इस बीच रोगी बिस्तरे पर पड़ा रहे) फिर एक एक घन्टे पर चार घन्टे तक उसका मूत्र लेकर उसे माप लेना चाहिये। वह कितना है, और यह हिसाब लगाना चाहिये कि वह पिये हुए जल का कितना भाग है। एक नार्मल व्यक्ति में इस प्रकार पिलाये हुए जल का ५० प्र०श० भाग तो २ घन्टे में मूत्र द्वारा निकल जाता है तथा ४ घन्टे में पिये हुए जल का ८० प्र०श० भाग मूत्र द्वारा निकल जाता है। परन्तु यदि Cortex रुग्ण हो, असमर्थ हो, तो पिया हुआ जल ४ घन्टे तक भी २० प्र०श० से कम मूत्र द्वारा निकलता है। इसलिये यदि ४ घन्टे तक मूत्र द्वारा निकलने वाला जल पिये हुए जल के ५० प्र०श० से कम हो तो Adrenal ग्रन्थि की असमर्थता का अनुमान करना चाहिये।

अब यदि रात को भोजन का लंघन कर लेने के बाद पहले रोगी को मुख द्वारा ५० मिलि० Cortisone Acetate (Cortin) दे दें, फिर २ घन्टे बाद मूत्राशय को खाली कराके आधा घन्टे के अन्दर अन्दर उसे उपर्युक्त मात्रा में जल दे के फिर एक एक घन्टे बाद ४ बार का मूत्र ले के उसे माप लेना चाहिये और देखना चाहिये कि वह पिये हुये जल का कौन सा भाग है। इससे यदि जल की निकासी नार्मल हो जाय तो निश्चय कर लेना चाहिये कि रोगी में Adrenal ग्रन्थि की असमर्थता (Deficiency) विद्यमान है।

(२) 17-Ketosteroids की परीक्षा :-(Test):-

मूत्र में जो Ketosteroids निकलते हैं (उनके प्रारम्भिक steroids) वे Cortex (तथा अण्ड) के सूक्ष्म रसों (Hormones) में से ही आते हैं। अतः यदि यह ग्रन्थि निष्क्रिय हो जाय तो स्त्री के मूत्र में तो ये (बहुत कम या) सर्वथा नहीं मिलते और पुरुष के मूत्र में इनकी दैनिक मात्रा ५ मिलि० से कम हो जाती है। (नार्मल नरों में ८-१५ मिलि० मादाओं में ५-१२ मिलि०)

ACTH को २५ मिलि० मात्रा में धीरे धीरे करके ६-७ घन्टे के समय में शिरा द्वारा देकर उसके ४८ घन्टे बाद देखने से ~~इस~~ नार्मल व्यक्ति के मूत्र में 17-Ketosteroids की मात्रा पहले से बढ़ जाती है। यदि इसके देने के बाद भी मूत्र परीक्षा करने पर इसमें कोई वृद्धि न हो तो Primary Suprarenal Deficiency का निश्चय कर लेना चाहिये। यदि Anterior Pituitary के रुग्ण होने के कारण इस Adrenal ग्रन्थि में असमर्थता हुई २ हो तो

उपर्युक्त इंजेक्शन देने के ४८ घन्टे बाद मुत्र में 17-Ketosteroids में वृद्धि अवश्य होती है ।

Thorn's Test :-

उपर्युक्त ACTH के मन्द गति से शिरा द्वारा इंजेक्शन देने से पहले तथा इस इंजेक्शन के ८ घन्टे तक देने के बाद फिर रक्त में Eosinophils की गणना करनी चाहिये । नार्मल व्यक्ति में इस इंजेक्शन के बाद इनकी संख्या ६० प्र०श० कम हो जाती है । इस रोग में यह कमी बहुत कम होती है ।

अथवा रात को रोगी को निराहार रख के प्रात: उसके रक्त में Eosinophils की संख्या देखनी चाहिये फिर ACTH २५ मिलि० मात्रा में मांस द्वारा देकर उसके बाद नाश्ता कराके इंजेक्शन से ४ घन्टे बाद फिर उसके रक्त को लेकर उसमें Eosinophils की गण्ना कर लेनी चाहिये । नार्मल व्यक्ति में इस इंजेक्शन के बाद 11-17 Oxysteroids के अधिक मात्रा में उत्पन्न होने पर इन श्वेताणुओं में पहली गणना की अपेक्षा ५० प्र०श० से अधिक कमी हो जाया करती है । यदि यह कमी ५० प्र०श० से कम हो तो इस ग्रन्थि के रुग्ण होने का निश्चय कर लेना चाहिये । इन दोनों विधियों में से प्रथम विधि अधिक सही पता देने वाली है ।

Fasting Test or Hypoglycaemic Test :-

२४ घन्टे के उपवास के पहले तथा बाद जिसमें रोगी को केवल जल पर ही रखा जाता है रोगी के रक्त में शक्कर की परीक्षा की जाती है । थोड़ी कमी तो सभी में होती है परन्तु जब यह ग्रन्थि निष्क्रिय होती है तब यह कमी २० मिलि० प्र०श० से अधिक होती है । तब Hypoglycaemia के लक्षण प्रकट होने लगते हैं ।

तीव्र वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि नैर्बल्य :- Acute Suprarenal Deficiency, Acute Hypocorticalism, Acute Hypoadrenia:-

तीव्र रुप में यह रोग तीव्र संक्रामक रोगों के उपद्रव रुप में होता है । उदाहरणत तीव्र तथा घातक (Subtertian) विषम ज्वर, मन्थर ज्वर, विषूचिका, ग्रीष्म अतिसार, Diphtheria, आदि में इस ग्रन्थि के अन्दर शोथ हो जाने से इसके सहसा निष्क्रिय हो जाने के कारण सोडियम तथा जल के अति मात्रा में निकल जाने तथा पोटासियम के शरीर में बढ़ जाने से तथा रक्त में खाण्ड के कम हो जाने से रक्त संचार मन्द हो जाता तथा सर्वांग शैत्य (Shock) का लक्षण हो जाता है । शरीर पर अति मात्रा में दाह (Burn) के हो जाने पर भी यह ग्रन्थि निष्क्रिय हो सकती है ।

चिरस्थायी वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि नैर्बल्य :- Addison's Disease (Chronic Hypocorticalism) :- Adrenal insufficiency :-

एडिसन-Addison- (१८५५) ने सबसे पहले इस रोग की ओर हमारा ध्यान खींचा । यह रोग सुलभ नहीं है तो भी इसका परिज्ञान अत्यावश्यक है । इस रोग में पहले इस ग्रन्थि का Zonareticularis फिर Zona Fosciculata फिर Zona Glomerulosa धीरे धीरे नष्ट होते हैं और अन्त में Medulla भी नष्ट होने लगता है । ७० प्र०श० रोगियों में इसके नष्ट होने का कारण दाय रोग Tuberculosis होता है अर्थात् इस रोग के कारण इस ग्रन्थि में पनीर भाव तथा स्नायु भाव (Caseation, Fibrosis) की प्रक्रिया हो जाती है । रोगी की आयु २०-४० के बीच की हो, रोगी की किसी ग्रन्थि (Gland) या अस्थि में दाय रोग होने का या परिवार में दाय रोग होने का इतिवृत्त हो तो इस रोग का सन्देह कर लेना चाहिये। कभी कभी ... Radiology ... निश्चय हो जाता है । २० प्र०श० रोगियों में इस ग्रन्थि में हुई दाणता (Atrophy) इस रोग का कारण होती है । अर्थात् इस अवस्था में Cortex में स्नायु तन्तु छा जाता है । कभी कभी इसमें कैन्सर, फिरंग, Amyloid रोग होकर यह निष्क्रिय होने लगती है ।

लक्षण :-

यह रोग धीरे धीरे अज्ञात रूप में आरम्भ होता है । पहले पहल उसकी शिकायत यह होती है कि रोगी शरीर में अशक्ति अनुभव करता है । स्वल्प श्रम से या थोड़ा बोलने से वह थक जाता है । उसका शरीर हारता जाता या सूखता जाता है । शरीर में से Sodium तथा जल की अधिक निकासी तथा रक्त में ग्लूकोज़ की कमी तथा मांसपेशियों में पोटासियम की अधिकता से ये लक्षण हो सकते हैं । (नार्मल सोडि० ३१०-३५५ मिलि० नार्मल पोटासियम १४-२१ मिलि० ...) ऐसी शंका हो जानी चाहिये। रोगी को अन्नारुचि, वमन तथा पेट में दर्द के लक्षण भी हो सकते हैं । ये लक्षण Vagotonia के कारण होते प्रतीत होते हैं । धातुपाक अर्थात् Metabolism के मन्द हो जाने से रोगी को अपने हाथ पांव ठन्डे लगते हैं । परन्तु इनके साथ एक बड़ा प्रमुख लक्षण शरीर की त्वचा पर श्यामता का आ जाना है जो पहले चेहरे पर से आरम्भ होकर ग्रीवा पर और हाथों के पृष्ठ प्रदेश पर दीखती है । गोडों, कोहणियों, अंगुलियों, जननेन्द्रियों, कक्षा, चूचुक, नाभि तथा जहां जहां त्वचा पर संघर्ष या दबाव पड़ता है वहां वहां यह श्यामता विशेष दिखाई पड़ती है । मुख के अन्दर जीभ पर, मसूड़ों पर, गालों पर, तालु के पिछले भाग पर स्लेटी रंग के चकते दिखाई पड़ते हैं । इस ग्रन्थि के सूक्ष्म रसों (Hydrocortisone) के अभाव में Pituitary ग्रन्थि के Melanocyte Stimulating - Hormone के प्रबल हो जाने से ये श्याम वर्ण चकते उत्पन्न होते हैं ऐसा समझा जाता है । पेट सम्बन्धी लक्षण अर्थात् अन्नारुचि विशेषत: घी, तेल के लिये अरुचि, वमन, मलबन्धा, पेट में विशेषत: आमाशय प्रदेश (Epigastrium) में दर्द होने के लक्षण अधिक स्पष्ट होते जाते हैं ।

हृदय तथा रक्त की परीक्षा करने पर, क्योंकि Sodium

और जल की निकासी मूत्र, स्वेद आदि शारीरिक स्रावों के द्वारा अधिक हो जाती है Dehydration तथा रक्त की मात्रा के कम हो जाने से रक्त भार घट जाता है । संकोच कालिक रक्त भार $\frac{१००}{६०}$ M.M.Hg. या इससे भी कम हो जाता है । हृदय शब्द मन्द होते हैं । नाड़ी गति कुछ तीव्र हो जाती है । प्रत्येक नाड़ी का विस्तार Volume कम होता, पाण्डुता Microcytic Hypochromic किस्म की होती है । इन दोनों कारणों से खड़ा होने पर सिर में चक्कर आ सकता है । रक्त में Lymphocytes तथा Eosinophils की संख्या कुछ बढ़ जाती है । रक्त में Sodium और Potassium का अनुपात जो १५०:५ अर्थात् ३०:१ का होता है वह कम हो जाता है । धातुपाक की मन्दता से तापमान भी गिर जाता है । रक्त की कमी तथा वृक्कों को रक्त के कम मिलने से मूत्र कम बनता है । उसके द्वारा Urea, Non-Protein Nitrogen की निकासी भी कम हो जाती है जिससे रक्त में इनकी मात्रा नार्मल से अधिक हो जाती है + (Azotaemia) मूत्र में प्रतिदिन निकलने वाली 17-Ketosteroids की मात्रा कम हो जाती है ।

जननेन्द्रिय निर्बलता सम्बन्धी लक्षण जैसे पुंस्त्वनाश, आर्तव नाश के लक्षण भी होते हैं ।

शारीरिक निर्बलता के समान मानसिक निर्बलता के लक्षण जैसे मानसिक मन्दता, उदासीनता, तन्द्रालुता, स्मृतिनाश, एकाग्रता की न्यूनता, सहन शक्ति की न्यूनता, भयशीलता, निराशावाद (Pessimism), प्रतिकूलता (Negativism) के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं ।

Addisonian Crisis :-

जिस व्यक्ति में ये ग्रन्थियां निष्क्रिय होती हैं यदि उसे कोई तीव्र ज्वर हो जाय या उसे कुछ काल उपवास करना पड़े या उसे सहसा सर्दी लग जाय या भारी श्रम करना पड़े या उस पर कोई चिन्ता आ पड़े या उसे दस्त लग जायें तो क्योंकि उसमें इनको सहने की शक्ति नहीं होती उसे शीघ्र सर्वांग शैत्य (Collapse) का उपद्रव हो जाता है जिसे Addisonian Crisis कहते हैं । ऐसा व्यक्ति Morphine, Potassium, Insulin, Chloroform आदि को भी सहन नहीं करता । दौरे के प्रारम्भ में पेट पर दर्द का लक्षण होता है बाद में तीव्र वमन होकर शरीर से बहुत सा जल निकल जाता एवं रक्तभार गिर जाता और शीघ्र [illegible] हो जाता है इस दौरे की चिकित्सा शीघ्र होनी चाहिये अन्यथा यह घातक होता है।

चिकित्सा :-

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इस रोग के रोगी को कार्बोहाईड्रेट तथा प्रोटीन भोजन पर्याप्त मात्रा में मिलना चाहिये । दिन के ३ भोजनों के स्थान पर उसे दिन में थोड़ी-थोड़ी मात्रा में कई बार भोजन मिलना चाहिये । प्रोटीन्स को शरीर में खपाने (Anabolise करने) के लिये Testosterone भी उसे मिलता रहे तो लाभ रहता है । रोगी को संक्रामक रोगों तथा आघातों से

बचाना चाहिये । कोई ऐसा रोग हो जाय तो तुरन्त उसकी चिकित्सा होनी चाहिये ।

Hydrocortisone (Efcorlin) या Cortisone (corlin glaxo, Cortone M.S.D.) इस रोग की प्रधान औषधि है । Hydrocortisone को ६·२५ से २५ मिलि० दैनिक मात्रा में ३-४ बार करके मुख द्वारा देना चाहिये । इससे प्रोटीन्स कार्बोहाइड्रेट्स तथा फैट्स का परिपच्च ठीक ठीक होता है या Cortisone Acetate को १२·५ मिलि० मात्रा में दिन में ४ बार मुख द्वारा देना चाहिये अथवा इनके स्थान पर Triamcinalone (Kenacort. Squibb. Ledercort) को २ मिलि० मात्रा में दिन में ३ बार देना चाहिये । क्योंकि शरीर में सोडियम को रोकने तथा सोडियम, पोटासियम और जल को सन्तुलित रुप में रखने में ये औषधियां सहायक नहीं होतीं । अत: इनकी इस कमी को पूरा करने के लिये Fludrocortisone Acetate (Florinef, F- Cortef, Aflorone) को ·१- ·२५ मिलि० मात्रा में प्रतिदिन या प्रति दूसरे दिन मुख द्वारा देना चाहिये अथवा इस औषधि के स्थान पर Desoxy-corticosterone Acetate (D.O.C.A. Percorten ciba) की एक गोली को गाल और दांत के बीच में रख के घुलने देना चाहिये, दिन में १ गोली पर्याप्त रहती है । या इसके ७५-७५ मिलि० की ४ Pellets को रोगी की त्वचा के नीचे प्रति ६-६ महीने के अन्तर से रख देना (Implant) चाहिये । या Desoxy Corticosterone Trimethylacetate को २५-७५ मिलि० मात्रा में महीने में १ बार रोगी के मांस में डाल देना चाहिये । (इस औषधि को तेल में के घोल के रुप में १ मिलि० मात्रा में रोज मांस द्वारा देना या २५ मिलि० मात्रा में महीने में १ बार देना बराबर है) अथवा Desoxycorticosterone Trimethyl Acetate (DCTMA) को जिसका प्रभाव चिरकाली स्थायी है महीने में १ बार ५० मिलि० मात्रा में मांस द्वारा दे देना चाहिये ।

यदि D.O.C.A. या Fludrocortisone न मिलें तो Cortisone के प्रयोग के साथ साथ Sodium Chloride को ५-२० मिलि० दैनिक मात्रा में देते रहना चाहिये ।

वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि की न्यूनता विशेष हो Acute Adrenal Insufficiency या Adrenal Crisis हो तो - इसे अर्थकारी समझ के इसकी प्रबलता से चिकित्सा करनी चाहिये । Hydrocortisone - Hemisuccinate (Solu+Cortef या Efcorlin soluble) १००-२०० मिलि० मात्रा में २-१० मिलि-लिटर जल में मिला के शिरा द्वारा एक मिनट का समय लगाके दे देना चाहिये । इसके बाद इसी Solu+Cortef को १०० मिलि० मात्रा में १-२ लिटर नार्मल सेलाइन में-जिसमें ५ प्र०श० ग्लूकोज़ का मिश्रण हो-मिला के २-४ घन्टे के समय में बुन्द २ करके शिरा द्वारा देना चाहिये ।

2-Cortisone Acetate- जब रोगी की अवस्था कुछ सुधरने लगे

तब Cortisone Acetate को ५० मिलि० मात्रा में ४-६ घन्टे के अन्तर से मांस द्वारा देना आरम्भ करना चाहिये। फिर क्रमश: मात्रा कम करते हुए अर्थात् २५ मिलि० मात्रा में इसे ८-८ घन्टे बाद देना चाहिये। फिर रोगी ले सके तो मुख द्वारा १०० मिलि० दैनिक मात्रा में इसे मुख द्वारा देना आरम्भ कर देना चाहिये। अच्छा हो जाने पर भी १२.५ मिलि० मात्रा में इसे दिन में ४ बार देते रहें। फिर क्रमश: इसकी मात्रा कम करते जायें। उपर्युक्त इंजेक्शन के शिरा द्वारा देने के बाद रोगी को १००० मिलिलिटर नार्मल सैलाइन जिसमें १० प्र०श० ग्लूकोज़ हो बून्द बून्द करके शिरा द्वारा देना चाहिये। दिन भर में इस प्रकार कुल जल ३ लिटर से ज्यादा नहीं देना चाहिये।

रोगी के सर्वांग शैत्य (Collapse) की निवृत्ति के लिये उसके सिर के ओर के चारपाई के पांवों को ऊंचा कर देना चाहिये तथा रोगी को गर्म रखना चाहिये। रक्त भार अधिक गिरा हो तो Metaraminol Bitartrate(Aramine)को २-१० मिलि० मात्रा में मांस द्वारा दे देना चाहिये। या १५ मिलि० मात्रा में इसे २५० सी०सी० ५ प्र०श० Dextrose सौल्यूशन में मिलाके शिरा द्वारा दे देना चाहिये। अथवा Methoxamine Hydrochloride(Vasoxyl) को १५ मिलि० मात्रा में मांस द्वारा दे देना चाहिये। आक्सिजन का भी प्रयोग भी करना चाहिये। उपर्युक्त Hydrocortisone या Cortisone के प्रयोग के साथ साथ Desoxycortone Acetate (DOCA) को ५-१० मिलि० मात्रा में मांस द्वारा १२-१२ घन्टे पर देते रहना चाहिये। यदि वमन का लक्षण न हो रोगी मुख से दवा ले सकता हो तो इस औषधि के स्थान पर Fludrocortisone को २ मिलि० मात्रा में दिन में १ बार देते रहना चाहिये। जिस रोग के संक्रमण से यह उपद्रव हुआ है उसके लिये जो Antibiotic औषधि आवश्यक हो उसका प्रयोग भी करना चाहिये।

वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि प्राबल्य-सक्रिय वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि :- Hypercorticalism
Hyperadrenia-Hyperadrenocorticism :-

यह वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि Adrenal Cortex अधिक सक्रिय हो जाय तो इसमें से निकलने वाले उपर्युक्त तीन प्रकार के सूक्ष्म रसों में से किसी एक की प्रचुरता होती है। जिससे तज्जनित लक्षण अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। दूसरे सूक्ष्म रस भी कुछ बढ़ जांय तो उनके भी लक्षणों में कुछ वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार प्रधानत: इस ग्रन्थि की सक्रियता तीन प्रकार की होती है। इस रोग का प्रथम रूप वह है जिसमें इस ग्रन्थि के Zona Reticularis में अति वृद्धि या अर्बुद के हो जाने से उसमेंसेपुलिंगी सूक्ष्म रस Androgen की उत्पत्ति बढ़ जाती है। Adrenal Cortex के इस सूक्ष्म रस के कारण पुरुष तथा स्त्री दोनों में कक्षा प्रदेश तथा गुप्त प्रदेश में बालों की उत्पत्ति होती है, शरीर में नाइट्रोजन या प्रोटीन की खपत (Anabolism या Nitrogen Retention)

बढ़ती है । स्पष्ट है कि यदि किसी स्त्री में इस ग्रन्थि के अन्दर से होने वाली Androgens की उत्पत्ति बढ़ जाय तो उसमें पुरुष सूचक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं जिससे इसे " वृक्कोपरीय जनित लिंग भेद " का रोग या Adreno-genital Syndrome कहते हैं ।

वृक्कोपरीय जनित लिंग भेद :- Adrenogenital Syndrome-Virilism. Adrenal Virilism

इस रोग का वर्णन पहले पहल फ्रान्स के एक डाक्टर Apert (१६१०) ने किया था । यदि जन्म से ही किसी के दोनों वृक्कोपरीय ग्रन्थियों में अति वृद्धि (Hyperplasia) के होने से Androgens या androgenic harmones या पुल्लिंगी सूक्ष्म रस की उत्पत्ति अधिक हो और उसमें Ovaries के होने के कारण वह मादा भी हो and chromatin positive हो तो उसकी जननेन्द्रिय तथा उसके शरीर में कुछ कुछ पुरुष सूचक लक्षण होते हैं अर्थात् वह स्त्री न होके " पुमान् स्त्री " या Pseudo Hermaphrodite होती है । इस रोग को " पुमान् स्त्रीत्व " का रोग या Pseudo Hermaphroditism. का रोग कहते हैं । ऐसी स्त्री के अन्दर तो Ovaries होती हैं पर उसकी जननेन्द्रिय में स्त्रियोचित लक्षणों के साथ पुरुष सूचक लक्षण भी होते हैं अर्थात् उसमें Clitoris कुछ बड़ा सा होता है, स्त्री योग्य योनि द्वार नहीं होता, हां Clitoris के नीचे मूत्र द्वार ही कुछ बड़ा सा होता है । कन्धे पुरुष के समान चौड़े, जघन स्थान (Pelvis) पुरुष की तरह छोटा या तंग होता है ।

जन्म के बाद ५-६ वर्ष की आयु में किसी वृक्कोपरीय ग्रन्थि में साधारण अर्बुद Adenoma के हो जाने या कैन्सर (Carcinoma) के उस ग्रन्थि के Androgenic Zone में से हो जाने से यह रोग होता है । लड़की में रोग हो तो उसमें पुरुष सूचक लक्षण होने लगते हैं । उसके चेहरे की त्वचा मोटी, भद्दी होती है, आवाज कठोर होती है, गुप्त स्थान तथा कक्षा में बाल आ जाते हैं, Clitoris आकार में बड़ा होता है, स्तन ग्रन्थियों में वृद्धि नहीं होती, शरीर कुछ भारा सा हो जाता है ।

लड़के में यह रोग हो तो यद्यपि वह नाटा होता, पर मांस पेशियों में वृद्धि के हो जाने से देखने में युवक सा दीखता है । जननेन्द्रिय आकार में बड़ी होती है । गुप्त स्थान तथा कक्षा में बाल आ जाते हैं । उसके इस रोग को Macrogenitosomia Precox का रोग कहते हैं ।

युवावस्था में अर्थात् १५-२० वर्ष की अवस्था में यह रोग स्त्री में हो तो उसके चेहरे, घाड़, शाखाओं तथा कोष्ठ के निचले प्रदेश पर नाभि से नीचे गुप्त स्थान के बीच के प्रदेश में बाल उत्पन्न हो जाते हैं । चेहरे पर युवान-पिडिकायें निकलती हैं । स्तनों की वृद्धि नहीं होती । Clitoris आकार में बड़ा होता है । कन्धे चौड़े, जघन स्थान (Pelvis) चौड़ाई में तंग होता है । आर्तव या तो होता ही नहीं या अति स्वल्प मात्रा में होता है । आर्तव समाप्ति

काल के बाद स्त्री में यह रोग हो तो ऐसी स्त्री के चेहरे पर बाल आ जाने का लक्षण होता है।

रोग विनिश्चय :-

Intravenous Pyelography के द्वारा वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि पर हुए अर्बुद का पता लग सकता है। पुलिंगी सूक्ष्म रस Testosterone जो पुरुष में अण्डों (Testes) तथा Adrenal ग्रन्थियों से और स्त्री में केवल Adrenal ग्रन्थियों से उत्पन्न होते हैं नष्ट होकर मूत्र द्वारा 17-Ketosteroids के रूप में बाहर निकलते हैं। इस रोग में इस (Male Sex Hormone) की उत्पत्ति के अधिक होने से मूत्र द्वारा 17-Ketosteroids की निकासी ४-२० गुणा तक हो जाती है। यदि अति वृद्धि (Hyperplasia) के कारण यह रोग हो तो शिरा द्वारा ५०-१०० मिलि० मात्रा में Hydrocortisone, के देने से 17-Ketosteroids की मात्रा मूत्र में शीघ्र घट जाती है। यदि Cortex में अर्बुद (Tumour) हो तो ऐसा नहीं होता। अति वृद्धि में रोग की गति मन्द होती है। साधारण अर्बुद हो तो शल्य कर्म से वह ठीक हो जाता है। कैन्सर हो तो रोग प्राय: असाध्य होता है।

अब यदि इस Adrenal Cortex या वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि के सक्रिय हो जाने पर Glucocorticoids अर्थात् Hydrocortisone या Cortisone सदृश सूक्ष्म रस की उत्पत्ति अधिक हो तो उसके कारण जो रोग होता है उसे Cushing. का रोग या Cushing's Syndrome कहते हैं।

Cushing का रोग :- Cushing's Syndrome:-

पहले पहल बोस्टन के डाक्टर Herney Cushing (१९३२) ने इस रोग की ओर हमारा ध्यान खींचा। यह एक चिरस्थायी रोग है जो २०-३० वर्ष की स्त्रियों में होता हुआ कभी कभी देखा जाता है। ६० प्र०श० में दोनों ओर वृक्कोत्तरीय ग्रन्थियों में विशेषत: उनके Zona Fasciculata में अति वृद्धि (Hyperplasia) के होने से, ३० प्र०श० में अर्बुद (Adenoma) या कैन्सर के होने के कारण यह रोग होता है। अति वृद्धि की अवस्था में रोग के लक्षण शनै: शनैः प्रकट होते हैं, अर्बुद के होने पर लक्षण सहसा उत्पन्न होते हैं। Glucocorticoids (Hydrocortisone, Cortisone) की अधिक उत्पत्ति के कारण प्रोटीन का परिपक्व अधिक होता है, जिससे अर्थात् Gluconeogenesis की प्रक्रिया के बढ़ जाने से यकृत में Glycogen की मात्रा बढ़ जाती है, रक्त में खाण्ड की मात्रा बढ़ जाती है, फैट भी बढ़ जाता है। प्रोटीन्स के कम हो जाने या उसके परिपक्व (Catabolism) के बढ़ जाने से शरीर की मांस पेशियों में अशक्ति आ जाती है। शाखायें पतली पड़ जाती हैं। अस्थियों में से प्रोटीन

के सची हो जाने से उनमें भंगुरता (Osteoporosis) का लक्षण हो जाता है। पृष्ठवंशास्थि में भंग हो सकता है। कटि कसेरुओं की भंगुरता से पीछे को कुब्जता (Kyphosis). का लक्षण हो जाता है। त्वचा तथा रक्तवाहिनियों में से प्रोटीन्स के कम हो जाने से कोष्ठ के निम्न भाग जंघाओं और कक्षा की पतली त्वचा पर नीली नीली या बैंजनी रंग की धारियां (Striae) या चकते (Ecchymoses) पड़ जाते हैं। रक्तवाहिनियों की दीवारों के पतले हो जाने से वहां रक्त की झलक पड़ने लगती है। चेहरे की त्वचा के पतला पड़ जाने से वहां भी रक्त की लालिमा गालों पर झलकने लगती है।

रक्त में खाण्ड की मात्रा बढ़ जाती है। रोगी की खाण्ड को खपाने की शक्ति (Glucose Tolerance) घट जाती है जिससे मधुमेह भी हो सकता है। फैट की वृद्धि चेहरे, गालों, ग्रीवा, ठोढ़ी, कन्धों, कोष्ठ पर विशेषरूप में होती है। जिससे चेहरा गोल हो जाता है। (Full moon Face) चेहरा इतना भर जाता है कि मुख छिद्र तथा कान उसके उभार में छिपजाते हैं। फूले हुए चेहरे और धड़ के साथ पतली शाखाओं को देखकर इस रोग का निश्चय हो जाता है।

रक्त में खाण्ड की वृद्धि के साथ Sodium की वृद्धि और Calcium की कमी हो सकती है। क्षारीयता (Alkalosis) का लक्षण भी हो सकता है। रक्त में Eosinophils की अनुपस्थिति भी होती है। मूत्र में 11-Oxysteroids या Glucocorticoids की मात्रा अधिक बढ़ी हुई होती है। हो सकता है कि Androgens की वृद्धि भी कुछ अंश में हो जिससे स्त्री के शरीर में पुरुष सदृश लक्षण अर्थात् चेहरे पर बाल, आर्तवनाश, Clitoris वृद्धि के लक्षण भी हों।

Primary Hyperaldosteronism, Conn's Syndrome :-

यह भी हो सकता है कि वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि के सक्रिय होने पर विशेषत: Mineralocorticoids या Aldosterone की उत्पत्ति अधिक हो और उपर्युक्त दोनों प्रकार के सूक्ष्म रसों की उत्पत्ति अधिक न हो। वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि (Adrenal Cortex) के Zona Glomerulosa में विशेषत: अर्बुद (Adenoma) के हो जाने से Aldosterone की उत्पत्ति अधिक बढ़ती है। इसकी अधिक उत्पत्ति से Sodium शरीर में अधिक रुकता है। Potassium की मूत्र द्वारा निकासी अधिक होने लगती है, इसकी निकासी से मांस पेशियों, हृदय आदि में अशक्ति उत्पन्न हो जाती है। तथा लवण के अधिक रुकने से शरीर में रक्त भार बढ़ जाता है।

वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि प्राबल्य या सक्रिय वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि :-

Hypercorticalism की चिकित्सा :-

जब वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि से Androgen की उत्पत्ति

अधिक मात्रा में हो रही होती है तब इसमें से Hydrocortisone सदृश सूक्ष्म रस (Hydroxylating Enzymes) की उत्पत्ति बहुत कम होती है । इसकी कमी से Pituitary ग्रन्थि से ACTH सूक्ष्म रस की उत्पत्ति स्वभावत: अधिक होने लगती है । इसी के कारण वृक्कोपरीय ग्रन्थियों में अतिवृद्धि (Hyperplasia) बनी रहती है । यदि रोगी को Cortisone या Hydrocortisone दिया जाय तो वृक्कोपरीय ग्रन्थियों की सक्रियता कम हो जाती है, साथ ही शरीर में Cortisone की जो कमी है वह भी पूर्ण हो जाती है ।

(१) अत: Androgen की अधिकता जन्म से हो तो शिशु या छोटी आयु के बालक को २५ मिलि० मात्रा में Cortisone प्रति दिन मांस द्वारा दे देना चाहिये । इससे कन्या में बढ़ते हुए पुरुष सूचक लक्षण शान्त होने लगते हैं । मूत्र में 17-Ketosteroids की मात्रा भी घटती जाती है । जितनी मात्रा के देने से मूत्र में इनकी मात्रा ८ मिलि० दैनिक रह जाय उसे फिर चालू रखना चाहिये । ८ वर्ष से बड़े बालक में यह रोग हो तो Cortisone को ५० मिलि० मात्रा में प्रतिदिन मांस द्वारा देना चाहिये । प्रभाव हो जाने पर फिर इस औषधि को मुख द्वारा देना आरम्भ कर देना चाहिये ।

युवावस्था में या बड़ी आयु में Androgen की अधिकता हो कर यह रोग हो तब भी इस औषधि को मांस द्वारा प्रतिदिन देना चाहिये जिससे मूत्र में 17-Ketosteroids की मात्रा ८ मिलि० दैनिक हो जाय या Prednisone (Delta cortlin glaxo या Hosta cortin Hoechst) Prednisolone (Delta efcortin Hosta cortin) आदि का ५-२५ मिलि० मात्रा में दिन में बांट कर भी प्रयोग किया जाता है । Adenoma, Carcinoma के कारण यह रोग हो तो शल्य कर्म आवश्यक होता है । इस ग्रन्थि में अति वृद्धि बनी रहे तो Subtotal Adrenalectomy के शल्य कर्म से लाभ हो जाता है । कैन्सर न हो तो १ वर्ष इस चिकित्सा के जारी रखने से पुरुष सूचक लक्षण शान्त हो जाते हैं ।

(२) कुशिङ के रोग Cushing's Syndrome की चिकित्सा :-

अर्बुद कारण हो तो शल्य कर्म द्वारा उसका निकालना आवश्यक होता है । अति वृद्धि (Hyperplasia) कारण हो तो Total या Subtotal Resection की चिकित्सा की जाती है ।

एक ओर की वृक्कोपरीय ग्रन्थि में अर्बुद हो तो उसके निकालने से पहले २-३ दिन दैनिक ACTH का एक सूची वेध तथा Cortisone १०० मिलि० के प्रात: सांझ दिन में २ सूचीवेध देने चाहियें । दूसरी वृक्कोपरीय ग्रन्थि जिसमें अर्बुद नहीं होता प्राय: लघु (Atrophied) होती है । वह ACTH के सूची वेध से उत्तेजित हो जाती है और कार्य

करने लगती है ।

शल्य कर्म के समय Hydrocortisone १०० मिलि० को $\frac{१}{२}$ लिटर Isotonic Saline तथा ५ प्र०श० Dextrose सोल्यूशन में मिला शिरा द्वारा धीरे धीरे देना चाहिये । शल्य कर्म के बाद के १२ घन्टे में भी इसी तरह का सूची वेध्न शिरा द्वारा देना चाहिये । शल्य कर्म के अगले दिन Cortisone को ५० मिलि० मात्रा में ६-६ घन्टे पर दिन में ४ बार मांस द्वारा देना चाहिये, उससे अगले २ दिन इसी औषधि को ८-८ घन्टे पर अर्थात् दिन में ३ बार देना चाहिये, तथा उससे अगले दो दिन इसी औषधि को ५० मिलि० मात्रा में १२-१२ घन्टे पर मांस द्वारा देना चाहिये, इससे अगले २ दिन इसे २५ मिलि० मात्रा में ८-७ घन्टे पर मुख द्वारा देना चाहिये । इस औषधि के साथ साथ Fludrocortisone (Florinef) को ·१ मिलि० मात्रा में दिन में १ बार एक एक दिन छोड़ के मुख से देते रहना चाहिये । दोनों ओर Adrenalectomy का शल्य कर्म हुआ हो तो १-२ सप्ताह में Hydrocortisone या Cortisone की चालू मात्रा का पता लगा के उसे आगे के लिये जारी रखना चाहिये । यदि Subtotal Adrenalectomy का शल्य कर्म हुआ हो तो क्रमश: इस औषधि को कम करते करते दो सप्ताह बाद इसे बन्द भी कर सकते हैं ।

रोगी को प्रोटीन भोजन अधिक मात्रा में देना चाहिये तथा शरीर में उसे खपाने के लिये Testosterone Propionate in Oil. २५-५० मिलि० मात्रा में मांस द्वारा रोज दिया जा सकता है ।

(३) Conn's Syndrome में अर्बुद के निकालने की ही चिकित्सा करानी चाहिये । secondary aldosteronism में जिस रोग के कारण इस सूक्ष्म रस का स्राव अधिक होता है उसकी चिकित्सा करनी चाहिये

वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि मध्यम भाग (Adrenal Medulla) के रोग :-

वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि के मध्यम भाग-Medulla- में से दो सूक्ष्म रस शरीर में जाते रहते हैं । एक तो Adrenaline या Epinephrine है जिसका पता १८९७ में (Abel के द्वारा) लग गया था । दूसरा सूक्ष्म रस Noradrenaline या Norepinephrine, Levarterenol या Sympathin है जिसका १९४९ में (Euler के द्वारा) पता लगा । इस ग्रन्थि में प्रथम ८० दूसरा २० प्र०श० के लगभग होता है ।

प्रथम सूक्ष्म रस Adrenaline हृदय को प्रबल करता है । अर्थात् उसका प्रत्येक स्पंदन प्रबल हो जाता है । उससे रक्त की अधिक अधिक मात्रा आगे शरीर में जाने लगती है जिससे त्वचा तथा पाचन संस्थान (Splanchnic) क्षेत्र को छोड़कर शेष स्थानों की रक्त वाहिनियां फैल कर चौड़ी हो जाती हैं । हृदय गति भी तीव्र हो जाती है । इस प्रकार शरीर को अधिकाधिक

रक्त मिलने लगता है । हृदय का संकोच कालिक रक्त भार बढ़ जाता है, यद्यपि विश्राम कालिक रक्त भार पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता ।

दूसरी ओर Noradrenaline के देने से हृदय के स्पंदनों में कोई प्रबलता नहीं आती, उसकी गति भी तीव्र नहीं होती । केवल रक्त-वाहिनियों (Peripheral Vessels) में संकोच (Constriclion) की प्रक्रिया बढ़ जाती है जिससे यह औषधि के रुप में आघात (Shock) के लिये अति उपयोगी द्रव्य हो जाता है ।

Adrenaline का दूसरा प्रभाव धात्वीय पक्व प्रक्रिया या धातुपाक (Metabolism) पर होता है अर्थात् वह तीव्रतर हो जाता है। या शरीर के सैलों में आक्सिजन का खर्च बढ़ जाता है जिससे शरीर की गर्मी बढ़ जाती है । परिणामत: यकृत तथा मांस में विद्यमान Glycogen अधिक मात्रा में खाण्ड में परिवर्तित होने लगता है । इस प्रकार यह सूक्ष्म रस Insulin के विपरीत कार्य करता है । इस प्रकार वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि का मध्यम भाग अपने वाह्यावरण Cortex की सहायता करने का कार्य करता है । जब जब शरीर या मन पर भारी कार्य भार आ पड़ता है, Adrenal Cortex के सूक्ष्म रस उसके लिये अत्यावश्यक होते हैं और इस ग्रन्थि के मध्य भाग (Medulla) के सूक्ष्म रस उनकी सहायता करते हैं ।

ग्रन्थि मध्य प्राबल्य :- Medullary Hyperfunction Phaeochromocytoma:-

---

वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि के मध्यम भाग (Medulla) की निर्बलता (Insufficiency) नहीं पाई जाती है । इसकी प्रबलता या इसके सूक्ष्म रसों की अधिकता (Medullary Hyperfunction) का रोग कभी कभी देखने में आता है जो इसमें एक छोटे से अर्बुद के जिसका पता पहले पहल १९२२ में लगा (Rabbe के द्वारा) और जिसे Phaeochromocytoma कहते हैं, उत्पन्न हो जाने से होती है । यह अर्बुद एक ओर की ग्रन्थि के मध्य भाग में ही होता है । प्राय: निरुपद्रव किस्म का होता, घातक कैन्सर के किस्म का नहीं होता तथा युवावस्था के स्त्री पुरुष में होता है । इस अर्बुद के कि जिसके कारण का कुछ पता नहीं चला होने पर समय समय पर अत्यधिक रक्त भार वृद्धि के वेग जिन्हें Adrenosympathetic Crises. कहते हैं होने लगते हैं। वेग किसी मानसिक आवेश से या भारी शारीरिक श्रम के होने पर प्रारम्भ होता है । दौरा आरम्भ होकर पहले ५-१५ मिनट के लिये रहता तथा दीर्घ काल के अन्तरों के बाद होता है । बाद में यह रक्त भार वृद्धि का वेग घन्टों तक रहने लगता और तीव्रतर होता जाता है । वेग के समय हृदय प्रबलता से कम्पन करने लगता है । प्रबल कम्पनों के कारण रोगी का शरीर तक हिलता है । हृदय की प्रबलता के कारण

संकोच कालिक रक्त भार ३०० M.M.of Hg. तक तथा विश्राम कालिक रक्तभार १७५ M.M.of Hg. तक हो जाता है । इससे शिर के अन्दर रक्त भार के बढ़ने से रह रह के फटने के समान दर्द होता है । ग्रीवा की शिरायें उभरी हुई दीखती हैं । त्वचा की रक्तवाहिनियों के संकुचित होने से चेहरा फीका पड़ जाता है । स्वेद युक्त होता है, हाथ भी रंग में फीके और स्वेद युक्त होते हैं । अरुचि और वमन के लक्षण भी होते हैं । शरीर में धातु पाक के तीव्र हो जाने से ज्वर होता है, Leucocytosis भी होता है । पुतलियां फैली हुई होती हैं । कभी कभी रोग दौरों के रुप में नहीं होता प्रत्युत रक्त भार वृद्धि कालक्षण बराबर रहता ही है। मूत्र परीक्षा करने से साधारणत: उसमें प्रतिदिन जो Pressor Amines (Noradrenaline) ५० माइक्रोग्राम मात्रा में आते हैं, इस रोग में बढ़कर १०० माइक्रोग्राम या इससे भी अधिक हो जाते हैं । शल्य कर्म द्वारा इस अर्बुद के निकाल देने पर ही यह रोग ठीक हो सकता है । परन्तु शल्य कर्म के समय शरीर का रक्त भार अत्यधिक न बढ़े और बाद में शरीर का रक्त भार अत्यधिक न गिरे इसके लिये पहले से ही प्रत्युपाय करने आवश्यक होते हैं

पिट्यूटरी ग्रन्थि के रोग :-

Diseases of the Pituitary Gland.

जो Hypothalamus के Neurosecretory सेलों से नियन्त्रित होती है (१.३x१.x.५ से.मी.)

पिट्यूटरी ग्रन्थि देखने में ५-१० ग्रेन की एक छोटी सी ग्रन्थि है जो कपाल की Sphenoid अस्थि के Sellaturcica नामक गढ़े में पड़ी रहती है, यह subarachnoid व optic chiasma से ढकी रहती है यह जीवन के लिये अत्यावश्यक निस्त्रोतस ग्रन्थि है। दूसरी निस्त्रोतस ग्रन्थियों की प्रेरक होने से भी इसकी आवश्यकता और बढ़ जाती है। इसका अग्रिम खण्ड (Anterior Lobe) दो प्रकार के सैलों के स्तम्भों (Columns) से बना ~~हुआ~~ है। एक प्रकार के सैलों के Cytoplasm में दाने होते हैं। दूसरे प्रकार के सैलों के Cytoplasm में दाने नहीं होते। इसलिये पहले प्रकार के सैलों को Granular, दूसरे प्रकार के सैलों को Agranular कहते हैं। पहले प्रकार के सैल रंग को पकड़ते हैं, इसलिये उन्हें Chromophil कहते हैं। दूसरे प्रकार के सैल रंग नहीं पकड़ते, उन्हें Chromophobe कहते हैं। फिर पहले प्रकार के दाने दार सैल भी २ प्रकार के हैं। एक अम्लीय रंग को पकड़ते हैं उन्हें Eosinophil (a.Cells) कहते हैं। दूसरे क्षारिय रंग पकड़ते हैं उन्हें Bosophil (b.Cells) कहते हैं। ग़ैर दानेदार सैलों अर्थात् Chromophobe सैलों से परिणत होकर दानेदार सैल बनते प्रतीत होते हैं। इस ग्रन्थि के सूक्ष्म रस इन दाने दार सैलों में से उत्पन्न होते हैं। Eosinophil सैलों में से (१) वृद्धि जनक सूक्ष्म रस (Growth Hormone या Somatotrophin या Somatotrophic Hormone), (२) दुग्ध जनक सूक्ष्म रस Lactogenic Hormone या Prolactin), (३) Luteinising (Gonadotrophic) Hormone या Interstitial Cell Stimulating Hormone (जो नर में अण्डों के Interstitial सेलों से testosterone तथा स्त्री में corpus luteum का प्रवर्तक होता है) उत्पन्न होते हैं। दूसरे Basophil सैल समूह से, (१) Adrenocorticotrophic Hormone या Corticotrophin या A.C.T.H., (२) Thyrotrophic Hormone गल ग्रन्थि प्रवर्तक सूक्ष्म रस या Thyroid Stimulating Hormone, (३) Follicle Stimulating (Gonadotrophic) Hormone (जो नर में अण्डों के germinal epithelium व spermatozoa का तथा स्त्री में graafian follicles का प्रवर्तक होता है) उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार पिट्यूटरी ग्रन्थि का प्रमुख सूक्ष्म रस "वृद्धिकारक सूक्ष्म रस" या Growth Hormone है। जिसके रक्त द्वारा शरीर में जाते रहने से त्वचा, मांस, अस्थियों, रक्तवाहि संस्थान, आशयों आदि में संतुलित रूप से वृद्धि होती रहती है। इस सूक्ष्म रस के द्वारा Nitrogen शरीर में रुकता है एवं नया Protein बनता है और शरीर के अंगों की उसके द्वारा वृद्धि होती है। युवावस्था तक इसकी उत्पत्ति अधिक मात्रा में होती बाद में कम हो जाती है

पशुओं की Pituitary ग्रन्थि से पृथक किया हुवा वृद्धि कारक सूक्ष्म रस ~~है~~ क्योंकि मनुष्य में इसकी कमी को पूरा नहीं करता, इसीलिये यह सूक्ष्म रस अभी तक बाजार में सुलभ नहीं हुवा। Roben ने (१९५७ में)

इसे बन्दरों तथा मनुष्यों में से पृथक् करके ऐसे व्यक्तियों में प्रयोग करके कि जिनमें पिट्यूटरी मन्दता (Hypopituitarism) का रोग था लाभदायक पाया। १६५६ में इंग्लैण्ड की Medical Research कौंसिल ने मनुष्यों से पृथक् किये Growth Hormone का प्रयोग करके उसे न केवल Hypopituitarism के रोगियों में प्रत्युत बिना पिट्यूटरी रोग से ग्रस्त कृश व्यक्तियों में भी शरीर का वृद्धि कारक पाया है। जिससे पता लगता है कि भविष्य में यह सूक्ष्म रस Hypopituitarism के लिये बड़ा लाभदायक सिद्ध होगा। परन्तु क्योंकि मनुष्यों से ही यह मिल सकता है + अत: ज़ाहिर है कि यह स्वल्प मात्रा में ही हमें मिल सकेगा और इसकी चिकित्सा अधिक व्यय साध्य होगी।

(२) Adrenocorticotrophic Hormone या Corticotrophin (A.C.TH)
यों तो इस सूक्ष्म रस की उत्पत्ति होते रहने से वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि सक्रिय रहती एवं अपना कार्य करती रहती है। पर जब शरीर या मन पर किसी प्रकार का आघात आ पड़ता है तब नाड़ियों के द्वारा तथा Adrenaline की अधिक उत्पत्ति के द्वारा Thalamus और Hypothalamus उत्तेजित हो उठते हैं, उनकी उत्तेजना से Pituitary ग्रन्थि और उत्तेजित हो जाती है। उसकी उत्तेजना से उसमें से A.C.T.H. की उत्पत्ति और अधिक होती है और उसके रक्त द्वारा वृक्कोत्तरिय ग्रन्थि या Adrenal Cotrex में पहुंचने से उसमें से Aldosterone के सिवाय उसके शेष सूक्ष्म रस और अधिक मात्रा में उत्पन्न होने लगते हैं। उनके तीव्र धातु परिपाचक (Catalizers) होने से शरीर आये आघात का सामना कर लेता है। इस प्रकार इस ग्रन्थि के द्वारा वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि उत्तेजित होती है तथा उस की उत्तेजना से जब रक्त में Hydrocortisone सदृश तत्व (17-Hydroxycorticosterone) की मात्रा जो दिन में साधारणत: १०० सी०सी० रक्त में ५-२५ माइक्रोग्राम के लगभग रहती है, बढ़ जाती है। तब पिट्यूटरी ग्रेन्थि में से A C T H की निकासी स्वयमेव घट जाती है। इस प्रकार इन दोनों ग्रन्थियों का एक दूसरे पर नियामक प्रभाव होता है। इसीलिये वाह्य A C T H का प्रयोग बहुत दिन तक जारी रखने पर जब Adrenal Cortex से Hydrocortisone की उत्पत्ति अधिक होने लगती है तब पिट्यूटरी ग्रन्थि से A C T H की निकासी न्यून व न्यूनतर होती जाती है और फिर जब वाह्य A C T H का प्रयोग सहसा बन्द किया जाता है तब आभ्यन्तर A C T H के अभाव में या न्यूनता के कारण कुछ एक दुर्लक्षण हो उठते हैं।

(३) Gonadotrophic Hormones (या Gonadotrophin):- पिट्यूटरी ग्रन्थि के अग्रिम खण्ड में से प्रजनन ग्रन्थियों के पौषक सूक्ष्म रस भी उत्पन्न होते हैं। इनमें से एक को Prolan A. या Follicle Stimulating Hormone कहते हैं जिसके कारण स्त्री में उसकी Ovaries के अन्दर विद्यमान ग्रन्थियों या Graafian-

Follicles की समुचित वृद्धि होती है जिससे Ova की उत्पत्ति होती है तथा Ovaries से Oestrogen की ठीक ठीक उत्पत्ति होती है। पुरुष में इसके कारण उनके अण्डों में Germinal Epithelium की वृद्धि होती है जिससे वीर्य (Spermatozoa) की ठीक ठीक उत्पत्ति होती है ।

दूसरे को Prolan B या Luteinizing Hormone या Interstitial Cell-Stimulating Hormone कहते हैं । जो उपर्युक्त सूक्ष्मरस का सहायक होता है । इसके कारण स्त्री की Ovaries में Follicle से Ovum के निकल जाने के बाद वहां Corpus Luteum बन जाता है और वहां से एक नया सूक्ष्म रस Hormone जिसे Progesteron कहते हैं उत्पन्न होने लगता है । (मूत्र में यह Pregnanedol) के रूप में निकलता है) पुरुष में पिट्यूटरी के इस सूक्ष्म रस के कारण कोष्ठ में से अण्ड नीचे अण्ड कोषों में उतरते हैं तथा अण्डों में से उनके सूक्ष्म रस Testosterone की उत्पत्ति को प्रेरणा मिलती है ।(Testosterone मूत्र में Androsterone के रूप में निकलता है) ।

स्त्री में Oestrogens की उत्पत्ति Ovaries के अतिरिक्त Placenta तथा Adrenal Cortex से भी मध्यमायु काल में होती है तथा पिट्यूटरी के Gonadotrophic Hormone के नियंत्रण में रहती है । पुरुष में Androgens की उत्पत्ति कि जिनके कारण उसमें पुरुष सूचक लक्षण होते हैं अण्डों तथा Adrenal Cortex से होती है । बाजार में सुलभ Gonadotrophic Hormones पिट्यूटरी ग्रन्थि में से तय्यार नहीं किये जाते परन्तु क्योंकि गर्भिणी स्त्री में Placenta के Chorinnic Tissue से निकल कर उसके सीरम में यह आता है रहता है अतः गर्भिणी घोड़ी के सीरम में से इसे निकाला जाता है । यह पिट्यूटरी ग्रन्थि से निकले Gonadotrophic Hormones के समान ही होता है । इस तरह से बनाया हुआ सूक्ष्म रस पिट्यूटरी के दोनों सूक्ष्म रसों के सदृश ही होता है । इसे Serum Gonadotrophic Hormone. कहते हैं । यह Gestyl (Organon) Gonadyl (Roussel) Serogan (B.D.) Antostab (Boots) नामों से मिलता है । गर्भिणी स्त्री के मूत्र में उसके Placenta के Chorionic Tissues में से आया हुआ Gonadotrophic Hormone मुख्यतया Luteinizing Hormone होता है । अर्थात् स्त्री में यह Corpus Luteum तथा Progesterone की उत्पत्ति में प्रेरक होता है अर्थात् गर्भपात को रोकता है । पुरुष में यह अण्डों के Interstitial सेलों को उत्तेजित करके Testosterone की उत्पत्ति में प्रेरक होता है । यह Chorionic या

Urine Gonadotrophic Hormone बाजार में Antuitrin S (P.D.) Pregnyl (Organon) Prolan (Bayer) Physostab (Boots) Conan (B.D.) Atregone (Abbot) नामों से मिलता है।

(४) Thyrotrophic Hormone गल ग्रन्थि पोषक सूक्ष्म रस :-

पिट्यूटरी ग्रन्थि का यह सूक्ष्म रस गल ग्रन्थि (Thyroid) को उत्तेजित करके उसमें से उसके सूक्ष्म रसों को प्रवृत्त करने का कार्य करता है। इसके देने से उस ग्रन्थि में Radio Iodine को पकड़ने की शक्ति बढ़ती है एवं शरीर में धातु परिपक्व (Metabolism) की प्रक्रिया तीव्र होती है।

(५) Lactoganic Hormone या Prolactin :-

पिट्यूटरी के इस सूक्ष्म रस के कारण स्तन ग्रन्थियों की वृद्धि होती एवं दुग्ध की उत्पत्ति में सहायता मिलती है। परन्तु अभी तक चिकित्सा के लिये यह सूक्ष्म रस सुलभ नहीं हुआ है।

पिट्यूटरी ग्रन्थि के पश्चिम खण्ड (Posterior Lobe) से जो Neuroglial Ependymal, Pyramidal, Granular सेलों से बना हुआ है Pituitrin नामक सूक्ष्म रस उत्पन्न होता है जिसमें २ सूक्ष्म रस होते हैं। एक को Pitressin या Vasopressin कहते हैं। इससे रक्तवाहिनियों में रक्त भार (B.P.) बढ़ता है। आंतों की मांस पेशियों में तथा अन्य अनैच्छिक मांस पेशियों में भी संकोच बना रहता है तथा मूत्र की मात्रा नियंत्रित रहती है। (जिससे इसे Antidiuretic Hormone भी कहते हैं) दूसरे को Pitocin या Oxytocin कहते हैं जिसके कारण गर्भ युक्त गर्भाशय के मांस में संकोच उत्पन्न होता है। इस पिट्यूटरी ग्रन्थि की विकृति से होने वाले रोग को Dispituitarism या पिट्यूटरी रोग कहते हैं जो दो प्रकार का होता है। एक तो इस ग्रन्थि के किसी भाग के अति सक्रिय हो जाने से होता है, दूसरा इसके किसी भाग के अति निष्क्रिय हो जाने से होता है।

अग्रिम पिट्यूटरी प्राबल्य, अग्रिम पिट्यूटरी की सक्रियता :- Hyperpituitarism:

इस ग्रन्थि के अग्रिम खण्ड के Eosinophil सेल समूह में अर्बुद (Adenoma या कैन्सर) हो जाने से उसमें से होने वाले सूक्ष्म रसों की विशेषतः Growth Hormone की अधिक उत्पत्ति होती है जिससे शरीर में अति वृद्धि का लक्षण प्रकट हो जाता है।

Gigantism अति दीर्घता :-

अस्थियों के वृद्धि काल के समाप्त होने से अर्थात् उनके Epiphyses के जुड़ जाने से पहले बाल्यावस्था में ही इस ग्रन्थि में यह सक्रियता हो

जाय तो व्यक्ति की अस्थियों में इतनी वृद्धि होती है कि ६-१० वर्ष का बालक छः फुट का हो जाता है । उसके शरीर में स्थूलता नहीं होती । पुरुष या स्त्री सूचक लक्षणों की उत्पत्ति भी समय से पहले हो जाती है (Gonadotrophic Hormone की अधिकता वश) ।

Acromegaly -(Acro = प्रान्त भाग, Megale = वृद्धि) करपादातिवृद्धि यदि पिट्यूटरी ग्रन्थि में Growth Hormone की अधिकता २०-४० वर्ष की आयु में पहुंच कर हो जब कि अस्थियों की दीर्घता की प्रक्रिया समाप्त हो चुकती है तब कर, पाद, सिर आदि की अस्थियां आकार में बड़ी व मोटी हो जाती हैं तथा उनके ऊपर के मृदु अवयव भी स्थूल हो जाते हैं जिससे हाथ, पांव अधोहनु, नासा, गाल, अग्रकपाल आदि आकार में बड़े बड़े तथा इनकी त्वचा के नीचे का अवयव मोटा हो जाता है । जीभ, होंठ, नाक भी देखने में मोटे दीखते हैं । कण्ठ नाली के बढ़े हो जाने से आवाज भारी हो जाती है । त्वचा भी देखने में मोटी होती है । अंगुलियों के सिरे मोटे ~~इस रोग में~~ होते हैं । जवानी के लक्षण जल्दी आ जाते हैं । जननेन्द्रिय आकार में बढ़ी होती है । परन्तु कुछ काल बाद जब Basophil सैलों के दब जाने से उनका सूक्ष्मरस निकलना कम हो जाता है तब Adrenal Cortex से Androgens या Oestrogens की निकासी कम हो जाती है जिससे पुरुष में पुंस्त्वनाश तथा स्त्री में आर्तव नाश का लक्षण हो जाता है ।

हृदय, यकृत, आमाशय, फुफुस, आंत आदि आशय भी आकार में बड़े होते हैं । जिससे रक्तभार बढ़ा हुआ होता है । भूख अधिक लगती है तथा मल बन्ध अधिक रहता है । प्रारम्भ में Thyroid ग्रन्थि में वृद्धि हो जाने के कारण धात्वीय परिपक्व प्रक्रिया (Metabolism) तीव्र होती है जिससे खाण्ड को सहने (Tolerance) की शक्ति घटी हुई होती है तथा हृदय गति तीव्र होती है । यदि रोगी के सीरम में Inorganic Phosphorus की मात्रा बढ़ी हुई हो तो इन उपर्युक्त दोनों रोगों का निश्चय हो जाता है । यह रोग एक बार होकर बढ़ता ही जाता है । मृत्यु, हृदय के फेल होने से, मधुमेह से, या मूत्र विष संचार से या किसी संक्रामक ज्वर से होती है । यह रोग कष्ट साध्य है ।

चिकित्सा :-

यदि इस रोग के कारण Optic Chiasma पर अभी तक दबाव न पड़ा हो अर्थात् दृष्टि सम्बन्धी कोई उपद्रव न हो तो Pituitary Irrodiation या X-Ray चिकित्सा से लाभ हो सकता है । कहा जाता है कि Stilboestrol के ५ मिलि० मात्रा में प्रतिदिन देने से पिट्यूटरी ग्रन्थि के Eosinophil भाग में कमी आ जाती है अर्थात् उसका अर्बुद छोटा होने लगता है । इसलिये इस औषधि से लाभ हो सकता है । मधुमेह के उपद्रव के

लिये भोजन सम्बन्धी पथ्य तथा Insulin से लाभ हो सकता है ।

कुशिङ• का रोग :-(Cushing's Syndrome):-

पिट्यूटरी के अग्रिम खण्ड के Bosophil सेल समूह में अर्बुद (Adenoma) होने पर Adrenal Cortex में अति वृद्धि (Hyperplasia) होती है तथा उसमें से Glucocorticoids (Hydrocortisone) की अधिक उत्पत्ति होने से लक्षण प्रकट होते हैं । अर्थात् ऊपर कहे गये कुशिङ• के रोग (Cushing's Syndrome) के लक्षण होते हैं । पिट्यूटरी के रोग के कारण कुशिङ• का रोग हो तो रोगी के मूत्र में 17-Ketosteroids की मात्रा कम होती है । जबकि Adrenal Cortex के कारण यह रोग हो तो मूत्र में इनकी मात्रा अधिक होती है ।

शिर पर X-Ray चिकित्सा करने से या Radiotherapy से इसमें कई बार लाभ हो जाता है । अन्यथा Bilateral Adrenalectomy का शल्य कर्म करके बाद में Addison के रोग की तरह उसकी चिकित्सा जारी रखनी चाहिये ।

अग्रिम पिट्यूटरी नैर्बल्य, अग्रिम पिट्यूटरी ग्रन्थि की निष्क्रियता :- Hypopituitarism, Simmond's Disease :-

स्त्री में प्रसव के समय गर्भाशय में अति रक्त स्राव होने पर अग्रिम पिट्यूटरी ग्रन्थि की शिराओं (Veins) में (shock के कारण) Thrombosis के हो जाने से जब उसका रक्त संचार कम हो जाता या बन्द हो जाता है तब उसमें रक्त के अभाव में मृत्यु (Ischaemic Necrosis) (या infarction) की प्रक्रिया हो सकती है अर्थात् इसमें स्नायुतन्तु (Scar Tissue) छा जाता है । इसके Chromophobe सेल समूह में अर्बुद (Adenoma) के होने पर उसके दबाव से इसके दानेदार सेलों के निष्क्रिय हो जाने पर भी यह रोग होता है (पुरुषों में यही कारण होते हैं) । इस ग्रन्थि के क्षीण हो जाने से Gonads (प्रजनन ग्रन्थियाँ), गल ग्रन्थि (Thyroid) तथा वृक्कोपरीय ग्रन्थियों में भी लघुता (Atrophy) उत्पन्न हो जाती है । शरीर के सर्व आशय आकार में छोटे हो जाते हैं । (Acromegaly के विपरीत) ।

लक्षण :-

स्पष्ट है कि शरीर की वृद्धि या पोषण के कम हो जाने या बन्द हो जाने से इस रोग में कृशता, शुष्कता, निर्बलता के लक्षण आते जाते हैं । दूसरा स्त्री पुरुष सूचक लक्षण कम होते जाते हैं । तीसरा धात्वीय परिपक्व (Metabolism) की प्रक्रिया मन्द एवं मन्दतर होती जाती है । इस प्रकार इस रोग में प्रायः शरीर कृश होता जाता है । त्वचा, बाल, नख, दांत आदि सबका पोषण घटता जाता है । शरीर में अशक्ति बढ़ती जाती है । क्षुधा

नष्ट हो जाती है । चेहरे, कक्षा तथा गुप्त स्थान पर से बाल उड़ जाते हैं । पुंस्त्व शक्ति जाती रहती है । स्त्री में आर्तव नष्ट हो जाता है । त्वचा वृद्धों की तरह झुर्रीदार हो जाती है । तापमान नार्मल से नीचे होता है । हृदय गति मन्द होती है । B.M.R. कम होता है । रक्त भार गिरा हुआ होता है । रक्त में खाण्ड की मात्रा कम होती है । जननेन्द्रिय छोटी पड़ जाती है । मूत्र में 17-Ketosteroids की मात्रा घटी हुई होती है ।

कभी कभी इस रोग में Myxoedema के लक्षण होते हैं । परन्तु वे मूलत: Thyroid की मन्दता से न होके पहले Pituitary की मन्दता और फिर Thyroid की मन्दता से उत्पन्न होते हैं । इसलिये इस रोग में केवल Thyroid के प्रयोग से लाभ नहीं होता । इस रोग की चिकित्सा न हो तो १-२ वर्ष में रोगी के रक्त में खाण्ड की कमी हो जाने से होने वाली मूर्छा (Hypoglycaemic Coma) होकर मृत्यु हो सकती है ।

वृद्धि नाश :- Infantilism - Pituitary Infantilism :-

यदि अग्रिम पिट्यूटरी ग्रन्थि के Chromophobe सेल समूह में अर्बुद (Adenoma) छोटी आयु में हो जाय और उसके कारण Chromophil सेल समूह दब जाय तो बालक के वृद्धि कारक सूक्ष्म रस (Growth Hormone) के अभाव में शारीरिक वृद्धि नहीं होती । हो सकता है कि Chromophobe सेलों में से दानेदार सेलों (Granular Cells) की उत्पत्ति बड़ी मन्दता से हो रही हो । इससे भी बालक में वृद्धि नहीं होती ।

ऐसी अवस्था में जब पिट्यूटरी में लघुता (Atrophy) होती है तब शरीर की वृद्धि भी रुकी रहती है । अस्थियां दीर्घ नहीं होतीं । प्रजननेन्द्रियों में भी वृद्धि नहीं होती । कन्या में स्तन ग्रन्थियों तथा गर्भाशय में वृद्धि नहीं होती आर्तव प्रकट नहीं होता । बालक में जननेन्द्रिय तथा अण्ड छोटे ही रह जाते हैं । उसकी जननेन्द्रिय में हर्ष नहीं होता । वीर्य (Spermatozoa) की उत्पत्ति नहीं होती । गुप्त स्थान में तथा कक्षा में बाल नहीं आते । यह रोग बहुधा बालकों में होता है । कन्याओं में कम होता है । इस रोग में शारीरिक वृद्धि नहीं होती पर मानसिक वृद्धि नार्मल होती है । शरीर पतला ही रहता है । पहले पहल Loraine (१८७१) ने इस रोग की ओर हमारा ध्यान खींचा । फिर Levi (१९०८) ने यह बताया कि यह रोग Pituitary ग्रन्थि की मन्दता से होता है । इसलिये इस रोग को Levi-Loraine Syndrome भी कहते हैं ।

Dwarfism - वामनत्व :-

अति दीर्घता या Gigantism के विपरीत Hypopituitarism के कारण यदि बालकपन में अस्थियों की वृद्धि न हो और कद नार्मल से बहुत कम रह जाय तो उसे Dwarfism का रोग कहते हैं । इसमें जननेन्द्रियाँ

पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता, केवल अस्थियों की वृद्धि नहीं होती ।

Frohlich's Type of Infantilism. या Dystrophia Adiposogenitalis

स्थूलता युक्त वृद्धि नाश :-

बालक में युवावस्था से पहले ही पिट्यूटरी की अग्रिम खण्ड क्षीण हो जाय या किसी ग्रन्थि (Craniopharyngioma) के कारण दब जाय या इसमें Adenoma हो जाय तो शरीर की तथा जननेन्द्रियों की वृद्धि के रुकने के साथ साथ उसके जघन स्थान (Hips) कोष्ठ, कन्धों, ऊर्ध्व बाहुओं, ऊर्ध्व जंघाओं, स्तन प्रदेशों पर अधिक वसा भी छा जाती है । अग्र बाहु, अधो जंघायें पतली ही रहती हैं । मानसिक अवस्था नार्मल होती है । इस प्रकार इस रोग में शरीर बालकों का सा रहता तथा साथ ही पतला न रह के स्थूलता युक्त होता है । इसे Frohlich's Type of Infantilism कहते हैं ।

पिट्यूटरी नैबल्य या Hypopituitarism की चिकित्सा :-

इस ग्रन्थि में विद्यमान अर्बुद के लिये Radiotherapy से लाभ हो सकता है । इसके अतिरिक्त पिट्यूटरी ग्रन्थि के कृत्रिम सूक्ष्म रसों का प्रयोग करने (Replacement Theropy) से यह रोग अच्छा हो जाता है । परन्तु पशुओं की ग्रन्थि से बनाया Growth Hormone मनुष्य में लाभ दायक सिद्ध नहीं हुआ है तथा गर्भिणी घोड़ी से निकाला हुआ Serum Gonadotrophin तथा गर्भिणी स्त्री के मूत्र से निकाला Urine Gonadotrophin भी विशेष लाभदायक सिद्ध नहीं हुआ । पिट्यूटरी ग्रन्थि से बनाया Thyrotrophin मिलता है पर वह एक तो अधिक महंगा है, दूसरा केवल इंजेक्शन से ही दिया जा सकता है अतः दीर्घ चिकित्सा में उससे लाभ नहीं उठाया जा सकता ।

इस अवस्था में अभी तक तो यही किया जा सकता है कि पिट्यूटरी ग्रन्थि से तैयार किया हुआ Corticotrophin (A C T H) जो भी सुलभ है उसी का प्रयोग किया जाय । परन्तु इसे केवल इंजेक्शन से ही दिया जा सकता है, अतः Hypopituitarism का रोगी जिसे दीर्घ चिकित्सा की अपेक्षा है इससे भी लाभ नहीं उठा सकता । ऐसी अवस्था में एक यही उपाय रह जाता है कि बाजार में सुलभ Adrenocortex, Thyroid तथा Gonads के सूक्ष्म रसों (Hormones) को मुख द्वारा बहुत दिनों जारी रखा जाय ।

सबसे पहले Adrenal Cortex की न्यूनता को पूर्ण करना चाहिये । इसके लिये Cortisone Acetate १०-५० मिलि० मात्रा में प्रतिदिन दे देना चाहिये । इसके प्रयोग से शरीर तथा मन दोनों का पोषण बढ़ जाता है, मानसिक मन्दता जाती रहती है, पाण्डुता का लक्षण शान्त होने लगता है, रक्त भार बढ़ता है, मूत्र बढ़ती है तथा बोझ बढ़ने लगता है । यदि Hypothyroidism या Myxoedema के लक्षण हों तो

ऊपर की औषधि के १० दिन बाद 1-Thyroxine Sodium को •१ मिलि० मात्रा में देना आरम्भ कर देना चाहिये। इसे बाद में देना चाहिये। Cortisone से पहले इसका प्रयोग करने से अर्थात् Adrenal Cortex की मन्दता में इसका प्रयोग करने से Addison के रोग के हो जाने का भय रहता है।

स्त्री पुरुष सूचक चिन्हों के लुप्त हो जाने सम्बन्धी लक्षणों की शान्ति के लिये पुरुष में या बालक में १०-२५ मिलि० मात्रा में Methyl Testosterone का प्रतिदिन प्रयोग करना चाहिये अथवा देर तक अपना प्रभाव रखने वाले Testosterone Ester का Isobutyrate या Phenylacetate ५०-१०० मिलि० का मास में १ बार मांस द्वारा प्रयोग करते रहना चाहिये। स्त्री में Oestrogen की कमी को पूरा करने के लिये Dienoestrol (Neo-dinestrol) को १-२ मिलि० मात्रा में प्रतिदिन देना चाहिये। इस चिकित्सा को जीवन पर्यन्त कायम रखना पड़ता है। जब कोई रोग हो जाय या कोई शल्य कर्म करना आवश्यक हो जाय तब Cortisone Acetate की मात्रा बढ़ा देनी चाहिये।

हस्ती मेह :- Diabetes Insipidus :-

पिट्यूटरी ग्रन्थि के पश्चिम भाग (Posterior Lobe या Pars Nervosa) के Extract के देने से एक तो गर्भाशय संकोचक (Oxytocic) प्रभाव होता है जिसका कारण भूत सूक्ष्म रस (Hormone) (oxytocin) Pitocin के रूप में पृथक बाजार में मिलता है। इसके अतिरिक्त उसमें एक दूसरा सूक्ष्म रस भी है जो रक्त के द्वारा वृक्कों में पहुंच कर उनकी मूत्र स्राविणियों के पिछले भाग में विद्यमान Loops of Henle की झिल्ली (Epithelium) पर प्रभाव करके मूत्र में से बहुत से जल भाग को पुनर्विलीन कर लेने का कार्य करता है। एवं इस प्रकार इसके मूत्र विरोधी होने से इसे Antidiuretic Hormone कहा जाता है। (Post. pituitary hormone में एक भाग — जिसे Vasopressin कहते हैं जो रक्तनालियों में) यह रक्त भार वर्धक भी होता है तथा आन्त्रिक मांस पेशियों की सहज शक्ति का भी वर्धक होता है। इसे Pitressin भी कहा जाता है।

कारण :-

Hypothalamus में विद्यमान Supraoptic Nucleus इस पश्चिम खण्ड का नियामक होता है। उसमें या उसे इस खण्ड के साथ जोड़ने वाले संयोजक भाग अर्थात् Hypothalamo-Hypophysial मार्ग (Tract of Nerve Fibres) में अर्बुद (Adenoma, Sarcoma, Secondary Cancer) हो जाय या वहां Inter Peduncular Fossa में फिरंग जनित या क्षय जनित Meningitis हो जाय या सिर पर भारी चोट लगने से (Base of the skull में fracture से) यह भाग क्षत हो जाय तो मूत्र शोषक सूक्ष्म रस या Antidiurelic Hormone के कम उत्पन्न होने से अति मेह या हस्तिमेह का रोग हो जाता है।

साधारणतः यह रोग धीरे धीरे आरम्भ होता और

चिर काल तक रहता है । मूत्र की मात्रा अति अधिक बढ़ जाती है । ७-८ लिटर से भी ज्यादा हो जाती है । उसकी आपेक्षिक गुरुता १.००६ के लगभग होती है । मूत्र के अधिक आने से पिपासा अधिक बढ़ जाती है, कृशता बढ़ती जाती है, त्वचा शुष्क रहती है, स्वेद नष्ट हो जाता है, मलबन्ध रहता है । मधुमेह तथा जीर्ण वृक्क रोग से इसका भेद करना चाहिये जो सुगम है ।

रोग मन्द रुप में हो तो अधिक जल के पीते रहने से विशेष दुर्लक्षण नहीं होते । रोगी को चाहिये कि वह प्रोटीन भोजन कम ले । लवण का सेवन भी कम करे । Vasopressin Tannate (Pitressin Tannate) १ मिलि० (In-Oil) को मांस द्वारा सायंकाल प्रति तीसरे दिन सदा देते रहने से रोग दबा रहता है । Pituitrin देना हो तो उसे १ सी०सी० मात्रा में मांस द्वारा प्रतिदिन दिन में २ बार देना पड़ता है ।

स्त्रीपुरुष लिंग विनिर्णय Sex Determination:-

अमुक व्यक्ति स्त्री है या पुरुष इसका निर्णय लिंगी ग्रन्थियों को देख कर किया जाता है क्योंकि स्त्री का स्त्रीत्व उसकी Ovaries पर तथा पुरुष का पुरुषत्व उसकी अण्ड ग्रन्थियोंपर निर्भर है। अब १९५६ से सैलों की मींगियों (Cell Nuclei)की सूक्ष्म परीक्षा के द्वारा व्यक्ति के लिंग का निर्णय किया जाने लगा है। एतदर्थ मुख के अन्दर की श्लेष्म कला के सैलों का लेना सुगम है। स्त्री से लिये सैलों के(Nuclei) के प्रान्त भाग में एक गहरा रंग पकड़े हुए बिन्दु दिखाई पड़ता है जो पुरुष से लिये गयेCell Nucleiमें नहीं होता। इसे Sex Chranatin कहते हैं। स्त्री के ६ प्र०श०Leucocytes में Drum Stick की तरह की एक रचना भी पाई जाती है जो पुरुष के Leucocytes में नहीं पाई जाती। इसके अतिरिक्त स्त्री से लिये Cell Nuclei को Electron Microscope. द्वारा देखने से उन में से प्रत्येक में ४४ Autosomes अर्थात् २२ जोड़ियां x x आकृति की होती हैं। और २ x(x x)से मिलते जुलते Sex Chromosomes होते हैं। नर से लिये सैलों के Nuclei में ४४ Autosomes अर्थात् २२ जोड़ियां x x आकृति की तथा एक x और एक Y के आकार से मिलते जुलता Sex Chromosome होता है तथा इनमें Nuclear Sex Chromatin नहीं होता अर्थात् स्वस्थ स्त्री Chromatin Positive तथा स्वस्थ पुरुष Chromatin Negative होता है। Male Hypogonadism में जब अण्ड ग्रन्थियां बहुत छोटी होती हैं तथा कभी कभी Gynaecomastia भी होता है तब उनमें स्त्री के समान Nuclear Sex Chromatin मिलता है तथा उनके Cell Nuclei में एक X Sex Chromosome के स्थान दो x(x x) तथा एक Y Sex Chromosome पाया जाता है। Female Hypogonadism में जब व्यक्ति देखने में स्त्री समान होता तथा उनमें गर्भाशय और Ovaries बहुत क्षुद्र से रुप में होते हैं उनके Cell Nuclei में Sex Chromatin नहीं मिलता तथा उनमें दो X(X X)Sex Chromosomes के स्थान पर एक X Chromosome ही मिलता है। इस प्रकार लिंग विनिर्णय के लिये Sell Nuclei में Sex Chromosomes की परीक्षा एक बड़ी उपयोगी परीक्षा है। व्यक्ति में जो Sex ज़ाहिर (Afferent) हो उसमें और Nuclear Sex में मेल न हो तो Ambisexuality का अनुमान करना चाहिये तथा Pelvic Surgery के द्वारा Gonads को निकाल उनकी Biopsy करनी चाहिये। एक स्त्री सदृश व्यक्ति में अविकसित अण्ड या Testicle वस्ति प्रदेश में प्रायः मिलता है जिससे इसे Testicular Feminising Syndrome कहते हैं तथा व्यक्ति को Male Pseudohermaphrodite कहते हैं। बहुधा ये व्यक्ति Unilateral या Bilateral Inguinal Hernia की शिकायत लेके डाक्टर के पास आते हैं। शल्य कर्म करने पर इनमें Gonads मिलते हैं। पर Gonads अस्थ में हों तो उनमें Neoplasm या अर्बुद होने की आशंका रहती है। अर्थात् इन रोगियों में चाहे वे Female या Male Pseudohermaphrodite हों नवयुवा के बाद अर्बुद अर्थात् Seminoma या Dysgerminoma या Teratocarcinoma

--: १००१ :--

के होने का भय रहता है। अतः शरीर की पूर्ण अभिवृद्धि होने के बाद इन्हें निकाल देना ही उचित प्रतीत होता है। इनकी कमी को पूर्ण करने के लिये अर्थात् स्त्रीत्व या पुरुषत्व के बाह्य लक्षणों को ~~बनाये~~ बनाये रखने के लिये बाद में कृत्रिम Hormones का सेवन जारी रखा जाता है।

बाहुओं को दोनों ओर फैलाने पर उनकी चौड़ाई (Span) आदमी की ऊंचाई से अधिक होती है।

लिंगी ग्रन्थियाँ (Sex Glands) के रोग :-

(१) पुल्लिंगी ग्रन्थि नैर्बल्य, अण्ड ग्रन्थि नैर्बल्य :- Male Hypogonadism:-

पुरुष की अण्ड ग्रन्थियों की वक्राकृति नालियों (Seminiferous या Convoluted Tubes) के अन्दर के सैलों (Spermatocytes) से वीर्य कण (Spermatozoa) उत्पन्न होते हैं। वीर्य एक अलव्युमिन प्रकृति का द्रव है जिसमें विद्यमान इस एक वीर्य कण के स्त्री की डिम्ब ग्रन्थि (Ovary) में से निकले एक अण्ड या Ovum के साथ मिलने से सन्तान की उत्पत्ति होती है। अण्ड ग्रन्थि में से इस वीर्य द्रव के अतिरिक्त उसके स्नायुजान्तु सम्बन्धी सैलों (Interstitial Cells) में से एक और आभ्यन्तर सूक्ष्म रस उत्पन्न होता है जो रक्त द्वारा सर्व शरीर में फैल कर पुरुषोचित लक्षणों और गुणों का उत्पादक होता है। इसे जो एक Sterone प्रकृति का पदार्थ है Testosterone कहते हैं। इसकी उत्पत्ति पर पिट्यूटरी ग्रन्थि के Luteinising Hormone का नियंत्रण रहता है।

१० वर्ष की आयु में बालक के अन्दर इस अण्ड सम्बन्धी सूक्ष्म रस की उत्पत्ति होने लगती तथा इसी के कारण उसमें युवा सुलभ लक्षण प्रकट होने लगते हैं। अर्थात् उसमें जननेन्द्रिय, अण्ड, प्रोस्टेट आदि की वृद्धि होने लगती है। गुप्त स्थान पर तथा मुख पर बाल आने लगते हैं। आवाज भारी होने लगती है। मांस पेशियों में नाइट्रोजन, पोटासियम, फौस्फेट्स आदि द्रव्यों के अधिक अधिक मात्रा में संचित होने से आकार में पुरुष सदृश वृद्धि होने लगती है। (Protein Anabolism की प्रक्रिया होती है)।

नपुंसकता :- Eunuchoidism:-

(१) सहज :- (Primary)

प्रारम्भ से ही अण्ड ग्रन्थियों की उचित वृद्धि न हो ~~या वे ऊपर से नीचे न उतरें~~ तो पुरुष में पुरुषोचित लक्षणों की उत्पत्ति नहीं हो पाती। जननेन्द्रिय, अण्ड कोष, प्रोस्टेट आदि की वृद्धि नहीं होती। शरीर की मांस पेशियों में भी उचित वृद्धि न होने से स्थूलता नहीं होती तथा पुरुषोचित शारीरिक शक्ति भी नहीं आती। गुप्त स्थान, कक्षा तथा मुख पर बाल नहीं आते। टांगें लम्बी होतीं पर शरीर स्त्रियों का सा दीखता है। आवाज पतली रहती है। मन में कामुकता या मैथुनेच्छा या स्वाभाविक उग्रता का भाव नहीं होता। मूत्र की परीक्षा करने से उसमें 17-Ketosteroids की मात्रा बहुत कम मिलती है।

(२) आगन्तु :- (Secondary):-

युवावस्था के उपरान्त चोट लगने या रोग के कारण (जैसे

Mumps में) दोनों अण्ड ग्रन्थियां क्षीण हो जांय तो भी यह रोग हो सकता है तब जननेन्द्रिय आकार में छोटी हो जाती है। पुंस्त्व शक्ति जाती रहती है। मन में उत्साह एवं उमंग के भाव नहीं रहते। स्तन प्रदेश, जघन प्रदेश और ऊर्ध्व जंघाओं में चर्बी की मात्रा बढ़ जाती है।

वीर्य नैर्बल्य :- Male Infertility - Oligospermia - Impotence.

मैथुन के समय पुरुष की जननेन्द्रिय में से ४½ सी०सी० के लगभग वीर्य निकलता है। इसके प्रत्येक सी०सी० में १० करोड़ के लगभग शुक्रकण होते हैं। यदि ये ६ करोड़ से कम हों तो वीर्य की निर्बलता के कारण सन्तान नहीं होती। अण्ड ग्रन्थियों की Seminiferous Tubes में जितना ही क्षीणता (Atrophy) बढ़ती जाती है उतना ही सन्तान होने की सम्भावना कम होती है। इस अवस्था को Oligospermia कहते हैं। इसे पुंस्त्व हीनता Impotence भी कहते हैं। इसे अण्ड नैर्बल्य जनित पुंस्त्व हीनता कहना अधिक ठीक होगा। बहुधा जो पुंस्त्व हीनता का रोग मिलता है वह मानसिक नैर्बल्य जनित होता है। उसे Sexual Neurosis कहा जाता है, तथा वह चिन्ता रोग या Anxiety Neurosis का एक लक्षण होता है। उसकी चिकित्सा भी मानस रोगों के समान की जाती है।

शुक्र समाप्ति जनित मानस रोग :- The Male Climacteric :-

स्त्री में पाये जाने वाले आर्तव समाप्ति जनित मानस रोग की तरह पुरुष में बहुत कम यह रोग पाया जाता है। अर्थात् ५० वर्ष की आयु के लगभग जब शरीर में Androgen की मात्रा कम हो जाती है तब पुरुष में भी कभी कभी घबराहट, उन्निद्रता आदि के कुछ मानसिक नैर्बल्य सूचक लक्षण हो जाते हैं।

अण्ड ग्रन्थि नैर्बल्य चिकित्सा :-

Hypogonadism की चिकित्सा :-

Testosterone के प्रयोग से अण्ड ग्रन्थि नैर्बल्य जनित उपर्युक्त रोगों में लाभ हो जाता है। इस चिकित्सा को चिरकाल तक जारी रखना पड़ता है। नपुंसकता (Eunuchoidism) तथा शुक्र समाप्ति जनित मानस रोग (Male Climacteric) में यह विशेष लाभदायक है। यद्यपि वीर्य नैर्बल्य, प्रोस्टेट ग्रन्थि वृद्धि (Prostate Enlargement), पुरुष में स्तन वृद्धि (Gynecomastia) में भी इसका प्रयोग कभी कभी लाभ दायक पाया जाता है।

इसके कुछ एक उपयोगी प्रयोग :-

(१) Testosterone Propionate (Perandren ५-१०-२५-५०-१०० मिलि० १ सी०सी० तेल में) १०-१०० मिलि० मात्रा में एक दिन छोड़ के मांस द्वारा दे सकते हैं)।

(२) Testovirondepot ५०-१००-२५० मिलि० १ सी०सी० तेल में ।

(३) Testosterone Cyclopentyl Propionate (Depot Testosterone तेल में) १००-२०० मिलि० मात्रा में मांस द्वारा प्रति सप्ताह देते हैं । ५०० मिलि० मात्रा में मांस द्वारा प्रति मास देते हैं ।

(४) Testosterone Oenanthate(Delatestryl,Primoteston Depot) तेल १ सी० सी० में २००-४०० मिलि० । २००-४०० मिलि० मात्रा १ मास में १ बार मांस द्वारा देते हैं ।

(५) Methyl Testosterone-१० मिलि० दैनिक मात्रा में मुख द्वारा प्रतिदिन दिया जाता है ।

(६) Fluoxymesterone (Ora-Testryl, Ultandren,Halotestin) २-१० मिलि० दैनिक मात्रा में मुख द्वारा दिया जाता है । (२ मिलि० गोलियां मिलती हैं) ।

(७) Testosterone Pellets ७५-१०० मिलि० प्रत्येक । ऐसे ४-८ Pellets को त्वचा के नीचे प्रति छः मास में १ बार रख देते हैं ।

वीर्य नैर्बल्य-(Infertility)के लिये भी पुरुष को चाहिये वह Methyl Testosterone को १० मिलि० मात्रा में स्त्री के आर्तव चक्र के छटे दिन से लेकर १६ वें दिन तक लेता रहे और इसी काल में स्त्री सम्बन्ध करे । क्योंकि इसी समय के अन्दर अधिकतः Ovulation की प्रक्रिया होती है ४-५ मास तक इसी प्रकार हर मास इस औषधि का सेवन करते रहने से इसी काल में या इसके बन्द कर देने के बाद भी सन्तान होने की आशा की जा सकती है । अथवा Testosterone को ७५ मिलि० मात्रा में सप्ताह में २ बार मांस द्वारा ३-४ मास तक लेते रहने से यह निर्बलता एवं शिकायत दूर हो सकती है ।

इस औषधि के कुछ ऐसे प्रयोग भी बनाये गये हैं जो अण्ड ग्रन्थि के उत्तेजक न होके शरीर में मांस पेशियों को बढ़ाने व उसे पुष्ट करने (Protein Anabolism) का कार्य विशेष रूप से करते हैं । अधिक पतले स्त्री पुरुषों के लिये बड़े उपयोगी हैं । उदाहरणतः Norethandrolone(Nilevar) १० मिलि० गोलियों के मुख द्वारा दिन में १-२ बार लेते रहने से या Stanolone (Neodrol) के ५० मिलि० मात्रा में सप्ताह में १-२ बार मुख से लेते से या Methandrostenelone (Dianabol) के ५ मिलि० मात्रा में या Nandrolone Phenyl Propionate(Durabolin) के २५ मिलि० मात्रा में सप्ताह में १ बार मांस द्वारा लेते रहने से या Oxymetholone (Anadrol) के २.५ मात्रा में दिन में २-३ बार लेने से यह लाभ होता है, ऐसा कहा जाता है ।

(२) स्त्री लिंगी ग्रन्थि नैर्बल्य, डिम्ब ग्रन्थि नैर्बल्य :-Female Hypogonadism:-

डिम्ब ग्रन्थि के सूक्ष्म रस :- (Ovarian Hormones):-

स्त्री की ८-१० वर्ष की आयु में डिम्ब ग्रन्थियां (Ovaries) सक्रिय होने लगती हैं अर्थात् पिट्यूटरी ग्रन्थि के सूक्ष्म रसों (Gonadotrophic Hormones) (Follicle stimulating hormone) की प्रेरणा से डिम्ब ग्रन्थियों के अन्दर की छोटी ग्रन्थियों-कि जिनका पता पहले पहल Graaf (१६६२) ने लगाया था इसलिये जिन्हें ग्राफ की ग्रन्थियां (Graafian Follicles) कहते हैं-का आकार बढ़ने लगता है तथा उनसे Oestrone (Follicular Hormone) की उत्पत्ति होने लगती है (इसके कारण स्त्री में पुरुष संग की एक गर्मी उत्पन्न होती है इसीलिये इसे यह नाम दिया गया तथा इसे पहले पहल Doisy ने १९२६ में पृथक् करके दिखाया था) इसकी उत्पत्ति के साथ साथ स्त्री के शरीर तथा मन में युवावस्था सूचक परिवर्तन होने लगते हैं अर्थात् चूचुक तथा उसके आसपास श्यामवर्ण आ जाता है। भगोष्ठों तथा योनिमार्ग से ऊपर के उभार (Monsveneris) पर तथा कक्षा में बाल आने लगते हैं। इन्हीं स्थानों पर तथा ऊर्ध्व जंघाओं और कोष्ठ पर फैट की मात्रा बढ़ने लगती है। इसके बाद १२ से १४ वर्ष के लगभग किसी समय स्त्री में आर्तव भी प्रारम्भ हो जाते हैं। प्रारम्भ में ये यथार्थ रूप में नहीं होते अर्थात् प्रारम्भ में इनके बाद डिम्ब ग्रन्थि से बीज या Ovum की उत्पत्ति (Ovulation) की प्रक्रिया नहीं होती परन्तु फिर १४ से १६ वर्ष की आयु में किसी समय आर्तव के बाद बीजों (Ova) की उत्पत्ति की प्रक्रिया भी नियमित रूप से आरम्भ हो जाती है। स्त्री की युवावस्था में होने वाले ये परिवर्तन डिम्ब ग्रन्थियों की स्वस्थता पर अर्थात् उनसे होने वाले Oestrone नामक सूक्ष्म रस (Female Sex Hormone) के ऊपर निर्भर हैं।

इस आयु से लेकर लगभग ४५,५० वर्ष की आयु तक स्त्री में २८ दिन के आर्तव चक्रों का एक चक्र चलता रहता है। चार दिन के लगभग आर्तव रहता है और उसके २४ दिन बाद के मिलाकर कुल २८ दिन के चक्र के बाद उनतीसवें दिन फिर दूसरा आर्तव आरम्भ हो जाता है। प्रत्येक आर्तव चक्र के आरम्भ होने के ४ दिन बाद पिट्यूटरी ग्रन्थि के Gonadotrophic Hormones (Follicle stimulating) की प्रेरणा से डिम्ब ग्रन्थि (Ovary) में उसकी एक ग्राफ की ग्रन्थि आकार में बड़ी होने लगती है। जितना यह बड़ी होती जाती है उतना ही इसमें से सूक्ष्म रस की उत्पत्ति अधिक अधिक होने लगती है। तथा ग्रन्थि में बीज (Ovum) बढ़ना शुरू हो जाता है। इस प्रकार सूक्ष्म रस की वृद्धि के साथ साथ गर्भाशय की झिल्ली या आभ्यन्तर कला (Endometrium) में भी स्थूलता आने लगती है। उसके वहिस्तर (Superficial या Functional भाग) तथा उसके आभ्यन्तर स्तर (Basal Layer) दोनों मोटे हो जाते हैं। इस प्रकार उसकी वहिस्तर ही आर्तव चक्र के १४ वें दिन तक ३½ मिलिमीटर मोटी हो जाती है। गर्भाशय की झिल्ली या आभ्यन्तर कला की इस स्थूलता को देखते हुए ही आर्तव चक्र के पहले १४ दिनों को आर्तव चक्र का वृद्धिकारक भाग (Proliferative Phqse of Menstrual-

Cycle) कहते हैं । आर्तव चक्र के १३-१४ वें दिन के लगभग डिम्ब ग्रन्थि में बढ़ रही ग्राफ की ग्रन्थि पूर्ण परिणत हो जाती है और डिम्ब ग्रन्थि के पृष्ठ पर फट जाती है जिससे उसमें से पका हुआ बीज (Ovum) निकल कर Peritoneum में चला जाता और वहां से गर्भाशय प्रणाली (Follopian Tube) में प्रवेश कर जाता है और फिर वह वहां से गर्भाशय में चला जाता है। डिम्ब ग्रन्थि (Ovary) में से इस बीज के निकल जाने से वहां खाली हुए स्थान में पीले रंग के वसा से भरे हुए सैल आ जाते हैं जिनसे वहां एक " पीत वर्ण पिण्ड " बन जाता है जिसे Corpus Luteum कहते हैं । इसमें से एक नया सूक्ष्म रस निकलने लगता है जिसके प्रभाव से गर्भाशय के अन्दर की स्थूल हुई झिल्ली (Endometrium) में विद्यमान स्रावी ग्रन्थियों और सूक्ष्म रक्तवाहिनियों में विशेष वृद्धि होने लगती है जिससे यह झिल्ली अधिक स्रावी और पोषक रस को अधिक मात्रा में पहुंचाने वाली बन जाती है अर्थात् वह झिल्ली गर्भावस्था में जैसी होती है वैसी हो जाती है । इसीलिये आर्तव चक्र के पिछले १४ दिनों के भाग को आर्तव का स्रावी भाग (Secretory Phase of the Menstruation Cycle) कहते हैं । डिम्ब ग्रन्थि में उत्पन्न हुए पीत वर्ण पिण्ड या Corpus Luteum से उत्पन्न होने वाले इस सूक्ष्म रस को गर्भ स्थिति के लिये सहायक या प्रवर्तक होने से Progesterone कहते हैं। इस प्रकार आर्तव चक्र के प्रथम भाग में Aestrone की उत्पत्ति विशेष होती, दूसरे भाग में मन्द रूप में होती है Progesterone की उत्पत्ति पिछले भाग में ही होती है । अब यदि आर्तव चक्र के १२ से १६ वें दिन के लगभग जब कि डिम्ब ग्रन्थि से बीजोत्पत्ति (Ovulation) की प्रक्रिया होती है मैथुन होने से यह बीज गर्भित हो जाय तो यह बीज २३-२४ वें दिन के लगभग गर्भाशय की इस बढ़ी हुई झिल्ली में स्थित हो जाता है । तब इसके बाहर के खोल या Chorion से भी एक सूक्ष्म रस जो Progesterone का ही सहायक होता है उत्पन्न होने लगता है । ये सूक्ष्म रस गर्भाशय को स्थित रखने तथा उसे शान्त अवस्था में रखने का कार्य करते हैं ।

परन्तु यदि डिम्ब ग्रन्थि से गर्भाशय की ओर गया बीज गर्भित नहीं होता तो वह मर जाता है । साथ ही Corpus Luteum भी क्षीण हो जाता है तथा गर्भाशय की मोटी हुई झिल्ली (Endometrium) भी क्षीण होकर झड़ने लगती है जिससे उसमें रक्त स्राव होने लगता है मानों Ovum की मृत्यु पर गर्भाशय रुदन करता हो । इस प्रकार रक्त स्राव के साथ गर्भाशय की झिल्ली (Endometrium) का एक बड़ा भाग (Functional Layer सारा तथा Deeper Layer या Spongy Zone का उथला भाग) रक्त के साथ गर्भाशय से बाहर निकल जाते हैं । इसे ही आर्तव कहते हैं ।

इसके बाद फिर गर्भाशय के अन्दर नई झिल्ली बन जाती है।

Primary

सहज आर्तव नाश :- Amenorrhoea :-

Ovarian Hypoplasia या डिम्ब ग्रन्थियों के विकसित न होने के कारण हो तो एक स्त्री में १७ वर्ष की आयु के हो जाने पर भी आर्तव नहीं होता । परन्तु यदि वाह्य जननेन्द्रिय तथा युवा सुलभ लक्षण स्त्री में हों तो आशा करनी चाहिये कि आर्तव होने लगेंगे । ऐसी अवस्था में मूत्र में Gonadotropins. की परीक्षा करनी चाहिये । साधारणतः इनकी मात्रा १०-५० Mouse Units हुआ करती है । यदि पिट्यूटरी ग्रन्थि के रोग के कारण अर्थात् Gonadotrophic Hormones की न्यूनता से डिम्ब ग्रन्थियों में विकास न हुआ हो तो दिन भर के मूत्र में इनकी मात्रा ५ यूनिट्स से कम होती है । यदि दिन भर के मूत्र में इनकी मात्रा ७५ यूनिट्स से अधिक हो तो समझना चाहिये कि डिम्ब ग्रन्थियों में ही उचित वृद्धि नहीं हो पाई है । यदि स्त्री में युवा सुलभ लक्षण भी प्रकट न हुए हों तो डिम्ब ग्रन्थि नैर्बल्य का निश्चय करके स्त्री सुलभ सूक्ष्म रस अर्थात् Oestrogen औषधि का प्रयोग करना चाहिये ।

आगन्तु आर्तव नाश :- Secondary Amenorrhoea:-

आर्तव प्रारम्भ होने के बाद फिर निष्कारण बन्द हो गया हो तो प्रजनन सम्बन्धी जिस अंग की विकृति से ऐसा हुआ हो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये । उनमें से कहां पर विकार है, यह जानने के लिये रुग्णा को Progesterone १०-२५ मिलि० मात्रा में ५ दिन तक मांस द्वारा देना चाहिये या Hydroxyprogesterone Caproate(Delalutin)१२५-२५० मिलि० मांस द्वारा एक दिन दे देना चाहिये । या Ethisterone ५०-१०० मिलि० मात्रा में मुख द्वारा ५ दिन दे देना चाहिये । अब इन औषधियों के देने के २-४ दिन बाद या Hydroxyprogesterone के देने के १० दिन तक गर्भाशय से रक्त स्राव हो जाय तो समझना चाहिये कि क्योंकि केवल इस औषधि से प्रभाव पड़ गया है अतः डिम्ब ग्रन्थियों से Oesterone की उत्पत्ति हो रही है, परन्तु Progesterone की उत्पत्ति ठीक नहीं हो रही । ऐसी अवस्था में हर महीने के अन्तिम ५ दिन Progesterone को १० मिलि० मात्रा में मांस द्वारा या Ethisterone को ६०-१०० मिलि० मात्रा में मुख द्वारा इसी प्रकार ५ दिन देदेना चाहिये । यदि रक्त स्राव न हो तो स्पष्ट है कि Oestrone की उत्पत्ति नहीं हो रही है । ऐसी अवस्था में Oestrone का प्रयोग करना चाहिये अर्थात् Diethylstilboestrol को १ मिलि० मात्रा में प्रतिदिन १० दिन तक देना चाहिये या Ethinyloestradiol को ·१ मिलि० मात्रा में प्रतिदिन १० दिन दे देना चाहिये । इसके बन्द करने के ४ दिन तक गर्भाशय से रक्त स्राव हो जाय तो स्पष्ट है कि गर्भाशय की झिल्ली (Endome-Trium) तो ठीक बनी हुई है पर डिम्ब ग्रन्थियों से Oestrone की

उत्पत्ति नहीं हो रही । इसलिये Stilbaestrol का १ मिलि० मात्रा में मुख द्वारा आर्तव काल के पहले २१ दिन देते रहना चाहिये । पिछले ७ दिन इसे छोड़ देना चाहिये ।

अत्यार्तव रोग :- Menorrhagia:-

छोटी आयु की स्त्री में Oestrone की प्रबलता (Hyper-Acitivity) के कारण आर्तव में रक्त अधिक जाता है । बड़ी आयु में डिम्ब ग्रन्थियों की निर्बलता के कारण मन्द रूप में Oestrogen के देर तक निकलते रहने से आर्तव में रक्त अधिक जाने लगता है । अत: दोनों अवस्थाओं में Progesterone के १०-१५ मिलि० मात्रा में अगले आर्तव काल से ८-१० दिन पहले ५ दिन तक देने से या प्रबल रक्त स्राव के बीच में देने से लाभ हो जाता है । मुख द्वारा इसे १०० मिलि० मात्रा में ५ दिन तथा Hydroxy-Progesterone Caproate(Delalutin) के १२५-२५० मिलि० मात्रा में मांस द्वारा एक बार देने से लाभ हो जाता है ।

पुन: पुनर्गर्भपात :- Recurrent Abortion:-

बहुधा गर्भपात अन्य कारणों से हो जाता है । परन्तु यदि किसी स्त्री को लगातार दो बार गर्भपात की शिकायत हो चुकी हो तो उसका अगला गर्भ भी गिर सकता है, इसकी पहले से आशंका होनी चाहिये । दो बार गर्भ पात होने पर ३७ प्र०श० आशंका इसकी रहती है । तीन बार गर्भपात होने पर तो चौथी बार गर्भपात होने की बहुत अधिक सम्भावना रहती है । अत: ऐसी स्त्री को दुबारा गर्भ स्थिर हो जाने पर Progesterone २० मिलि० मात्रा में मांस. द्वारा सप्ताह में दो बार ४ मास तक देते रहना चाहिये । या १-२ मिलि० मात्रा में इसे ८ मास प्रतिदिन मांस द्वारा देना चाहिये या Hydroxy Progesterone (Delalutin) के रूप में ५०० मिलि० मात्रा में मांस द्वारा सप्ताह में १ बार देते रहना चाहिये या Ethisterone के रूप में ३० मिलि० मात्रा में इसे मुख द्वारा पहले ४ मास तक लेते रहना चाहिये । रक्त स्राव दीखे तो इसी मात्रा को मुख द्वारा दिन में ३ बार दें या १० मिलि० मात्रा में मांस द्वारा कुछ दिन दे दें, या Delalutin के ५०० मिलि० मात्रा में मांस द्वारा दें ।

आर्तव समाप्ति जनित वायु रोग :-Menopause Syndrome Climacteric:-

किसी किसी स्त्री में आर्तव समाप्ति काल के समय जबकि नियम से आर्तव नहीं होते प्रत्युत २-४ मास के अन्तर से तथा अधिक मात्रा में होते हैं, कुछ वातिक लक्षण होने लगते हैं जो २-३ वर्ष तक रहते हैं । डिम्ब ग्रन्थियों में क्षीणता (Atrophy तथा Fibrosis) के हो जाने और उनमें सूक्ष्म रसों (Oestrogens, Progesterone) की उत्पत्ति के बन्द हो जाने या न्यून हो जाने से ये लक्षण

हैं। इन ग्रन्थियों के क्षीण हो जाने से पिट्यूटरी ग्रन्थि के Gonadotrophic Hormones का इन पर उत्तेजक प्रभाव नहीं होता। इस ग्रन्थि की निष्क्रियता के कारण सिरा संकोचक (Vasomotor) शक्ति निर्बल हो जाती है जिससे कुछ कुछ समय के लिये (१०-१५ मिनट के लिये) चेहरा मचने लगता है, और इसके बाद फिर वहां ठन्डा पसीना आने लगता है। इसके अतिरिक्त शिर में दर्द का लक्षण हो जाता है या शिर भरा हुआ लगता है, शिरोभ्रम हो जाता है। कभी कभी शरीर में विशेषतः स्तन प्रदेश, बैठने के स्थान तथा कोष्ठ प्रदेश में फैट बहुत अधिक मात्रा में बैठने लग जाती है। मुख पर बाल आने लगते हैं। इस काल में Osteoarthritis तथा Osteoporosis (विशेषतः कटि प्रदेश में) होने का लक्षण भी होता है।

इन शारीरिक लक्षणों के अतिरिक्त चिन्ता शीलता, विषाद म शीलता, व्याकुलता (Nervousness), भाव प्रधानता (Emotionalism) हृदय कम्प आदि लक्षण भी होने लगते हैं। कभी कभी ये लक्षण आर्तव समाप्ति काल के कई वर्ष बाद होते हैं। कभी रुग्णा में thyroid बढ़ा हुआ आ जाता है तब यह निश्चय करना कि ये लक्षण उसके कारण हैं या climacteric के कारण हैं कठिन होता है।

इसकी चिकित्सा के लिये उचित है कि यदि आर्तव सर्वथा बन्द हो चुके हैं तो प्रत्येक मास के प्रथम पांच दिन छोड़ के शेष दिन Stilboestrol (Clinestrol Glaxo) को ·५ मिलि० मात्रा में मुख द्वारा देते रहना चाहिये या Ethinyl Oestradiol (Eticyclin Ciba) को ·०५ मिलि० मात्रा में इसी प्रकार देना चाहिये। इस रोग में इस औषधि का स्वल्प मात्रा में ही इसे १२ मास तक प्रयोग किया जाता है। क्योंकि इसका उद्देश्य आर्तव को प्रवृत्त करना नहीं है। परन्तु अब कुछ समय से Oestrone के स्थान पर Androgen तथा Oestrogen दोनों के मिश्रण का प्रयोग अधिक लाभदायक कहा जाता है। अर्थात् Ethinyloestrodiol ·०१ मिलि० तथा Methyl Testosterone ३ मिलि० को मिला के (Mepilin, Duogen B.D.H. Mixogen Organon). ऐसी २ गोलियां दिन में १ बार से ३ बार तक दे दी जाती हैं और ज्योंही लक्षण शान्त होते हैं मात्रा कम कर दी जाती है। मानसिक लक्षणों की शान्ति के लिये चित्त शामक औषधियों में से किसी का स्वल्प मात्रा में प्रयोग भी करना चाहिये।

उपगल ग्रन्थियाँ Parathyroids के रोग :-

उप गल ग्रन्थि प्राबल्य :- Hyperparathyroidism:-

गल ग्रन्थि (Thyroid) के दोनों पार्श्वीय खण्डों के पिछले पृष्ठ में धंसी हुई भूरे से लाल या पीले से रंग की, मटर के दाने जितनी, दोनों ओर एक ग्रन्थि ऊपर गले (Pharynx) और भोजन नाली (Oesophagus) के सन्धि स्थान पर होती है। इसी प्रकार एक एक ग्रन्थि दोनों ओर इन्हीं खण्डों के निचले सिरे पर होती है। इनमें रक्त अधिक मात्रा में आता है तथा Inferior Thyroid Artery में से आता है। इनका सूक्ष्म रस (Hormone) Parathormone इनमें से निकल कर रक्त में व्याप्त होता एवं शरीर में कैल्सियम और फास्फोरस के परिपाक को नियन्त्रित रखता है। वृक्कों में से मूत्र द्वारा होने वाली Phosphates की निकासी पर इसका नियंत्रण होने से शरीर में ये दोनों पदार्थ सन्तुलित रूप में रहते हैं। क्योंकि जब इस सूक्ष्म रस को अधिक दिया जाता है तो मूत्र द्वारा Phosphates की निकासी बढ़ जाती है अर्थात् वृक्कों की मूत्र स्राविणियाँ (Tubules) द्वारा इनका पुनर्विलयन कम हो जाता है।

इसीलिये इन ग्रन्थियों के अधिक सक्रिय हो जाने (Hyperparathyroidism) की अवस्था में शरीर में से Phosphates की निकासी बढ़ जाती है। परिणामतः रक्त के सीरम में उनकी मात्रा घट जाती है। जब जब रक्त में फास्फोरस की मात्रा घटती है तब तब कैल्सियम की मात्रा बढ़ती है और यदि यह अतिरिक्त कैल्सियम बाहर भोजन से न मिले तो अस्थियों में विद्यमान कैल्सियम के भण्डार में से आने लगता है जिससे अस्थियों में विद्यमान Calcium Phosphates दारण करके या पचकर रक्त की ओर आने लगता है। इसी अस्थि दारण के अधिक बढ़ जाने से अर्थात् उनमें Osteoclasts नामक सेलों के अधिक बढ़ जाने से अस्थियों के Organic Calcium Compound में से Phosphate के (Radical) को पृथक् करने वाला पाचक रस Alkaline Phosphatase मात्रा में बढ़ जाता है और रक्त में अधिक आने लगता है। (सीरम में इसकी नार्मल मात्रा ५-१५ King Armstrong Units प्र०श० होती है) इस प्रकार इस रोग से व्यापक अस्थि दारण का रोग हो सकता है।

Fibrocystic Osteitis(Osteitis Fibrosa Cystica)- व्यापक अस्थि दारण का रोग :-

इस प्रकार अस्थियों में दारण (Destruction) के बढ़ने से दीर्घास्थियों में पोले प्रदेश cavities या (Cysts) उत्पन्न हो जाते हैं जिनमें द्रव होता या

स्नायु तन्तु होता या रक्तवाहिनियों का जाल होता या उनमें Osteoclasts से युक्त सैलों के अधिक बढ़ जाने से उत्पन्न अर्बुद (Osteoclastoma) हो जाते हैं। जिससे विशेषत: हन्वस्थि (Jaw के Epulis) में हाथ पांव के Metatarsals तथा Metacarpuls में उभार से हो जाते हैं, जिन पर दबाने से दर्द होता है। अस्थियों के निर्बल हो जाने से वे खम खा जाती हैं। विषमाकृति हो जाती हैं या भग्न हो जाती हैं। रीढ़ की हड्डी के कसेरुकों के निर्बल होकर दब जाने से रोगी की ऊंचाई घट जाती है या पृष्ट वंशास्थि मुड़ जाती है या रोगी को रीढ़ की हड्डी में या शाखास्थियों में या जघनास्थियों में दर्द रहता है। ऐसी अवस्था में अस्थि पर वहां दबाने से दर्द भी होता है।

कभी २ इनमें से किसी एक ग्रन्थि में अर्बुद tumour के उत्पन्न हो जाने से यह होता है।

रक्त की परीक्षा करने से उसमें कैल्सियम की मात्रा १० मिलि० प्र०श० से अधिक, फास्फोरस की मात्रा $२\frac{१}{२}$ मिलि० प्र०श० से कम तथा Alkaline Phosphatase की मात्रा नार्मल से बढ़ी हुई पाई जाती है।

"उप गल ग्रन्थि प्राबल्य" के रोग में वृक्कों में से कैल्सियम की निकासी नार्मल (·१--·७ ग्राम दैनिक) से अधिक होने तथा Phosphates के भी अधिक निकलते रहने से इस रोग में वृक्कों में Calcium Oxalate या Calcium Phosphate की अश्मरियां भी बन जाती हैं जिससे वृक्क शूल बार बार होता रहता है। यदि वृक्कों में से चिरकाल तक इनकी निकासी जारी रहे तो वृक्कों की मूत्र प्रणालियों (Tubules) में काठिन्य का लक्षण होकर चिर स्थायी वृक्क रोग (Chronic Nephritis या Nephrosclerosis या Nephrocalcinosis) हो जाता है।

इस रोग में रक्त में कैल्सियम की वृद्धि से पहले तो कोई लक्षण नहीं होता पर वृद्धि के बने रहने से कैल्सियम वृद्धि (Hypercalcemia) के लक्षण जैसे अरुचि, वमन, मलबन्ध, तन्द्रालुता, हृदय की मन्द गति, मांस पेशियों की निर्बलता, भार के घटते जाने के लक्षण होते हैं। हृदय मांस में कैल्सियम के बैठने से हृदय कम्प, फुफ्फुसों में इसके बैठ जाने से श्वास काठिन्य, मांसपेशियों में इसके बैठने से वहां वहां मांस शूल होने के लक्षण भी होते हैं।

रोग विनिश्चय :-

इस रोग में होने वाले अस्थि दारण रोग (Fibrocystic Osteitis) का सन्देह अस्थि गुहा भाव (Osteoporosis) से हो सकता है क्योंकि X-Ray परीक्षा करने से इन दोनों रोगों में अस्थियों में ~~क्स्वभाव~~ काचभाव या ~~(Radiolucency)~~ का लक्षण एक सा मिलता है। परन्तु यह रोग जिसका यहां वर्णन हुआ है मध्यमायु की स्त्रियों में विशेषत: पाया जाता है जबकि वह रोग बड़ी आयु के स्त्री पुरुषों में ही होता है। वह रोग अस्थियों के अन्दर Calcium Phosphate के अतिक्षारण या अतिपचन के कारण नहीं होता

परन्तु बड़ी आयु में लिंगी सूक्ष्म रसों (Androgens, Oestrogens) की उत्पत्ति के कम हो जाने से प्रोटीन्स द्वारा अस्थियों के अन्दर के ढांचे-Matrix तथा Trabeculae- के यथावत् न बनने से होता है। मधुमेह के कारण प्रोटीन्स के खाण्ड में अधिक परिवर्तित होते रहने से भी वह रोग होता है। वह रोग भी पृष्ठ वंशास्थि के कटिभाग में तथा जघनास्थियों (Pelvis) में विशेष होता है जिससे कटि कसेरु पोले होकर दब जाते व बैठ जाते हैं। उसमें पहले कटि शूल का लक्षण होता है बाद में कसेरुओं के नीचे बैठते जाने से कटि प्रदेश में विषमता आ जाती है अर्थात् कुब्जता या Kyphosis का लक्षण हो जाता है। और रोगी की ऊंचाई छोटी हो जाती है। उरुअस्थियों (Femur) की ग्रीवा में इस रोग के होने के कारण स्वल्प आघात से उसमें भंग हो जाया करता है। स्पष्ट है इस Osteoporosis रोग में सीरम के अन्दर कैल्सियम, फास्फोरस (Inorganic Phosphate) तथा Alkaline Phosphatase नार्मल मात्रा में होते हैं।

तारुण्य सुलभ अस्थि शोष :- (Osteomalacia) - से भी जो २०-३० वर्ष की आयु की स्त्रियों में होता है इस अस्थि दारण रोग (Fibrocystic Osteitis). का सन्देह हो सकता है। उस रोग में अस्थियों के अन्दर का ढांचा (Matrix या Osteoid Tissue) जो प्रोटीन के द्वारा बनता है ठीक ठीक बनता है परन्तु उसके अन्दर Calcium Phosphate का निक्षेप भलीभांति नहीं होता अर्थात् भोजन में कैल्सियम की न्यूनता से या आंतों में से कैल्सियम के भलीप्रकार विलीन न होने से या विटामिन " डी " की कमी से शरीर में कैल्सियम विलीन नहीं होता। रोगी के सीरम में कैल्सियम की मात्रा नार्मल से कम होती है। प्लाज्मा में फास्फोरस भी कम होता है। Osteoblasts के अधिक सक्रिय होने के कारण Alkaline Phosphatase की मात्रा नार्मल से अधिक होती है। इस प्रकार अस्थियों में Calcium Phosphate की कमी से वे मृदु हो जाती है तथा भार पड़ने से मुड़ जाती हैं। सबसे अधिक यह रोग पृष्ट वंशास्थि में होता है। पहले वहां दर्द और स्पर्शाक्षमता के लक्षण होते हैं। फिर पीठ में आकृति वैषम्य का लक्षण होने लगता है अर्थात् कुब्जता (Kyphosis या Lordosis) का लक्षण हो जाता है। इस प्रकार पृष्ठवंशास्थि में वैषम्य के हो जाने से रोगी की ऊंचाई घट जाती है। जघनास्थियों (Pelvis) में भी यह रोग होता है। Sacrum में इस रोग के होने से एवं उसके नीचे झुक जाने तथा Acetabula के दोनों ओर ऊरुअस्थियों के द्वारा दब जाने से जघनगुहा (Pelvis) में ऐसी विषमता आती है कि सन्तान के बाहिर आने के लिये Caesarion Section आवश्यक हो जाता है वक्षोअस्थि (Sternum) तथा पसलियों में आकृति वैषम्य के हो जाने से छाती पर उभार या गढ़े पड़ जाने का लक्षण हो जाता है। X-Ray परीक्षा

करने पर अस्थियों की छाया काच सदृश (Radio Lucence) होती है ।

इस रोग (Hyperparathyroidism या Fibrocystic Osteitis) का चिरस्थायी वृक्क रोग से सम्बन्ध :-

चिर स्थायी वृक्क रोग में Acid Sodium Phosphate के रूप में फोस्फोरस के मूत्र में से ठीक ठीक न निकलने से सीरम में उसकी मात्रा बढ़ जाती है । परिणामत: कैल्सियम की मात्रा कम हो जाती है जिससे अस्थियों में से वह रक्त में आने लगता है । लिहाज़ा अस्थियों में से कैल्सियम फास्फेट के निकलने से उनमें Fibrocystic Osteitis का रोग हो सकता है । साथ ही रक्त में कैल्सियम की कमी से Tetany का लक्षण हो सकता है ।

उप गल ग्रन्थि प्राबल्य :-(Hyper Parathyroidism) की चिकित्सा :-
---

स्थानिक शल्य कर्म से ही यह निश्चय हो सकता है कि उप गल ग्रंथियों में से किसी में अर्बुद तो नहीं यदि उसका पता लगे तो उसे निकालने से ही यह रोग शान्त होता है । इस शल्य कर्म से पहले जब रक्त में कैल्सियम का आधिक्य होता है कैल्सियम प्रधान भोजन बन्द कर देने चाहिये अन्यथा वृक्कों और हृदय में काठिन्य के होने से उपर्युक्त उपद्रवों के होने का भय रहता है । रोगी को जल अधिक मात्रा में पीना चाहिये ताकि वृक्कों में से कैल्सियम भली प्रकार निकलता रहे ।

पर शल्य कर्म के बाद कैल्सियम की न्यूनता की पूर्ति के लिये दूध आदि कैल्सियम प्रधान आहार तथा Calcium Lactate को पहले १ ड्राम मात्रा में और फिर २० ग्रेन मात्रा में दिन में ३ बार देते रहना चाहिये तथा साथ ही विटामिन " डी " को ५० हजार युनिट्स की मात्रा में (Calciferol) मांस द्वारा या मुख द्वारा प्रतिदिन देना चाहिये । अस्थि गत रोग (Fibrocystic Osteitis) फिर भी बहुत दिन तक रहता है । कई महीनों तक उपर्युक्त चिकित्सा के जारी रखने से वह भी ठीक हो जाता है ।

अस्थि गुहा भाव (Osteoporosis) की चिकित्सा :-

अस्थि गुहा भाव के रोग में कैल्सियम प्रधान भोजन दूध (जिसके एक पाइंट में ६८० मिलि० कैल्सियम होता है) पर्याप्त मात्रा में देना चाहिये । साथ विटामिन " डी " २०००-४००० युनिट्स की मात्रा में प्रतिदिन रोगी को मिलना चाहिये । स्त्री को प्रति मास के प्रथम सप्ताह को छोड़कर शेष तीन सप्ताह Stilboestrol •५-२ मिलि० मात्रा में दैनिक मिलना चाहिये या उसे Ethinyloestradiol •०२-•०५ मिलि० मात्रा में दैनिक मिलना चाहिये । पुरुष को Testosterone (Methyl Testosterone ५-२० मिलि० मात्रा में या Fluoxymesterone २-१० मिलि० मात्रा में या Northandrolone (Nilevar) ३०-५० मिलि० प्रतिदिन मिलना

चाहिये । अथवा सभी रोगियों को इन दोनों का मिश्रण अर्थात् Methyl Testosterone १० मिलि० Dienoestrol १ मिलि० प्रतिदिन ४ सप्ताह दे देना चाहिये । फिर २ सप्ताह इस औषधि को बन्द करके फिर ४ सप्ताह देना चाहिये / इस प्रकार इसे जारी रखना चाहिये ।

तरुण सुलभ अस्थि शोष Osteomalacia के लिये कैल्सियम प्रधान आहार तथा Calciumlactate १-१ ड्राम दिन में ३ बार प्रतिदिन तथा विटामिन "डी" २५-५० हजार युनिट मात्रा में प्रतिदिन देना चाहिये । Cod Liver Oil भी लाभदायक होता है ।

उप गल ग्रन्थि नैर्बल्य :- Hypoparathyroidism:-

सहज या Idiopathic

उप. गल ग्रन्थियों की पैतृक निर्बलता के कारण सम्भवत: शिशुओं में स्तम्भ (Spasm) का लक्षण होता है

ऐसी अवस्था में ग्रन्थियों में Epithelial टांसो के स्थान पर फैट सेल आ जाते हैं

। परन्तु बहुधा तो गल ग्रन्थि पर शल्य कर्म होने के बाद Parathyroid अवयव के कम हो जाने पर उनके सूक्ष्म रस के कम उत्पन्न होने से मांस स्तम्भ का रोग होता है । इनके सूक्ष्म रस (Parathormone) के कम हो जाने से वृक्कों में से Phosphates की निकासी घट जाती है अर्थात् वृक्कों की मूत्र स्राविणियों से इनका पुनर्विलयन अधिक होने लगता है । जिससे रक्त में इनके बढ़ जाने से कैल्सियम की मात्रा घट जाती है एवं कैल्सियम हीनता (Hypocalcemia) के कारण चेष्टावाही तथा ज्ञान वाही दोनों नाड़ियां (Nerves) एवं अनैच्छिक (Autonomic) नाड़ी मण्डल भी विदग्ध हो उठता है । इससे उत्पन्न मांस स्तम्भ को खल्ली या Tetany कहा जाता है जिसका उल्लेख नाड़ी रोगों में भी हुआ है । उप-गल ग्रन्थियों के सूक्ष्म रस की न्यूनता से होने वाला मांस स्तम्भ तो विशेषत: गल ग्रन्थि सम्बन्धी शल्य कर्म के कारण होता है । इन ग्रन्थियों के रोग के अतिरिक्त अन्य कारणों से जैसे बाल सुलभ अस्थि शोष रोग (Rickets) तरुण सुलभ अस्थि शोष रोग (Osteomalacia) या आंतों में से कैल्सियम के शरीर में कम जाने अर्थात् ग्रहणी रोग या चिर अतिसार के कारण या विटामिन "डी" की विशेष कमी से या चिरस्थायी वृक्क रोग में वृक्कों में से Phosphates के न निकलने एवं उनके रक्त में अधिक बढ़ जाने से भी रक्त में कैल्सियम की कमी हो सकती है फिर उसके कारण मांस स्तम्भ का रोग हो सकता है । इस अवस्था में रक्त में ही नहीं मूत्र में भी कैल्सियम की मात्रा (·७ मिलि०प्र०श० से) कम हो जाती है ।

मांस स्तम्भ का यह लक्षण इन ग्रन्थियों पर शल्य कर्म होने के बाद तुरन्त या कुछ देर बाद होने लगता है । साधारणत: यह लक्षण ६ मास से २ वर्ष तक की आयु के ऐसे शिशुओं में होता है जिन्हें अतिसार का रोग होता है । उनमें कर पाद स्तम्भ (Carpopedal Spasm) या कण्ठ-स्तम्भ (Laryn-

gospasm)या सारे शरीर में आक्षेप (Convulsions) के रूप में होता है । बड़े व्यक्तियों में होने वाले क्षणिक कम्प (Twitchings) और आक्षेप भी कैल्सियम की न्यूनता के कारण हो सकते हैं । सारे शरीर में होने वाले आक्षेप,अपस्मार जनित होते हैं । उसका भेद इस रोग से करना चाहिये । इस रोग में रक्त के अन्दर कैल्सियम की न्यूनता (६ मिलि० प्रतिशतक से कम) होती है और फास्फोरस की (३ .५ मिलि० प्र०श० से) अधिकता होती है । Bleeding Time तथा Coagulation Time दोनों दीर्घ होते हैं।

उप-गल-ग्रन्थि नैर्बल्य (Hypoparathyroid Tetany) की चिकित्सा :-

रोग तीव्र रूप में हो तो १० प्र०श० Calcium Gluconate को १०-२० सी०सी० मात्रा में शिरा द्वारा दे देना चाहिये या Calcium Chloride के १० प्र०श० सोल्यूशन को ५-१० सी०सी० मात्रा में धीरे-धीरे शिरा द्वारा देना चाहिये । Parathyroid या Parathormone को २०-६० यूनिट्स की मात्रा में मांस द्वारा या त्वचा द्वारा भी दिया जाता है । तथा दुहराया भी जाता है । परन्तु इस के बिना भी यह रोग केवल कैल्सियम चिकित्सा से भी ठीक हो जाता है । यदि रोग अधिक प्रबल रूप में न हो तो Calcium Gluconate को २० ग्रेन की मात्रा में दिन में ४ बार या Calcium Lactate या Chloride को आधी-आधी ड्राम की मात्रा में दिन में ४ बार मुख से देना चाहिये, तथा Liquor Calciferol (विटामिन डी) को ४ हजार यूनिट की मात्रा में दिन में ३ बार दे देना चाहिये । सीरम के कैल्सियम कैल्सियम की परीक्षा करते हुये इस औषधि की मात्रा को बढ़ा घटा सकते हैं । मूत्र में कैल्सियम अधिक आने लगे तो इस औषधि को कम कर दें । मूत्र में कैल्सियम कम आये तो इसकी मात्रा बढ़ा देनी चाहिये । थोड़े मूत्र में उतना ही Sulkowitch Reagent मिलाने से यदि कोई निक्षेप न आये तो उसमें कैल्सियम को ५-६ मिलि० प्र०श० मात्रा में ही समझना चाहिये । यदि विक्षेप भारी आये तो कैल्सियम की मात्रा अधिक है, ऐसा समझना चाहिये । ऐसी अवस्था में Hypercalcinosis के दुर्लक्षण होने लगते हैं । इसके डालने से मूत्र में हलका सा ही निक्षेप आना चाहिये ।

भोजन में २४ औन्स दूध देने से रोगी को १ ग्राम कैल्सियम मिल जाता है पर उसमें फास्फोरस की मात्रा भी होती है । इसीलिये कैल्सियम के पहुंचाने वाले फल - सब्जी आदि अधिक मात्रा में देने चाहियें । रोगी को एक-एक दिन छोड़ कर १-२ पाइन्ट नार्मल सेलाइन के द्वारा बस्ती करनी चाहिये । इससे भी मांस स्तम्भ शान्त होता है । Chloral Hydrate को स्तम्भ शमन के लिये ५-१० ग्रेन मात्रा में दिन में ३ बार २-३ दिन दे सकते हैं । बालक को इसकी मात्रा कम करके दें । रोगी के अच्छे हो जाने पर उसे Calcium - Lactate ५-१० ग्रे० प्रतिदिन लेते रहना चाहिये ।

रोग परीक्षा विधि

(Clinical Method)

वाह्य रुप (General Appearance) द्वारा रोग की परीक्षा :-

कई बार रोगी को देखने मात्र से उसके रोग की पहचान हो जाती है । उदाहरणत: चेहरे का रंग मटियाला हो, गालों पर झांइयां पड़ी हो, नेत्रों में हलका सा पीलापन हो तो विषम ज्वर (Malaria) का, चेहरे तथा आंखों में हरा सा पीला रंग झलकता हो तो कामला का, नाक-कान-ओष्ठों पर नीलापन (Cyanosis) हो तो हृदय रोग (Congestive Heart Failure) का, रोगी बैठा हुआ गहरे श्वास प्रश्वास ले रहा हो तो फुफ्फुस रोग या हृदय रोग जनित श्वास का, बालक का चेहरा फूला हुआ श्वेत वर्ण हो तो वृक्क शोथ (Nephritis) का, बड़ों में श्याम वर्ण, भारी सा चेहरा हो तो जीर्ण वृक्क रोग (C.Nephritis) का अनुमान कर लिया जाता है । इसी प्रकार बड़ी आयु में गिट्टों पर भारीपन को देखकर हृदय नैर्बल्य का, बालक या युवक में बढ़ती हुई कृशता और छोटी छोटी शुष्क खांसी को देखकर क्षय रोग का, मध्यम-आयु में बढ़ती हुई कृशता और त्वचा की शुष्कता को देखकर मधुमेह का और बड़ी आयु में बढ़ती हुई कृशता को देखकर कैन्सर का सन्देह कर लिया जाता है । इसी प्रकार यदि कोई बालक देखने में बूढ़ा सा लगता हो तो जीर्ण आमवातिक हृद्रोग (C.Rheumatic Endocarditis) का सन्देह हो जाता है ।

रोगी का चेहरा उदास, चिन्ताशील हो तो चिन्ता रोग का, आधा चेहरा भाव हीन और उधर की आंख आधी खुली सी हो तो अर्दित (Facial Palsy) का, युवक में श्वास कृच्छता हो तो श्वास रोग का, बड़ों में श्वास कृच्छता हो तो हृदय नैर्बल्य (Pulmonary Oedema) का अनुमान हो जाता है । ज्वर रोगी शीघ्र शीघ्र सांस लेता हो तो फुफ्फुस ज्वर (Pneumonia) का, ज्वर ग्रस्त बालक अपनी पीठ पर असहाय की तरह अंगों को बिना हिलाये पड़ा हो तो सन्धिक ज्वर (Rheumatic Fever) का, ज्वर ग्रस्त बालक सिर को पीछे की तरफ फेंक कर पड़ा हुआ हो तो मस्तिष्क ज्वर (Meningitis) का या ग्रीवा स्तम्भ, कटि स्तम्भ आदि को देखकर स्तम्भ (Tetanus) रोग का अनुमान हो जाता है । इसी प्रकार बड़ी आयु का व्यक्ति मूर्छा में पड़ा हुआ घुर्राटे ले रहा हो तो सन्यास मूर्छा (Apoplexy) का, उसकी आंखों में लालिमा हो तो मस्तिष्क रक्त स्राव (Hoemorrhoge) का, युवक इसी प्रकार से मुर्छित होकर गिर पड़ा हो तो अपस्मार (Epilepsy) का या मूर्छा स्वल्प काल की हो तथा उसकी त्वचा फीकी और आर्द्रता से युक्त हो तो रक्त संचार की निर्बलता (Peripheral Circulatory Failure) का अनुमान

नेत्ररोग:-

acute conjunctivitis :— मे Sulphacetamide solution डालना चाहिए।

Allergic conjunctivitis — मे द्रव बहुत जाता है तथा Chemosis का लक्षण होता है इसमें 2.5% सोल्युशन Hydrocortisone का ·1-·5 प्र.श. सोल्युशन या प्रलेप Prednisone-Prednisolone का या ·1 प्र.श. सोल्यु. या प्रलेप Betamethasone का या ·1 प्र.श. सोल्युशन Dexamethasone का या ·1 प्र.श. प्रलेप Triamcinolone का लगाना चाहिए।

मुख द्वारा Prednisolone को 5 मिलि. मात्रा में Dexamethasone को ·75 मिलि. मात्रा में Betamethasone को ·6 मिलि. मात्रा में triamcinolone को ·4 मिलि. मात्रा में मुख से भी दिन में 2-3 बार दें।

Phlyctenular conjunctivitis — में भी Corticosteroid के स्थानिक प्रयोग से तुरन्त लाभ होने लगता है।

Iritis — दर्द — धुंधलापन — कार्निया के आस पास लालिमा aqueous का धुंधलापन — Iris का मैलापन, पुतली का संकोच, Iris का लेन्स के साथ जुड़ जाना (Post. synechia) आदि लक्षण होते हैं।

इसमें Mydriatic औषधि के अतिरिक्त, सेक काले चश्मे के अतिरिक्त Steroid औषधि का स्थानिक प्रयोग करना चाहिए। मुख से भी किसी Steroid का प्रयोग करना चाहिए और स्थानिक लगाना जारी रखना चाहिए। Dexa तथा Betamethasone (विशेष उपयोगी हैं)

Blepharitis — में Antibiotic तथा Steroid का प्रयोग अथवा Sulphacetamide और Steroid का प्रलेप बालों की जड़ में लगायें। इसे कुछ दिन लगाना जारी रखें।

पहले N. Saline से धोकर आंख में acids या alkali पड़ जाए तो भी Antibiotic steroid drops आंख में डालने चाहिए।

corneal Vascularisation हो — तो भी Steroid का स्थानिक प्रयोग करें।

Retinopathy में — steroids का प्रयोग मुखद्वारा करना चाहिए।

हो जाता है ।

अधोहन्वस्थि के कोण के पास ग्रन्थियों को फूला हुआ देखकर (Tonsillitis) का Sternomestoid के किनारे किनारे की ग्रन्थि माला को देखकर क्षय रोग का, भौंहों के बालों को उड़ा हुआ देखकर महाकुष्ठ (Leprosy) का, हाथों की अंगुलियों के जोड़ों में शोथ को तथा अंगुलियों को को अन्दर की ओर झुका हुआ (Ulnar Deviation) देखकर Rheumatoid Arthritis का, अंगुलियों के अगले पोरों को मोटा देखकर जीर्ण फुफ्फुस रोग या पुरानी खांसी (Bronchiectasis) का अनुमान हो जाता है । हाथों में कंप को देखकर नाड़ी मण्डल में Disseminated Sclerosis का या Extra Pyramidal. सूत्रों में दक्षिणता का अनुमान हो जाता है । इसी प्रकार श्वास लेने पर बालक में पसलियां अन्दर को धंस जाती हों तो छोटी सांस की नालियों में अवरोध होने (Bronchiolitis) का अनुमान हो जाता है । इसी प्रकार रोगी का शरीर पतला, छाती पतली, हाथ पांव भी कुछ पतले हों तो उसे वात प्रकृति Asthenic Temperament का, तथा शरीर मोटा, हाथ पांव आदि मोटे हों तो उसे कफ प्रकृति Sthenic Temperament का जान लेते हैं ।

सामान्य प्रश्न :-(Interrogation)

वर्तमान रोग सम्बन्धी :-

(१) नाम, आयु, पेशा, स्थान आदि पूछने के बाद रोगी की मुख्य शिकायत क्या है यह पूछना चाहिये ।

(२) यह शिकायत कब से है, तब यह क्रमशः शुरु हुई है या सहसा क्या क्या उसके कारण बन गये, शुरु होने से लेकर अब तक क्रमशः क्या क्या उपाय किये । क्या किसी प्रकार के पथ्य या किसी औषधि से उसे कुछ लाभ प्रतीत होता है ।

(२) पूर्व इतिवृत्त सम्बन्धी :-

इस कष्ट के आरम्भ होने से पहले क्या उसे कभी आमवातिक ज्वर (Rheu. Fever), फिरंग रोग, रोमान्तिका (Measles), कास ज्वर (Broncho Pneumonia), चिन्ता रोग (Neurasthenia), हुऐ । स्त्री हो तो आर्तव सम्बन्धी तथा प्रसव सम्बन्धी लक्षणों का इतिवृत्त पूछें ।

(३) वंश का इति वृत्त :-

क्या माता-पिता, भाई-बहनों में कभी आमवात (Rheumatism), चिन्ता रोग, श्वास रोग, हृदय रोग, अपस्मार रोग, सन्यास मूर्छा, पक्षाघात, मानसरोग हुआ ।

trachoma - यह एक छूत वाला नेत्र रोग है जिसमें पहले ऊपरली पलकों के अन्दर छोटे दाने folicles (Lymph bags) उत्पन्न हो जाते हैं जो संक्रमणशील होते हैं। 19 से 30 वर्ष की आयु में यह रोग बहुत होता है। थोड़ा corneal pannus भी इस रोग में होता है।

इस रोग में आंख दुखने आती है। conjunctivitis बार बार हो तो यह रोग बढ़ता जाता है। इस रोग में आंख में खुजली व चेचैनी रहती है। यह रोग ~~बहुत~~ एक दीर्घ रोग है इन folicles को सूखकर जाने से पलक अन्दर को मुड़ जाती है जिससे बाल आंख में रगड़ने लगते हैं जिसे Trichiasis कहते हैं।

इस रोग में आंख को धूल धूम से बचाना चाहिए। रात को सोने से पहले रोज आंखों को धोना चाहिए।

रोग के प्रारंभ में sulphonamide का अन्दर प्रयोग करें तथा sulphacetamide solu. के गोले या tetracycline drops के प्रयोग से यह रोग ~~बहुत~~ अच्छा हो सकता है।

भोजन प्रणाली सम्बन्धी परीक्षा :- (Physical Examination of the Alimentary Canal) :-

प्रश्न :-

(१) दर्द :-

पेट में दर्द है तो किस स्थान पर है । बेचैनी सी या भारीपन ही है या तेज दर्द है (आमाशय आंत आदि की श्लेष्म कला में शोथ होने से केवल भारीपन होता है) कितने दिनों से है । भोजन खाने से कितनी देर बाद होता है (श्लै० आमाशय शोथ Gastritis) में तुरन्त बाद होता Acid Dyspepsia या Ulcer में कुछ देर बाद होता है) किस प्रकार के भोजन से बढ़ता है । किस प्रकार के भोजन या औषध से लाभ प्रतीत होता है । दर्द के दौरे ब होते हैं तो कितने कितने अन्तर से, मालिश या दबाने से बढ़ता है या शान्त होता है । उसके साथ वमन होती है तो दर्द शान्त होता है या नहीं । दर्द या ब तीव्र शूल कोष्ठ प्रदेश में हो तो उदर रोग (Peritonitis) अजीर्ण जनित आन्त्र शूल, पित्ताशय शूल, वृक्क शूल में से किसी का सन्देह करना चाहिये ।

(२) भूख :-

भूख कम है, साधारण है, या अधिक लगती है (पित्ताजीर्ण में अधिक तथा यकृद्रोग, हृदय नैर्बल्य, आमाशय शोथ तथा कैन्सर, भिन्न रोग में कम लगती है Achlorhydria के कारण)

(३) पेट में अफारा होता है (जो आमाशय शोथ, यकृद्रोग, हृदय नैर्बल्य में होता है) तो भोजन के कितनी देर बाद किस प्रकार के भोजन से ज्यादा होता है । उपर (उपर्युक्त रोगों में चि०आमाशय शोथ Gastritis के कारण) ।

(४) कभी छाती में जलन तो नहीं होती। (मन्दाग्निया तीव्र अग्नि जनित अन्न मार्ग शोथ Achlorhydric या Hyperchlorhydric Oesophagitis के कारण) ।

(५) उल्टी होती है तो वह किस किस्म की होती है । (मात्रा में थोड़ी या अधिक होती, गन्ध कैसी होती, रक्त युक्त तो नहीं, कफ युक्त या पित्त -Bile- युक्त होतकि है) मुख से पानी ही गिरता है तो वह खट्टा मीठा कड़वा कैसा होता है । रात को मुख से अधिक थूक तो नहीं आता। वमन का लक्षण दर्द के साथ तो नहीं होता (पित्ताश्मरी), (आमाशय शोथ आमाशय व्रण, कैन्सर का भेद करना चाहिये । मूत्र विष संचार Uraemia का भी ध्यान रखना चाहिये । मुख या अन्न प्रणाली में या आमाशय में

में किसी प्रकार का विदाोभक कारण विद्यमान हो, अम्ल की अधिकता हो तो मुख तथा अन्न प्रणाली में से बहुत सा पानी निकल कर बाहर आ जाता है जिसे Ptyalism या Water Brash या अति निष्ठीवन कहते हैं।

(६) प्यास अधिक लगती है या कम (चि० आमाशय शोथ तथा आमाशय व्रण या Acid Dyspepsia में भेद करें।

(७) अतिसार होते हैं तो दिन भर में किस समय होते हैं। कितने होते हैं। मल कुछ ढ़ीला सा ही होता है या अधिक पतला, मात्रा में थोड़े थोड़े होते हैं या बड़े बड़े, उनका रंग क्या होता है। उनके साथ ज्वर तो नहीं रहता। उनमें आंव या खून तो नहीं होता। मरोड़ से होते या बिना मरोड़ के। (संग्रहणी, दोनों प्रवाहिका, बालकों के ग्रीष्मातिसार Bacterial Diarrhoea Uraemia, या Ulcerative Colitis का भेद करना चाहिये। बड़ी आयु में मल में रक्त, गुदा में कैन्सर का सूचक होता है। मध्यमायु में (Ulceratine Colitis का) मलबन्धता हो तो देखें कि वह आंतों की मांस पेशियों की निर्बलता से है या मानसिक विदाोभ शीलता से है या मल त्याग के समय के निश्चित न होने से है या भोजन के अन्दर किसी कमी से है या जल दोष से है। अम्लपित्त (Heart Burn) हो तो पेट में अम्ल की अधिकता अर्थात् Organic Acids अथवा Hcl की अधिकता का अनुमान करना चाहिये।

परीक्षा :-

दर्शन (Inspection) परीक्षा मुख खोलकर देखें कि मसूढ़ों में शोथ या पाक तो नहीं। जिव्हा जो पेट की सूचक होती तथा स्वच्छ और गीली होती है देखें कि मोटी या फूली हुई तो नहीं अर्थात् उसके किनारों पर दांतों के निशान तो नहीं। वह शुष्क या अधिक गीली तो नहीं। उसका रंग क्या है। वह मलयुक्त है या स्वच्छ है। उसके अंकुर (Papillae) हैं या लुप्त हैं। अर्थात् जीभ साफचट तो नहीं। जीभ पर या मुख के अन्दर लालिमा और शोथ तो नहीं।

कोष्ठ को देखें कि वह अधिक उभरा हुआ या पटका हुआ तो नहीं। त्वचावर्ती शिरायें अधिक स्पष्ट तो नहीं।

स्पर्शन (Palpation) परीक्षा :-

रोगी को ऊंचे तकिये के सहारे लिटाकर उसके गोड़े खड़े कराकर अंगुलियों के पोंचे से पेट के विभिन्न प्रदेशों को दबाकर देखना चाहिये। पहले दांये Iliac फिर दांये Lumber, Hypochondriac तथा Epigastric बांये

Hypochondriac बायें Lumber बायें Iliac, Hypogastric और फिर नाभि प्रदेश की क्रमशः परीक्षा करनी चाहिये और इन प्रदेशों में विद्यमान अंगों में से किसी का अनुभव हो या किसी में दुखन हो तो उसका पता लगाना चाहिये। जहां दुखन या शोथ होता है रोगी उस प्रदेश को जकड़ा लेता है। स्वस्थ अवस्था में पेट के सारे प्रदेश मृदु होते हैं एवं अधिक अनुभव नहीं होते और उनमें दबाने से कहीं वेदना नहीं होती। Mc. Burney's Point पर विशेषतः दबाकर Appendix को देखना चाहिये। नाभि प्रदेश पर दबाने से आंत की दर्द का पता चलता है।

पेट में कोई ग्रन्थि हो तो उसका भी स्पर्शन से पता लगता है। वह दीवार में हो तो दीवार के साथ हिलती है तथा त्वचा को पकड़ कर उठाने से ग्रन्थि वह नहीं उठती।

यकृत् के निचले किनारे को भी स्पर्शन से देखा जा सकता है। Rectus के बाहर हाथ के किनारे या अंगुलियों के सिरों को पसलियों के समानान्तर पेट में धंसाकर रक्खें और रोगी को गहरा श्वास लेने के लिये कहें तो उसका निचला किनारा हाथ को लगता है जो साधारणतः मृदु होता है। Epigastrium में पड़े हुए यकृत् को दबाकर उसमें विद्यमान शोथ का पता लगा सकते हैं। हृदयं दौर्बल्य के कारण यकृत बढ़ा हुआ हो तो उसके कैप्सूल पर दबाव पड़ने से वह दुखता है परन्तु स्पर्श में मृदु और सम होता है। Cirrhosis में यकृत् पृष्ठ कुछ कठोर होता है पर कैन्सर में यह अति कठोर और विषम होता है। यकृत् विद्रधि (Hepatic abscess) में यकृत्पृष्ट स्पर्शन में मृदु ही होता है।

पित्ताशय (Gall Bladder) के स्पर्शन के लिये Rectus के ठीक बाहर नवमीं पसली के अन्दर की तरफ अंगुलियां को धंसाकर रोगी को श्वास लेने के लिये कहें तो पित्ताशय का स्पर्शन होता है और यदि वह सूजा हुआ हो तो रोगी को स्पर्शन से दर्द होता है और उसका सांस रुक जाता है। (Murphy's Sign).

प्लीहा के स्पर्शन के लिये रोगी के दाईं ओर खड़े होकर बाईं ओर पसलियों के नीचे दायें हाथ की अंगुलियों को डुबोकर रोगी को गहरा श्वास लेने के लिये कहें। यह बढ़ी हुई हो तो उसका निचला तीखा किनारा जिसमें Notch भी होती है हाथ को लगता है। विषम ज्वर में प्लीहा बढ़ी हुई हो तो कठोर होती है, मन्थर ज्वर में बढ़ी हुई हो तो मृदु होती है।

गुर्दा अन्तिम पसली के पीछे होता है। बायां दायें से आधे इंच ऊपर होता है। एक हाथ कमर पर, अन्तिम पसली के ऊपर तथा नीचे रखें। दूसरा आगे की तरफ पसलियों के नीचे रखें। पिछले हाथ को आगे की ओर और अगले को पीछे और ऊपर की ओर दबायें तो दोनों के बीच में गुर्दे को अनुभव किया जा सकता है।

टकोर (Percussion) परीक्षा :-

यकृत् प्लीहा प्रदेशों को छोड़कर शेष कोष्ठ पर टकोर की आवाज अधिक ऊंची (Tympanitic) होती है। किन्तु जलोदर के हो जाने पर जल वाले प्रदेश पर टकोर की आवाज मन्द (Dull) हो जाती है। अर्थात् रोगी चित्त लेटा हुआ हो तो कोष्ठ के मध्य प्रदेश पर टकोर की आवाज ऊंची और दोनों पार्श्वों पर जल के होने के कारण मन्द होती है। अब रोगी को एक पार्श्व पर लिटा दें तो ऊपर की आवाज ऊंची हो जाती तथा मध्य प्रदेश और निम्न पार्श्व की आवाज मन्द हो जाती है।

यकृत् का ऊपर का किनारा टकोर परीक्षा से जाना जाता है। Mid Calvicular Line में ऊपर से नीचे की तरफ टकोरते आयें तो छटी पसली पर आवाज मन्द हो जाती है। Mid Axillary Line में ऊपर से नीचे टकोरते आवें तो आठवीं पसली पर, और पीठ पर Scapular Line में ऊपर से नीचे टकोरते आवें तो दसवीं पसली पर, टकोर की आवाज मन्द हो जाती है। इन तीनों बिन्दुओं को मिलाने से यकृत् की ऊपर की सीमा बन जाती है (यकृद्वृद्धि Cirrhosis , यकृच्छोथ Hepatitis , विद्रधि Abscess , कैन्सर, कामला का भेद करना चाहिये)।

वमन परीक्षा :-

वमन में अपक्व अन्न हो तो अजीर्ण का, विशेष पीला रंग हो तो मलेरिया का और अम्लीयता विशेष हो तो Gastric Ulcer का संदेह करना चाहिये। आयु के अनुसार बच्चों में प्रायः अजीर्ण के कारण, युवकों में Gastric Ulcer के कारण, गर्भिणी में Pregnancy Taxaemia के कारण, बड़ों में Uraemia तथा आमाशय के कैन्सर के कारण उल्टी हुआ करती हैं।

मल परीक्षा :-

साधारणतः मल हल्के से भूरे रंग का और प्रोटीन के विदाह से उत्पन्न हलकी सी ह गन्ध का, हलका सा क्षारीय (P_H 7.5) दिन भर में दो छटांक की मात्रा में एक बार या दो बार करके आता है। देखने में बन्धा हुआ और मृदु होता है। यदि यह मात्रा में अधिक हो जाय तो अजीर्ण तथा अतिसार समझना चाहिये। बार-बार थोड़ा-थोड़ा आये तो (Colitis) का संदेह करें। यह Bacillary हो तो मल क्षारीय होता है। रंग में श्वेत हो तो Bile की कमी या Fat की अधिकता या कामला Obstructive Jaundice का अनुमान करें। श्वेत तथा झागदार हो तो मात्रा में बड़ा हो तो ग्रहणी रोग का सन्देह करें। Bile की कमी से मल में दुर्गन्ध या विदाह की वृद्धि होती है, मल में खट्टी सी बू आये तो Carbo Hydrate के अपक्व का

सूचक होती है + अर्थात् उसमें अम्ल वृद्धि को सूचित करती है । Amaebic Dysentery के कारण आंत में व्रणों के होने से भी मल में मांस की सी गन्ध आती है तथा मल अम्लीय होता है । मलाशय कैन्सर में भी मल में दुर्गन्ध बढ़ जाता है । गुदा से रक्त आये तो वह लाल रंग का होता है + यदि वह ऊपर से आये जैसे कि Amaebic Dysentery में स्वल्प मात्रा में आता है तो उसके कारण मल का रंग काला हो जाता है ।

श्वास स्थान की परीक्षा :-(Examination of the Respiratory System):-

प्रश्न :-

(१) क्या परिवार में किसी को क्षय या श्वास का रोग हुआ था, शरीर क्रमश: कृश तो नहीं होता जाता, रात को सोते समय पसीना तो नहीं आता ?

(२) खांसी गीली है या खुश्क, उसमें सीटी (Whoop) की आवाज तथा वमन तो नहीं होती, किस समय या किस ऋतु में अधिक उठती है । खांसने से छाती में कहीं दर्द होता है तो किस स्थान पर होता है, (दर्द Pleurisy या हृदय रोग-Angina या Thrombosis - के कारण या कैन्सर के कारण होता है) बलगम गिरता है तो वह किस किस्म का होता है । मात्रा में थोड़ा होता या अधिक होता है । उसमें रक्त तो नहीं होता । किसी करवट पर लेटने से खांसी अधिक नहीं उठती तथा बलगम अधिक तो नहीं गिरती, उर:क्षय तथा Bronchiectasis में बलगम ढीली तथा मात्रा में अधिक होती है, पिछले रोग में कुछ दुर्गन्ध युक्त भी होती है । क्षयरोग में बलगम रक्त रंजित होता है । Lung Abscess में बलगम अधिक मात्रा में गिरता तथा रक्त मिश्रित होता है । फुफ्फुस कैन्सर में बलगम में हलका सा रंग Prunejuice Colour होता है)

(३) श्वास कठिनता का लक्षण होता है तो क्या वह रात को श्रम के बाद विशेष होता है या बिना श्रम के भी प्रतिदिन होता है । (रक्तभार बढ़ा हुआ हो, दौरे में पसीना अधिक आता हो, नाड़ी भरी हुई हो, आयु बड़ी हो, श्वास काठिन्य के साथ खांसी भी शुरु हो जाती हो, फुफ्फुस तलों में Rales भी हों, दौरा रात के प्रथम या मध्य भाग में हो तो हृदय रोग जनित श्वास होता है तथा दिन में भारी श्रम के बाद रात को यह दौरा होता है) साधारण श्वास रोग में जो श्वास नालियों में सोथ के कारण होता है, रक्त भार अधिक नहीं होता । स्वेद अधिक नहीं होता, श्वास काठिन्य के समाप्त होने के बाद खांसी होती है, बलगम वैसी पतली नहीं होती, छोटे छोटे चपकीले खण्डों में निकलती है । बड़ी आयु में चिर-स्थायी वृक्क रोग तथा तज्जनित अम्ल वृद्धि Acidaemia के कारण भी श्वास काठिन्य के दौरे होते हैं तब मूत्र में अलब्युमिन तथा Casts मिलते हैं। उर:शूल गहरे श्वास के साथ छाती में चुभन हो तो पार्श्व शूल, उरोस्थि के

पीछे शूल हो तो हृदय शूल, का सन्देह करना चाहिये । Diaphragme पर चढ़े फुफ्फुसावरण में शूल हो तो वह उधार के कन्धों में या उधार पेट में प्रतीत होता है । इसके कारण हिक्का भी होती है ।

दर्शन (Inspection) परीक्षा :-

रोगी के कपड़े उतार कर उसकी छाती का निरीक्षण करना चाहिये । साधारणत: देखने में छाती का आगे पीछे का व्यास कुछ कम और दांये बांये का व्यास कुछ अधिक होता है । इनका अनुपात लगभग ५-७ का होता है । स्तनों के लेवल पर छाती का माप लगभग ३५ इंच का होता है और श्वास लेने पर यह माप १½ इंच से २ इंच तक बढ़ जाता है । अब यदि देखने में छाती आगे पीछे की दिशा में दबी हुई हो, हंसली की हड्डी के ऊपर नीचे गढ़े हों, पसलियों के बीच के प्रदेश अन्दर धंसे हुये हों अर्थात् पसलियों के बीच की मांस पेशियां सूख गई हों तो उर:क्षय रोग का सन्देह करना चाहिये । फुफ्फुस के जिस भाग में स्नायु भाव-Fibrosis- होता है वह दबा हुआ दीखता है ।

यदि छाती अधिक फूली हुई हो, आगे पीछे का व्यास भी बढ़ा हुआ हो,, परन्तु श्वास लेने के बाद जितना विस्तार और होना चाहिये उतना न हो तो ऐसी छाती को Barrel Shape Chest कहते हैं । इस अवस्था में फेफड़ों में हवा अधिक भरी रहने -Emphysema- रोग का सन्देह करना चाहिये ।

यदि बालक में उरोस्थि (Sternum) आगे को उभरी हुई हो, उसके दोनों और ऊपर नीचे खाई सी हो तो इसे Pearshaped Chest और यदि खाई न हो तो उसे Pigeon Breast कहते हैं । और यह अस्थि शोष रोग (Rickets) का सूचक होती है ।

सांस लेने पर पसलियों के बीच के प्रदेश अन्दर धंस जाते हों तो छोटी श्वास नालियों में अवरोध (Bronchiolitis) का सन्देह करें । श्वास लेने पर छाती के ऊपर के सिरे अच्छी तरह न फुलते हों तो उनमें रोग (Fibrosis या Consolidation) का सन्देह करना चाहिये । फुफ्फुस का जो भाग क्षय रोग या श्वास ज्वर-Pneumonia- से ठोस हो जाता है वह भी श्वास लेने पर नहीं फूलता । फुफ्फुसावरण कोष में जल हो तो वह प्रदेश भी श्वास से भली प्रकार नहीं फुलता । दोनों और छाती फुली हुई रहे, श्वास लेने पर अधिक न फूले तो Emphysema का सन्देह करें ।

श्वास गति :-

स्वस्थ में प्रति मिनट १८ होती है । नाड़ी गति ७२ होती है । इस प्रकार दोनों का अनुमान १:४ का होता है । ज्वरों में प्रति डिग्री तापमान

के पीछे श्वास संख्या २-३ बढ़ती है । नाड़ी संख्या १० बढ़ती है । रक्त में आक्सिजन की मात्रा के कम हो जाने पर श्वास संख्या बढ़ती है । जब जब रक्त को आक्सिजन की आवश्यकता होती है यह संख्या बढ़ जाती है । जैसे हृदय नैर्बल्य, पाण्डुरोग, जीर्णवृक्क रोग में ।

अन्त: तथा वहि: श्वासों में से वहि:श्वास लम्बा दिखाई पड़े तो फुफ्फुस जनित या हृदय जनित श्वास रोग या Emphysema का सन्देह करना चाहिये । निद्रावस्था में Cheyne Stokes Breathing सुनाई पड़े तो हृदय नैर्बल्य (Myocardial Infarct या Fibrosis) या जीर्ण वृक्क रोग (Renal Failure या Uraemia) का सन्देह होना चाहिये । बालक में अन्त:श्वास के साथ कूजन (Stridor) सुनाई पड़े तो उसके कण्ठ में स्तम्भ (Spasm) का संदेह होना चाहिये ।

स्पर्शन परीक्षा :- (Palpation)

बोलते समय कण्ठ के हिलने से छाती की दीवार में कम्पन (Vocal Fremitus) उत्पन्न होता है जिसे हम अपनी हथेली रख कर अनुभव कर सकते हैं । रोगी को कहें कि वह एक-एक, एक ऐसा शब्द बोलता जाय उसमें उसकी छाती की दीवार पर हथेली रखनी चाहिये , जब फुफ्फुस के एक प्रदेश में ठोसपन Consolidation हो या छाती की दीवार के ठीक नीचे छोटी सी गुफा (Cavity) हो तो यह कम्पन बढ़ा हुआ प्रतीत होता है । जब फुफ्फुस और दीवार के बीच में कहीं पर द्रव (Hydrothorax) हो या वायु (Pneumothorax) हो तो यह कम्पन लुप्त हो जाता है ।

टकोर (Percussion) परीक्षा :-

बांये हाथ की मध्यम अंगुली को छाती पर सटती हुई टिका कर उसके बीच की पोर के ऊपर दांये हाथ की मध्यम अंगुली से जोर से टकोरा जाता है और टकोर देते ही ऊपर की अंगुली को उठा लिया जाता है ताकि आवाज साफ हो । पहले एक पसली से दूसरी पसली पर टकोर दी जाती है फिर पसलियों के बीच के प्रदेश पर टकोरा जाता है । इस प्रकार छाती के दोनों ओर आवाज की परस्पर तुलना की जाती है । ऊंची टकोर वाले प्रदेश से मन्द टकोर वाले प्रदेश की ओर जाना चाहिये तथा निचली अंगुली को मन्द टकोर वाले प्रदेश के समानान्तर रखना चाहिये । ऐसा न हो कि हमारी निचली अंगुली का कुछ भाग तो ऊंची टकोर वाले प्रदेश पर और कुछ भाग नीची टकोर वाले प्रदेश पर आ जाये ।

स्वस्थ फेफड़े पर टकोर की आवाज ऊंची (Resonant) होती है । पहले अगली छाती की परीक्षा करनी चाहिये अर्थात् दोनों ओर हंसली की हड्डियों (Clavicles) पर टकोर की तुलना करनी चाहिये । फिर ऊपर से

नीचे की ओर पहले पसलियों, पसलियों और फिर पसलियों के बीच के प्रदेशों पर क्रमश: टकोरना चाहिये।

अब दांई ओर Mammary लाइन अथवा स्तन की रेखा पर टकोरते आयें तो छटी पसली पर आकर यकृत् के आरम्भ हो जाने के कारण टकोर की आवाज मन्द हो जाती है। बांई ओर छाती की हड्डी (Sternum) के ठीक बाहर अर्थात् Lateral Sternal Line पर ऊपर से नीचे टकोरते आयें तो चौथी पसली के इस हड्डी के साथ सन्धि के स्थान पर हृदय आ जाने के कारण टकोर मन्द हो जाती है फिर इसी बांई ओर हंसली के मध्य से नीचे गिरती हुई रेखा (Mid Calvicular Line) पर नीचे को टकोरते आयें तो छटे पर्शुका मध्य (Interspace) में आमाशय के शुरु हो जाने से टकोर की आवाज अधिक ऊंची (Tympanitic) हो जाती है।

अब रोगी को कहें कि वह अपने दोनों हाथ सिर पर रख ले। ऐसी अवस्था में कक्षा प्रदेशों में ऊपर से नीचे की ओर टकोर परीक्षा करनी चाहिये। दांई ओर कक्षा की मध्य रेखा में टकोरते आयें तो आठवीं पसली पर यकृत् के शुरु हो जाने से टकोर की आवाज मन्द हो जाती है। बांई ओर कक्षा-मध्य रेखा में नीचे को टकोरते आयें तो नवमीं पसली पर प्लीहा के आरम्भ हो जाने से टकोर मन्द हो जाती है।

इसके बाद रोगी को कहें कि वह अपने हाथों को दूसरी ओर के कन्धों पर रखे तब पीठ पर रीढ़ की हड्डी और Scapula (अंसफलक) के बीच के प्रदेश में ऊपर से नीचे और बाहर की ओर को टकोरते आयें और दोनों ओर की आवाज की तुलना करें।

दांई ओर Scapula के निचले कोण से गिरती हुई रेखा पर दसवीं पसली पर यकृत् के आ जाने से टकोर मन्द हो जाती है। रीढ़ की हड्डी के पास दसवीं Interspace पर टकोर की आवाज मन्द हो जाती है। इस प्रकार फेफड़े, नीचे की ओर, ग्यारहवीं पसली तक ही अनुभव होते हैं।

फेफड़े छोटे छोटे वायु कोष्ठकों (Air Vesicles) के द्वारा बने होते हैं। इसलिये उनके ऊपर की हुई टकोर की आवाज एक विशेष प्रकार की ऊंची (Resonant) होती है। जहां कहीं भी फेफड़ा ठोस हो जाता है अर्थात् हवा के स्थान पर दूसरा अवयव आ जाता है वहां टकोर की आवाज मन्द हो जाती है। इसके विपरीत जब फेफड़े में रोग के कारण हवा अधिक भरी रह जाती है तो टकोर की आवाज अधिक ऊंची (Hyperresonant) हो जाती है और यदि इन छोटे छोटे वायु कोष्ठकों की दीवारें (Septa) नष्ट हो जायें अर्थात् वहां बड़ी गुफा (Cavity) बन जांय तो उसके ऊपर की हुई टकोर की आवाज अधिक ऊंची (Tympanitic) हो जाती है।

अब यदि एक फेफड़े के ऊपर के सिरे पर अर्थात् आगे Clavicle के नीचे, और पिछली ओर Scapula के ऊपर की ओर टकोरने से आवाज मन्द प्रतीत हो तो वहां के वायु कोष्ठकों में क्षय रोग के कारण द्रव के भर जाने या स्नायु भाव Fibrosis के हो जाने से वहां हवा का प्रवेश कम हो गया है ऐसा समझना चाहिये।

Lobar Pneumonia में जब फेफड़े का नीचे का एक Lobe ठोस हो जाता है तो उस पर की हुई टकोर की आवाज भी मन्द हो जाती है। इसी प्रकार हृदय के किसी कारण से निर्बल हो जाने के कारण जब दोनों फेफड़ों के तलों (Bases) पर द्रव भर जाता है तो उन पर भी टकोर की आवाज मन्द हो जाती है। Pleura के जिस प्रदेश में द्रव भरा (Effusion) हो तो वहां पर भी टकोर की आवाज मन्द होजाती है। बालकों में दोनों Scapulae. के बीच के प्रदेश में टकोर की आवाज मन्द सुनाई पड़े तो Mediastinal Glands के बढ़े हुए होने का सूचक होती है। छाती पर टकोर की आवाज ऊंची हो जाती है। जब फेफड़ों में हवा अधिक भरी हुई हो अर्थात् Emphysema. हो या दीवार के पास ही गुहा Cavity- या फुफ्फुसावरण कोष में वायु अर्थात् Pneumothorax हो।

श्रवण (Auscultation) परीक्षा :-

छाती के ऊपर के प्रदेश में कण्ठ नाली (Trachea) पर अर्थात् Sternum के ऊपर के भाग तथा पीठ पर नीचे के ३-४ Cervical और ऊपर के चार Dorsal Vertebrae पर सुनने से बड़ी बड़ी श्वास नालियों में उत्पन्न होने वाली हौ-हौ (Hau-Hau) की आवाज को Bronchial Breathing. कहते हैं। इसमें पहले अन्त: श्वास की आवाज सुनती है फिर हल्के से व्यवधान के बाद उतनी ही लम्बी, उसकी अपेक्षा कुछ ऊंची, बहि:श्वास की आवाज सुनाई पड़ती है।

बड़ी श्वास नालियों से दूर फेफड़ों पर विशेषत: कक्षा प्रदेश और Scapula के नीचे के प्रदेशों में जहां पर श्वास नालियां बड़ी नहीं होती प्रत्युत वायु कोष्ठक Vesicles विशेष होते हैं तो उनके कम्पन से उत्पन्न होने वाली आवाज को Vesicular Breathing कहते हैं। यह फुफ्फुस में होने वाली कम्पन की आवाज (Murmur) लगातार बनी रहती है। इसमें अन्त:श्वास की आवाज सारी सुनाई पड़ती है। परन्तु बहि:श्वास का प्रथम भाग ही थोड़ा सा सुनाई पड़ता है, उसका पिछला भाग सुनाई नहीं पड़ता है। इसलिये इसमें अन्त:श्वास और बहि:श्वास की लम्बाई का अनुपात ३:१ का होता है।

अब रोग के कारण जब फुफ्फुस का कोई भाग ठोस हो जाता है पर श्वास नालियों के साथ सम्बन्धित रहता है, तब वहां पर सुनने से Bronchial-Breathing. अधिक स्पष्ट हो जाता है जैसे Pneumonia में ठोस

भाग छोटी श्वास नालियों के साथ सम्बन्धित हो तो वहां पर सुनाई पड़ने वाले Bronchial Breathing को Tubular Breathing कहते हैं ।

पुफुस में विद्यमान ऐसी गुहा पर जोकि किसी बड़ी श्वासनाली से सम्बन्धित हो जो एक डबल फूंक (Hau Hau) की आवाज सुनाई पड़ती है और जो खोखले प्रदेश में फूंक मारने के सदृश होती है दोनों फूंकों के बीच व्यवधान होता है + उसे Cavernous Breathing कहते हैं ।

जब Plura में हवा भरी हुई हो अर्थात् Pneumothorax हो और इसके साथ फेफड़े की कोई श्वास नाली भी सम्बन्धित हो तो वहां पर खाली बोतल में फूंक मारने की सी जो आवाज सुनाई पड़ती है उसे Amphoric Breathing कहते हैं ।

फेफड़े पर Vesicular Breathing नार्मल हो अर्थात् न तो अधिक नीचा और न अधिक ऊंचा हो तो पुफुस को स्वस्थ समझना चाहिये ।

जब दोनों फेफड़ों पर यह बढ़ा हुआ हो तो समझना चाहिये कि फेफड़ों की मृदुता कम हुई है, जैसे कि श्वास रोग में हो जाती है । जब यह एक शिखर (Apex) पर बढ़ा हुआ हो तो उधर क्षय रोग का सन्देह करना चाहिये ।

Broncho Vesicular Breathing जब उपर्युक्त दोनों प्रकार की ध्वनियां एक स्थान पर सुनाई पड़ें तो उसे Broncho Vesicular Breathing कहते हैं । साधारणत: पीठ पर चौथे Dorsal Vertebra पर जहां Trachea विभक्त होता है वहां पर सांस की नालियों, तथा वायु कोष्ठकों, दोनों में होने वाली आवाज सुनाई पड़ती है ।

यदि पुफुस का कोई भाग पूर्णतया ठोस हो जाय तो वहां पर Bronchial आवाज सुनाई पड़ती है, Vesicular नहीं । परन्तु यदि कोई पुफुस का भाग ठोस तो हो गया हो परन्तु उसके वायु कोष्ठकों में कुछ हवा प्रवेश भी करती हो तो वहां Broncho Vesicular आवाज सुनाई पड़ती है जिसमें वहि:श्वास की आवाज नार्मल से कुछ दीर्घ होती तथा वहि:और अन्त: श्वास के बीच छोटा सा व्यवधान होता है । इसीलिये यदि यह आवाज एक शिखर (Apex) पर सुनाई पड़े तो क्षय रोग का और तल (Base) में ऐसी आवाज सुनाई पड़े तो Pneumonia या Broncho Pneumonia का सन्देह करें । यदि इसी में वहि:श्वास अन्त:श्वास के समान ही स्पष्ट तथा दीर्घ सुनाई पड़े तो उसे कठोर या Harsh Vesicular Breathing कहते हैं + यह उर:क्षय रोग का सूचक होता है । जब पुफुस पर सुनने से वहि:श्वास अन्त:श्वास की अपेक्षा अधिक दीर्घ सुनाई पड़े तो इसे दीर्घ, वहि:श्वास या Prolonged Expiration कहते हैं । श्वास रोग तथा Emphysema अर्थात् वायु पूर्ण पुफ

रोग में यह लक्षण होता है ।

वाक्कि ध्वनि :-(Vocal Resonance)

जब कोई व्यक्ति एक-एक एक ऐसा शब्द मुख से बोल रहा हो तो फुफ्फुस पर सुनने से कण्ठ में होने वाले शब्द का कम्पन हमें स्टेथस्कोप में सुनाई पड़ता है । यद्यपि स्पष्ट अक्षर नहीं सुनाई पड़ते । इसे वाक्कि ध्वनि (Vocal Resonance) कहते हैं । शब्द के स्पष्ट न सुनने का कारण यह है कि फेफड़े के वायु कोष्ठकों में विद्यमान वायु शब्द का उत्तम वाहक नहीं है । परन्तु जब फुफ्फुस का कोई भाग ठोस हो जाता है जैसे उर:दाय से या फुफ्फुस शोथ से तो श्वास नाली के द्वारा ऊपर से आई हुई आवाज हमें स्पष्ट सुनाई देती है । इसे Bronchophony. कहते हैं । जब बहुत धीरे धीरे मुख के अन्दर बोला हुआ शब्द भी हमें साफ साफ सुनाई पड़े तो इसे Pectoriloquy(Pectus=वक्षः Loqui = बोलना) कहते हैं । ऐसा तभी हो सकता है जब या तो फुफ्फुस का कोई भाग ठोस हो गया हो और वह एक श्वास नाली के साथ सम्बन्धित हो या छाती की दीवार के नीचे ही एक गुहा-Cavity- हो जो किसी श्वास नाली से सम्बन्धित हो। पुरानी खांसी Bronchiectasis में जब श्वास नालियां चौड़ी चौड़ी हो जाती हैं तब भी वाक्कि ध्वनि सुनाई पड़ती है ।

वाक्कि ध्वनि (Vocal Resonance) नहीं सुनाई पड़ती या बहुत कम सुनाई पड़ती है । जब फुफ्फुस के कोष्ठकों में हवा अधिक भरी हो, क्योंकि हवा वाक्कि कम्पन का भलीप्रकार वहन नहीं करती, इसलिये Emphysema या जब Pleura में द्रव भरा हो/ यह द्रव शब्द का वाहक हो जाता है , परन्तु द्रव के कारण फेफड़ा दीवार से दूर हो जाता है इसलिये वाक्कि ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती ।

सीटियां (Rhonchi या खुरहाड़े) :- स्वस्थावस्था में फेफड़े पर सीटियों की आवाज नहीं सुनाई पड़ती जब श्वास नालियां स्तम्भ (Spasm) या शोथ के कारण तंग हो जाती हैं तब उनमें सीटियों की सी ध्वनि उत्पन्न होने लगती है । यदि फेफड़े की छोटी छोटी श्वास नालियां विशेष तंग हों तो अन्त:श्वास के पिछले भाग में ये सीटियां सुनाई पड़ती हैं । (Sibilant or Hissing Rhonchi)/बड़ी बड़ी श्वास नालियों में स्तम्भ (Spasm) या शोथ हों तो अन्त:श्वास में या उसके प्रारम्भिक भाग में सीटियां सुनाई पड़ती हैं । (Sonorous Rhonchi) श्वास रोग में या स्तम्भ युक्त कास रोग में ये सीटियां दोनों ओर के फेफड़ों में व्यापक रूप में सुनाई पड़ती हैं । श्वास रोग में बहि:श्वास कुछ दीर्घ हो जाता है ।

बुद-बुद ध्वनि(Crepitations तथा Rales) वायु कोष्ठकों में चिपचिपे स्राव के उत्पन्न हो जाने के कारण जब उनमें हवा प्रवेश करती है तो

अनेकानेक वायु कोष्ठकों की चिपकी हुई दीवारों के खुलने से एक ऐसी आवाज उत्पन्न होती है जैसे कि कागजों को रगड़ने या बालों के एक गुच्छे को कान के पास रगड़ने से उत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि अन्त:श्वास के अन्त में जब वायु कोष्ठक खुलते हैं तब यह आवाज होती है। इसे Fine Crepitation कहते हैं। यह आवाज विशेषत: Pneumonia की प्रथमावस्था में एक ओर के फेफड़े के निम्न भाग में सुनाई पड़ती है। यदि यह फेफड़े के एक शिखर पर सुनाई पड़े तो उर:क्षय की प्रारम्भिक अवस्था का सूचक होती है।

बड़ी छोटी श्वास नालियों में या श्वास कोष्ठकों में उत्पन्न हुये कफ स्राव में से हवा के गुजरने के कारण जो बुलबुलों के फटने की सी आवाज सुनाई पड़ती है उसे Rales कहते हैं। खांसी में जब रोगी को बलगम पड़ रही हो तब अन्त:श्वास और वहि:श्वास दोनों के साथ बुलबुलों के फटने की सी आवाज Rhonchi के साथ साथ सुनाई पड़ती है + इन्हें Coarse Rales भी कहते हैं। ये उर:क्षय या Bronchiectasis की सूचक होती है।

जब छोटी छोटी श्वास नालियों में कफ का स्राव विशेष होता है जैसे Broncho Pneumonia में तब अन्त:श्वास के अन्त में और वहिश्वास के आरम्भिक भाग में जो Rales सुनाई पड़ते हैं उन्हें Medium Rales कहते हैं।

जब उर:क्षय के कारण फेफड़े के एक शिखर का एक भाग कुछ गल सा रहा हो अर्थात् उसमें Caseous Softening हो रही हो तो वहां भी Fine Rales सुनाई पड़ते हैं।

संघर्ष ध्वनि (Friction Sound):- जब Pleura के आमने सामने के दोनों पृष्ठ उनकी सूजन के कारण से उत्पन्न चिपचिपे स्राव के कारण कुछ खुरदरे से हो गये हों तो अन्त:श्वास के अन्त में जब दोनों पृष्ठ आपस में रगड़ खाते हैं तो एक Friction Sound उत्पन्न होती है। क्योंकि कक्षाप्रदेश में Pleura के दोनों पृष्ठ अधिक संघर्ष में आते हैं इसलिये वहां यह ध्वनि अधिक सुस्पष्ट सुनाई पड़ती है। इसी कारण से इस रोग को पार्श्व शूल भी कहते हैं। यह ध्वनि स्टेथेस्कोप के चेस्टपीस के ठीक नीचे ही उत्पन्न होती हुई प्रतीत होती है।

थूक (Sputum) परीक्षा :-

गाढ़ी बलगम का गिरना श्वास मार्ग के रोग का सूचक होता है। रात भर की संचित हुई बलगम को देखकर इसकी परीक्षा करनी चाहिये। कास रोग में पहले थूक पतला, चेपदार और मात्रा में थोड़ा आता है। इसे Mucoid थूक कहते हैं। दो तीन दिन के बाद बलगम गाढ़ी, झागदार, मात्रा में अधिक और कुछ कुछ पूय से मिश्रित (Mucopurulent) भी हो जाती है। दिन रात में आधी छटांक के लगभग निकलती है।

पुरानी खांसी तथा (Bronchiectasis) में यह थूक गाढ़ी और पूय मिश्रित होती है और बहुधा किसी एक पार्श्व पर लेटने से बहुत सी पूययुक्त गाढ़ी थूक निकलने लगती है तथा आधी एक छटांक से अधिक होती है। इसे Mucopurulent थूक कहते हैं। थूक दुर्गन्ध युक्त हो तो वह पुरानी खांसी या कैन्सर का सूचक होती है।

उर:क्षय रोग में जब फेफड़े में कोई गुहा बन जाती है तो बटन के आकार के एक पूय के ढ़ेर के रुप में (Nummular) गिरती है। पुफ्फुस विद्रधि में दुर्गन्धित पूय युक्त बलगम गिरती है।

हृदय दौर्बल्य जनित पुफ्फुस शोथ (Pulmonary Oedema):-में साबुन के पानी के समान झागदार मात्रा में अधिक थूक आती है। इसे Serous थूक कहते हैं।

Pneumonia में रक्त मिश्रित लाल रंग की चिपकीली सी थूक (Rusty)आती है उसे Fibrinous थूक कहते हैं। सहसा कई छटांक तक पूय युक्त थूक निकल पड़े तो पुफ्फुस विद्रधि Abscess का सन्देह करना चाहिये। इसे Purulent थूक कहते हैं।

उर:क्षय रोग में किंचित रक्त से मिश्रित थूक आती रहती है और कभी कभी तो कत्थे के पानी जैसी केवल रक्त की ही थूक आती है। थूक में Elastic Fibres मिलें तो वे पुफ्फुस के अवयव के मृत हो जाने के अर्थात् उर:क्षय रोग के सूचक होते हैं। थूक में Eosinophil Cells मिलें तथा थूक में सागुदाने जैसे दाने भी दिखाई पड़ें तो श्वास रोग Asthma का निश्चय करना चाहिये।

~~[illegible]~~

~~[illegible]~~

~~[illegible]~~

श्वास नालियों में कैन्सर की अवस्था में या वृद्धावस्था में Broncho Pneumonia के कारण जो हलके रंग की थूक आती है उसे Prunejuice Coloured कहते हैं।

हृदय परीक्षा :- (Examination of the Heart):-

प्रश्न :-

पहले कभी सन्धिक ज्वर (Rheumatic Fever) तो नहीं हुआ । बालक में हृदय रोग हो तो पूछना चाहिये कि उसे पहले Tonsillitis तो नहीं हुआ ।

श्वास काठिनता का लक्षण हो तो वह कब होता है । चलने फिरने से होता है या पड़े पड़े भी होता है । (हृदय रोग जनित श्वास काठिन्य श्रम से होता है या ऊपर चढ़ने से होता है, रोग अधिक हो तो Orthopnoea होता है) रात को कभी इसका दौरा तो नहीं होता अर्थात् Cardiac Asthma तो नहीं होता जो रक्त भार जनित हृदय रोग या वाम हृदयातिवृद्धि में होता है । सीधे पड़े नींद आ जाती है या ऊंचे तकिये लगाकर ही नींद आती है । सोते समय Cheyne Stokes Breathing तो नहीं होता (Arteriosclerosis तथा उसके कारण वाम हृदय की निर्बलता का सूचक है) ।

छाती में दर्द उठता है तो कहां पर और किधर तक जाता है। श्रम से होता है या पड़े पड़े भी होता है । भोजन बाद या आवेश के कारण या सर्दी के लगने से तो नहीं होता (Angina क्षणभर, Thrombosis का दर्द घण्टों तक रहता है) ।

हृदय कम्प होता है तो किस बात से होता है और कितनी देर रहता है । (हृदय कम्प बहुधा वातिक नैर्बल्य Cardiac Neurosis या Instable N.System या शीघ्र घबराहट के कारण होता है । थोड़ी देर रहता है । हृदय शूल या श्वास काठिन्य के लक्षणों में गौण रूप में भी हृत्कंप का लक्षण होता है ।

हृदय निर्बलता में पीछे की ओर रक्त के रुक जाने से खांसी तो नहीं उठती या पैर तो नहीं भारी हो जाते अथवा अग्नि तो मन्द नहीं हो जाती । (दक्षिण हृदय निर्बल हो जाने से रक्त को आगे पुफ्फुस में भली प्रकार नहीं फेंकता तो पहले शिराओं और फिर सूक्ष्म सिराओं Capillaries में रक्त भार बढ़ जाता है तो उसमें से अधिक द्रव भाग बाहर निकलने लगता है । इसके अधिक निकलने पर पाद श्वयथु हो जाता है । पुफ्फुस की सूक्ष्म सिराओं में से द्रव के Alveoli या वायु कोष्ठकों में अधिक भर जाने से पुफ्फुस श्वयथु - Pulmonary Oedema - होकर खांसी होती है । वाम हृदय नैर्बल्य के कारण यह लक्षण पहले प्रारम्भ होता है) ।

दर्शन तथा स्पर्शन परीक्षा :-

रोगी के दाईं ओर बैठ के अपने हाथ का पौंचा हृदय प्रदेश पर

रखकर हृदय के स्पन्दन को अनुभव करना चाहिये। साधारणत: हृदय स्पंदन प्रदेश बाईं ओर (Apex Beat) पांचवें पर्शुका मध्य (Inter Space) में मध्य रेखा से ३ या ३$\frac{1}{2}$ इंच हटके या Mid Clavicular Line से आधा इंच की ओर होता है। जब हृदय स्पंदन प्रदेश पसली के पीछे होता है तो वह नज़र नहीं आता।

यदि स्पंदन प्रबलता से हो रहा हो और कुछ नीचे खिसका हुआ हो तो वाम कोष्टक में अतिवृद्धि का अनुमान करना चाहिये। शरीर में रक्त भार के बढ़ जाने या Aortic Regurgitation से ऐसा होता है। गलग्रन्थि प्राबल्य Hyperthyroidism में भी यह कुछ प्रबल होता है। स्पन्दन अधिक निर्बल हो तो हृदय में क्षीणता या शोथ (Myocardial Degeneration या Myocarditis) का सन्देह करना चाहिये। इनमें से पहली अवस्था में Dilatation के कारण कुछ बाहर की ओर खिसक जाता है। Epigastrium में स्पन्दन दिखाई पड़े तो हृदय के दांये कोष्ठक में अतिवृद्धि का अनुमान करना चाहिये ग्रीवा में दोनों ओर Jugular Veins में स्पन्दन दीखता हो तो हृदय दौर्बल्य (C.C.Failure) का अनुमान करना चाहिये।

टकोर (Percussion) परीक्षा :-

हृदय के किनारे फेफड़ों से ढके होते हैं। अत: उसकी सीमा का पता प्रबल टकोर से लगाना चाहिये। बांईं सीमा का पता लगाने के लिये दूसरी-तीसरी-चौथी Inter Space में बाहर से अंदर की ओर टकोरते आयें जहां टकोर मन्द हो जाये वहां हृदय की सीमा आरम्भ हुई समझनी चाहिये। तीसरी Inter Space में यह सीमा Perasturnal Line पर होती है। इस बिन्दु को हृदय के निचले शिखर (Apex) से मिला दें तो बांईं सीमा बन जाती है जो वाम कोष्ठक से बनी हुई है। ऊपर की सीमा के जानने के लिये दूसरी Interspace में Anterior Axillary Line से अन्दर की ओर टकोरते आयें तो आवाज ऊंची ही रहती है। फिर इसी प्रकार तीसरी Inter Space में टकोरते आयें तो जहां पर आवाज मन्द हो जाती है उसे ऊपर की सीमा समझना चाहिये। दाहिनी सीमा का पता लगाने के लिये यकृत की सीमा से ऊपर के Inter Spaces में निचली अंगुली को छाती की हड्डी Sternum के समानान्तर रखते हुए बाहर से अन्दर की ओर टकोरते आयें। साधारणत: चौथी पसली पर यह सीमा छाती की हड्डी (Sternum) के Lateral Border से कुछ ही बाहर होती है। तीसरी पसली पर इस सीमा का सबसे ऊपर का सिरा Perasternal Line पर होता है। बांईं और दांईं सीमाओं के ऊपर के सिरों को मिला देने से ऊपर की सीमा आ जाती है।

अब यदि हृदय बांईं ओर और नीचे की ओर कुछ बढ़ा हुआ पाया जाये तो वाम हृदय में अति वृद्धि (Hypertrophy) का अनुमान करना

चाहिये । यदि दांई और बांई और और नीचे की ओर तीनों ओर हृदय बढ़ा हुआ हो तो सारे हृदय को बढ़ा हुआ समझना चाहिये ।

श्रवण (Auscultation) परीक्षा :-

हृदय के निचले शिखर (Apex) पर Mitral Valve की आवाज सुनी जाती है । इसलिये इस प्रदेश को वाम कपाटी क्षेत्र Mitral Area कहते हैं । Aortic Valve की आवाज दूसरी दाहिनी पसली या दूसरे पर्शुका मध्य के अन्दर के सिरे पर सुनी जाती है । इसे Aortic ~~Xx~~Area महाधमनी कपाटी क्षेत्र कहते हैं । Pulmonary Valve की आवाज दूसरे या तीसरे बांये Inter Space के अन्दर के सिरे पर सुनी जाती है । इसलिये उसे Pulmonary Area पुफुस-धमनी-कपाटी-क्षेत्र कहते हैं । Tricuspid Valve की आवाज उरोस्थि के निचले सिरे पर सुनी जाती है । इस प्रदेश को Tricuspid Area कहते हैं । हमें इसी क्रम से इन प्रदेशों पर हृदय की आवाज को सुनना चाहिये । प्रत्येक प्रदेश पर हृदय के दोनों शब्द सुनाई पड़ते हैं । प्रथम शब्द तो Mitral और Tricuspid Valves के बन्द होने और दोनों Ventricles (क्षेपक कोष्ठों) में संकोच होने के कारण होता है । यह शब्द Mitral तथा Tricuspid क्षेत्रों पर स्पष्ट सुनाई पड़ता है । हृदय का दूसरा शब्द जो प्रथम शब्द से कुछ छोटा ~~छोटा~~ और तेज होता है Aortic तथा Pulmonary Valves के ~~ब~~ बन्द होने से उत्पन्न होता है तथा शरीर और फेफड़ों की धमनियों के अन्दर विद्यमान दबाव (Pressure) के कारण होता है । यह शब्द Aortic तथा Pulmonary क्षेत्रों पर विशेष स्पष्टता से सुनता है । सुनते समय इस बात का ध्यान देना चाहिये कि प्रथम शब्द की ऊंचाई और लम्बाई कैसी है ।

प्रथम शब्द की ऊंचाई बढ़ जाती है जब Thyrotoxicosis हो या नाड़ियों और हृदय की निर्बलता के कारण कम्प हो अर्थात् Neurocirculatory Asthenia के कारण Tachycardia हो अथवा Mitral Stenosis के कारण वाम हृदय में अति वृद्धि हो । इसी प्रकार रक्त भार के बढ़ने से वाम हृदय बढ़ा हुआ हो तो भी श्रम करने पर प्रथम शब्द लम्बा और ऊंचा सुनाई पड़ता है । हृदय के विक्षोभ शील होने पर भी प्रथम शब्द प्रबल हो जाता है ।

प्रथम शब्द की ऊंचाई और लम्बाई कम हो अर्थात् Ventricles का संकोच निर्बल हो तो हृदय के मांस ~~ब~~ में क्षीणता (Degeneration) का अनुमान करना चाहिये । किसी कारण से Carditis या Myocardial Toxaemia हो तो भी प्रथम शब्द निर्बल हो जाता है । Vasomotor Failure हो या Shock हो या रक्त भार गिर गया हो या Emphysema के कारण हृदय ~~दब~~ दब गया हो तो भी प्रथम शब्द निर्बल हो जाता है । हृदयमांस

में Infarction हो तो भी यह शब्द मन्द होता है ।

द्वितीय शब्द Aortic क्षेत्र पर ऊंचा सुनाई पड़े तो शरीर में रक्त भार वृद्धि अर्थात् Arterio Sclerosis तथा चिरस्थायी वृक्क रोग का अनुमान करना चाहिये । यदि द्वितीय शब्द Pulmonary क्षेत्र पर ऊंचा हो तो फेफड़ों में रक्त भार की अधिकता अर्थात् वाम हृदय की निर्बलता (Left Heart Failure) Mitral Stenosis, Mitral Regurgitation, Pneumonia, Emphysema, Fibroid Phthisis, Pulmonary atheroma का सन्देह करना चाहिये ।

द्वितीय शब्द Aortic क्षेत्र पर निर्बल होता है जब शरीर में रक्त भार घटा हुआ होता है या जब रक्तवाहिनियों की सहज संकोच शक्ति घट जाती (Peripheral Failure) है । Pulmonary क्षेत्र पर इस शब्द की मन्दता दक्षिण हृदय की निर्बलता का सूचक होती है ।

फूत्कार :- (Murmur)

यदि फुत्कार या Murmur प्रथम शब्द के साथ सम्बन्धित हो या द्वितीय शब्द से पहले पहले सुनाई पड़े तो उसे Systolic Murmur कहते हैं । यदि द्वितीय शब्द के साथ सम्बन्धित हो या प्रथम शब्द से पहले पहले सुनाई पड़े तो उसे Diastolic Murmur कहते हैं ।

तीव्र ज्वरों में जैसे Rheumatic Fever में प्रथम शब्द के स्थान पर सुनाई पड़ने वाली मृदु फुत्कार को जो किसी दिशा की ओर न जाता हो Myocardial Murmur कहते हैं । ज्वर में Mitral छिद्र के निर्बल होकर चौड़ा हो जाने से हृदय संकोच के समय कुछ रक्त के वापिस हो जाने से यह फुत्कार उत्पन्न होता है । ज्वर के बाद हृदय मांस के स्वस्थ हो जाने पर यह फुत्कार ठीक हो जाता है ।

Organic Murmur:-

(क) Mitral Area पर सुनाई पड़ने वाला फुत्कार या Systolic Murmur:-इस क्षेत्र पर संकोच के समय बांये क्षेपक से दांये ग्राहक में कुछ रक्त के लौटने से प्रथम शब्द के स्थान पर ऐसा मृदु फुत्कार सुनाई पड़े जो कक्षा की ओर जाता हो और क्रमशः क्षीयमाण (Diminuendo) हो तो Mitral Regurgitation का सन्देह करना चाहिये ।

(ख) Diastolic Murmur :- Mitral क्षेत्र पर ही प्रथम शब्द से पहले (Presystolic Murmur) Apex के कुछ अन्दर की ओर ४ थें या तृतीय पर्शुका मध्य में ~~xxxxxx~~ वक्षोस्थि के पास एक कर्कश (Harsh) फुत्कार सुनाई पड़े जो तंग हुई कपाटिका में ग्राहक कोष्ठ में से आते रक्त के द्वारा उत्पन्न कम्पन से होता है तथा जो किसी दिशा विशेष में न जाता हो तो Mitral

Stenosis का सन्देह करना चाहिये । यह क्रमशः वर्धमान(Crescendo) किस्म का होता है । अवरोध जनित(Obstructive) फुत्कार कर्कश हुआ करता है । व्यायाम के बाद यह फुत्कार अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ता है ।

(क) Aortic Area पर सुनाई पड़ने वाला फुत्कार :-

(क) Systolic Murmur :- Aortic प्रदेश पर अर्थात् दाईं दूसरी पसली के या Inter Space में अन्दर के सिरे पर प्रथम शब्द के साथ एक कर्कश फुत्कार सुनाई पड़े जो ग्रीवा में दोनों ओर Carotid Artery के साथ साथ ऊपर जाता हो तो Aortic Stenosis का सन्देह करना चाहिये (यह आमवातिक Rheumatic हो सकता या बड़ी आयु में इस कपाटी की पंखुड़ियों में Atheroma या Calcification के कारण हो सकता है) ।

(ख) Diastolic Murmur :- Aortic प्रदेश पर द्वितीय शब्द के साथ मृदु फुत्कार सुनाई पड़े जो उरोस्थि के बांये किनारे के साथ साथ नीचे की ओर जाता हो तो इसे Aortic Regurgitation समझना चाहिये ।(यह फुत्कार फिरंग जनित महा धमनी रोग या Syphilitic Aortitis में जब Aorta शिथिल हुआ २ या फैला हुवा होता है या Arteriosclerosis का रोग शरीर में होता है तब होता है ~~xxxxxxx~~ । इसमें संकोच कालिक भार ऊंचा, विश्राम कालिक भार नीचा होता, श्रम करने पर श्वास कृच्छ्रता हो जाती है) ।

Pulmonary Area पर भी Systole के स्थान पर कभी कभी फुत्कार सुनाई पड़ती है । परन्तु वह प्रायः Functional Murmur ही होती है अर्थात् Pulmonary Artery के फैल जाने तथा उसमें रक्त के बहाव के बढ़ जाने से होती है + अथवा पाण्डु रोग का सूचक होती है ।

वाम हृदय नैर्बल्य (Left Heart Failure) की परीक्षा :-

हृदय पोषक धमनियों के रुग्ण होने या रक्त भार वृद्धि के उपद्रव रूप में रात को लेटे लेटे Pulmonary Veins में रक्त भर जाने से फुफ्फुस में श्वयथु (Pulmonary Oedema) हो जाता है, वाम हृदय फेल होने लगता है । उस समय दर्शन के द्वारा श्वास की तीव्रता दीखती है । चेहरे पर चिन्ता का भाव दीखता है । छाती कुछ कम हिलती है । Apex Beat निर्बल होती (Tic-tac Rhythm) और हृदय के कुछ शिथिल और बड़े हो जाने के कारण नीचे और बाहर की ओर खिसकी होती है ।

स्पर्शन परीक्षा :-

Vocal Fremitus (वाचिक कम्पन) घटा हुआ होता है ।

हृदय गति और नाड़ी गति तीव्र होती है । नाड़ी का आकार (Volume) तथा तनाव (Tension) और सामान्य रक्त भार (B.P.) ये सब घटे हुये होते हैं ।

टकोर परीक्षा :-

टकोर की आवाज की ऊंचाई घटी हुई होती है ।

श्रवण परीक्षा :-

हृदय का प्रथम शब्द निर्बल सुनाई पड़ता है । Pulmonary क्षेत्र में द्वितीय शब्द ऊंचा होता है क्योंकि फुफ्फुसों में रक्त अधिक होता है । Aortic क्षेत्र पर द्वितीय शब्द, शरीर के रक्त भार पर निर्भर है । छाती पर का Vesicular Sound घटा हुआ होता है । फेफड़ों के तलों पर Rales की ध्वनि सुनाई पड़ती है ।

दक्षिण हृदय दौर्बल्य (Right Heart Failure) की परीक्षा :-

चिर स्थायी फुफ्फुस रोगों या Pulmonary Embolism के कारण दक्षिण हृदय निर्बल होता है ।

दर्शन, स्पर्शन द्वारा परीक्षा :-

गिट्टे भारी दिखाई पड़ते हैं । वृक्कों को Oxygen कम मिलने से मूत्र कम बनता है और वह गहरे रंग का होता है । उसमें Albumin भी होता है । यकृत् में रक्त के अधिक मात्रा में रुक जाने से वह आकार में बड़ा हो जाता है । उस पर वैसे भी दर्द रहता है । दबाने से दर्द अधिक होता है । Portal रक्तवाहिनियों में रक्त के भर जाने से जलोदर भी हो जाता है । क्षुधा कम होती है और अफारा तथा मलबन्ध रहते हैं । चेहरे पर नीलापन Cyanosis रहता है । शिर में रक्त के रुकने से शिर दर्द, निद्रानाश, अरति या बेचैनी के लक्षण रहते हैं । Apex Beat Mid-Calvicular Line से बाहर की तरफ खिसका होता है और निर्बल होता है । नाड़ी तीव्र, निर्बल होती, रक्त भार घटा हुआ होता, शिराओं- Veins- में रक्त अधिक भरा होता है । Jugular Veins भरी हुई हुई दीखती हैं ।

श्रवण परीक्षा :-

हृदय का प्रथम शब्द दूसरे शब्द जैसा ही छोटा हो जाता है । Pulmonary क्षेत्र पर दूसरा शब्द ऊंचा सुनाई पड़ता है ।

व्यायाम क्षमता :- Exercise Tolerance:-

यदि व्यक्ति एक टांग पर २० बार कूद लगा ले तो उस व्यायाम के समाप्त करते ही उसकी नाड़ी परीक्षा करने पर उसमें १०-२० की वृद्धि ही होनी चाहिये और यह वृद्धि भी आराम करने पर २ मिनट में जाती रहनी चाहिये । ऐसा

न हो तो हृदय को रुग्ण जानना चाहिये ।

नाड़ी परीक्षा :-

(क) नाड़ी देखने के लिये रोगी की Radial Artery पर अपने दाहिने हाथ की तीनों अंगुलियां रखनी चाहियें । पहले तो नाड़ी गति(Rate) प्रति मिनट देखनी चाहिये । साधारणत: १ वर्ष की आयु तक यह १२० होती है । २ वर्ष की आयु तक १०० होती है । बाल्यावस्था में ८० के लगभग फिर ७२ के लगभग रहती है । ६० वर्ष की आयु के बाद कुछ बढ़ जाती है और ८० के लगभग होती है ।

नाड़ी गति बढ़ जाती है (१) जब शरीर में पक्ति कर्म या पित्त कर्म (Metabolism) बढ़ा हुआ हो जैसे क्षय रोग में,ज्वरों में,Thyrotoxicosis में । ज्वर भी प्राय: तभी होता है जब शरीर में कहीं पूय हो । इस प्रकार ज्वरों में जब तापमान एक डिग्री बढ़ता है तो नाड़ी संख्या १० बढ़ जाती है । (२) ज्वर न हो और नाड़ी गति बढ़ी हुई हो तो Toxaemia अर्थात् Toxicmyocarditis का सन्देह करना चाहिये । (३) हृदय मांस रुग्ण हो या पाण्डुता हो, रक्त स्राव हुआ हो तो भी नाड़ी गति बढ़ जाती है । जितना ही प्रति स्पन्दन में रक्त आगे कम जाता है उतना ही गति बढ़ जाती है । (४) वायु रोगों अर्थात् Neuro Circulatory Asthenia (Effort Syndrome) हिस्टीरिया, चिन्ता-रोग (Neurasthenia) में भी नाड़ी गति बढ़ जाती है । Sympathetic नाड़ी मण्डल की उत्तेजना से भी बढ़ जाती है । (५) काफी, चाय, मद्य, तम्बाकू, बैलाडोना, Thyroid, Adrenaline आदि के प्रयोग से भी नाड़ी गति बढ़ जाती है ।

नाड़ी गति घट जाती है । (१) कुछ एक विषों के शरीर में फैल जाने से जैसे Jaundice (कामला) जीर्ण वृक्क रोग (Uraemia) Myxoedema, मधुमेह (Diabetes Mellitus) की विषों से । (२) हृदय में फैट के बढ़ जाने से या हृदय मांस के क्षीण हो जाने अर्थात् Senile Heart के कारण । (३) मूर्च्छा अर्थात् Vasovagal Attack से (४) शरीर में धातु पक्ति कर्म के कम हो जाने से जैसे अधिक सर्दी लग जाने पर या अधिक निर्बल हो जाने पर या Hypothyroidism गल ग्रन्थि मांद्य में । (५) Intracranial Pressure के बढ़ जाने से (Meningitis मस्तिष्क रक्त स्राव- अर्बुद) ।

(ख) नाड़ी का प्रसार (Volume) देखना चाहिये । अर्थात् नाड़ी बड़ी है या छोटी है या उसकी लम्बाई चौड़ाई कैसी है यह देखना चाहिये । स्वस्थावस्था में नाड़ी का प्रसार या आकार मध्यम दर्जे का होता है । न वह अधिक बड़ी

होती है और न अधिक छोटी होती है । हृदय के प्रत्येक स्पन्दन में जितना रक्त शरीर में जाता है उतने प्रकार या आकार की नाड़ी होती है । प्रत्येक स्पन्दन में रक्त शरीर में अधिक जाय तो नाड़ी बड़ी होती है / कम जाय तो नाड़ी छोटी होती है । परिश्रम करते समय तथा ज्वर के समय जब शरीर को रक्त की ज्यादा जरूरत होती है तो प्रत्येक स्पन्दन में रक्त अधिक जाता है जिससे नाड़ी का उठाव और उसका टिकाव दोनों ज्यादा होते हैं । (Bounding Pulse) जब धमनियां मृदु होती हैं जैसे प्रारम्भिक आयु में और हृदय का स्पन्दन तीव्र होता है तो स्पष्ट है कि नाड़ी का Volume अधिक होता है । इसी प्रकार यदि वाम हृदय आकार में बढ़ा हुआ है तब भी नाड़ी का Volume बढ़ा हुआ होता है + परन्तु ऐसा बड़ी आयु में होता है + और उस समय धमनियां मृदु न रहकर कठोर हो जाती हैं, इसलिये उस अवस्था में नाड़ी का Volume तो बढ़ा हुआ होता है किन्तु नाड़ी का स्पर्श कठोर होता है । (नाड़ी अधिक कठोर हो तो स्पष्ट है ऐसी अवस्था में मस्तिष्क में या नाक से रक्त स्राव हो सकता है) Aortic Regurgitation में भी वाम हृदय के बड़े होने से Volume बड़ा होता है । इसके विपरीत जब हृदय के प्रत्येक स्पन्दन में आगे रक्त कम जाता है जैसे Mitral Stencsis में या Shock में या हृदय दौर्बल्य C.C.Failure में होता है तब Volume कम हो जाती है ।

(ग) नाड़ी परीक्षा में तीसरी बात नाड़ी की मृदुता या कठोरता देखी जाती है । युवावस्था तक नाड़ी मृदु होती है और अनुभव भी नहीं होती परन्तु बड़ी आयु में कुछ तो स्वभावत: कुछ मानसिक तनाव के अधिक रहने के कारण उसके कठोर हो जाने से वह संकोच तथा विश्राम दोनों समयों में स्पष्ट अनुभव होती है । यदि धमनी काठिन्य (Arterio Sclerosis) हो तो नाड़ी बढ़ी हुई रस्सी की तरह अनुभव होती है । धमनियों के कठोर हो जाने से अर्थात् अपने सामने रुकावट के बढ़ जाने से Ventricles को अधिक कार्य करना पड़ता है जिससे वे बड़े हो जाते हैं । नाड़ी की कठोरता को देख कर उसमें हर समय विद्यमान दबाव (Tension) का पता लगता है । इसे ही हम Diastolic Pressure कहते हैं । हृदय के प्रत्येक स्पन्दन से नाड़ी में जो दबाव और बढ़ जाता है उसे हम संकोच कालिक नाड़ी भार कहते हैं । अब जितने दबाव से नाड़ी का धमन बन्द हो जाता है उसे हम नाड़ी का बल या दबाव (Pulse Pressure या Force) कहते हैं । बड़ी आयु में ये दोनों (Tension या काठिन्य तथा Pulse Pressure) या नाड़ी बल) बढ़ जाते हैं ।

(घ) नाड़ी देखते समय नाड़ी की गति सम है या विषम है यह भी देखा जाता है । साधारणत: सब नाड़ियों का उठाव एक जितना होता है और उनके

बीच के अन्तर भी एक जितने होते हैं। जब नाड़ियाँ के उठाव भी भिन्न भिन्न आकार के हों और उनके बीच के अन्तर भी भिन्न भिन्न विस्तार के हों तो Auricular Fibrillation का सन्देह करना चाहिये। जब कोई नाड़ी बीच में लुप्त हुई २ दिखाई पड़े तो Heart Block का सन्देह करना चाहिये। जब कोई कोई Beat उचित समय से पहले ही होती प्रतीत होतो Premature Systole का सन्देह करें। यदि नाड़ियां छोटी छोटी और शीघ्र गामी हों तो हृदय कम्प Tachycardia का सन्देह करें।

Dicrotic Pulse: (सर्प गति नाड़ी)

साधारणतः नाड़ी पहले उठती है और फिर गिरती है। परन्तु गिरने से ठीक पहले फिर उसमें एक छोटा सा उठाव हुआ करता है जो धमनियों में, रक्त के अन्दर, पीछे की ओर एक लहर के उठने से उत्पन्न होता है। इसे Dicrotic Wave Twice Beating नाड़ी कहते हैं। साधारणतः तो यह छोटा उठाव ~~छछछ~~ हमारी अंगुली को विशेष प्रतीत नहीं होता परन्तु जब निर्बलता के कारण से धमनियां अति मृदु हुई २ हों उनमें हर समय रहने वाला दवाव (Tension) बहुत गिरा हुआ हो, दूसरे शब्दों में Peripheral Resistance बहुत कम हो और दूसरी ओर ज्वर के कारण हृदय का स्पन्दन प्रबल हो तो रक्त के अन्दर पीछे की तरफ उठने वाली यह लहर Dicrotic Wave अधिक स्पष्ट हो जाती है।

Water Hammer Pulse जब नाड़ी का उठाव ~~छ~~ तो अधिक हो परंतु उसमें स्थिरता न हो वह सहसा ही गिर जाय तो इसे Water Hammer Pulse या Collapsing P. कहते हैं। यह Aortic Regurgitation का सूचक होती है। जब नाड़ी उठती भी मन्दता से है, गिरती भी मन्दता से है तब इसे Anacrotic Pulse कहते हैं। स्पष्ट है Mitral Stenosis में ऐसी नाड़ी होती है। निर्बल नाड़ी Thready Pulse नाड़ी गति तीव्र हो, उठाव छोटा हो तो इसे Thready कहते हैं। हृदय मांस के रोग तथा प्रान्तीय रक्त संचार (Peripheral Circulation निर्बल हो) (Syncope) तो ऐसी नाड़ी होती है। रक्त भार (Blood Pressure) परीक्षा:- Manometer को अपने सामने रख के उसके Armlet को उर्ध्व बाहु पर लपेट देना चाहिये। फिर पम्प के Valve को बन्द करके Armlet में हवा भरते जांय जिससे मैनोमीटर का पारा लगभग दो सौ के अंक तक पहुंच जाये। फिर स्टेथस्कोप के चैस्ट पीस को कोहनी के कुछ ऊपर Brahchial Artery पर रख के Valve को थोड़ा खोल के हवा को Armlet में से निकलने दें। इससे पारा नीचे गिरना शुरु हो जायगा। जिस अंक पर हमें "टिक-टिक" की ऐसी आवाज सुनाई पड़ने लगे उसे नोट कर लें यह Systolic Pressure है। इसके बाद जब तक पारा गिरता जाय टिक टिक की आवाज सुनते रहें। जिस अंक पर यह आवाज बन्द हो जाय उसे भी

यह धमनी में हर समय पर रहने वाला भार है इसलिये इसको कोई कंपन नहीं होता
नोट कर लें। इसे Diastolic Pressure कहते हैं। प्राय: बिस्तरे से उठने पर जो रक्त भार होता है वह वास्तविक(Basal B.P.) होता है।

अर्थात् धमनी को धकेलने के लिये पड़ता है
स्वस्थ व्यक्ति में Systolic Pressure १०० से १४० तक होता है। और Diastolic Pressure ६० से ९० तक M.M.of Mercury होता है। इन दोनों के बीच में जो अन्तर है उतने को नाड़ी का दबाव (Pulse Pressure) समझना चाहिये। साधारणत: यह ४०-५० M.M.of Mercury के लगभग होता है। इन तीनों का अनुपात प्राय: ३:२:१ का होता है।

यदि Systolic Pressure १५० से ऊपर ही रहे और Diastolic १०० से ऊपर रहे तो इसे Hypertension कहते हैं और जीर्ण वृक्क रोग(C.Nephritis, Pyelonephritis) धमनी काठिन्य तथा वाम कोष्ठक में अति वृद्धि (Hypertrophy) का सन्देह करना चाहिये। Pregnancy Toxaemia से भी ऐसा हो सकता है। Diabetes से भी रक्त भार बढ़ जाता है। भ्रमण और व्यायाम के न करने और अधिक आहार लेते रहने से भी ऐसा हो जाता है। Vasoconstriction से यह बढ़ता Vasodilatation से यह घटता है। छोटी आयु में रक्त भार वृद्धि का रोग वृक्कों में जीवाणु संक्रमण (Infection) के कारण होता है। Diastolic भार १३० के लगभग या ऊपर हो जाय तो चिन्ता जनक समझना चाहिये। Systolic ६० से नीचे आ जाय तो वह भी चिन्ता जनक है। दूसरे शब्दों में Diastolic भार की वृद्धि अधिक चिन्तनीय होती है। इसी प्रकार Systolic भार की अधिक न्यूनता हो जाय तो वह भी चिन्ता जनक होती है।

रक्त भार घटा हुआ हो तो कई व्यक्तियों में यह स्वाभाविक होता है। किसी मार्ग से अधिक रक्त निकल जाने, बहुत दस्तों के लग जाने और Peripheral Circulatory Failure अर्थात् Shock (धक्के) के लगने पर या धूप के लग जाने Heat Exhaustion या मूर्छा (Vasovogal Syncope) में भी रक्त भार गिर जाता है। Left Ventricle के निर्बल हो जाने से जैसे Coronary Thrombosis से या तीव्र ज्वरों में Toxic Myocarditis से भी रक्त भार गिर जाता है। शरीर के पोषण की कमी से भी रक्त भार कम रहता है।

मूत्र सम्बन्धी परीक्षा :-

प्रश्न :-

यदि वृक्क रोग (Nephritis) का सन्देह हो तो पूछें कि पहले Tonsillitis तो नहीं हुआ तथा प्रात: काल आंखों पर मारीफ तो नहीं आ जाता। देखें कि चेहरे पर पाण्डुता तो नहीं, कटि प्रदेश (Lumber Region) पर दर्द तो नहीं होता या वहां से दर्द उठकर अण्डकोष की तरफ तो नहीं जाता।

रोगी बड़ी आयु का हो और जीर्ण वृक्क रोग का सन्देह हो तो पूछें किसिर में दर्द तो नहीं होता। कभी उलटी तो नहीं आ जाती, या हिचकी तो नहीं आती या दृष्टि धुन्धली तो नहीं होती जाती। दिन में पहले ही निद्रा तो नहीं आ जाती या रात्रि में जल्दी जल्दी निद्रा तो नहीं टूट जाती। रक्तभार देखना चाहिये। हृदय में विशेषत: वाम हृदय में वृद्धि तो नहीं। मूत्र दिन रात का मिलकर अधिक तो नहीं आता। अधिक प्यास तो नहीं लगती। अधिक मूत्र आता हो तो रात में या दिन में कब अधिक आता है। (अधिक आता हो तो मधुमेह, जीर्ण वृक्क रोग, धमनी काठिन्य रोग का भेद करना चाहिये)। कम आता हो तो तीव्र वृक्क शोथ Nephritis हृदय दौर्बल्य में भेद करें। दर्द होता हो तो मूत्र आने से पहले होता है। (मूत्र मार्ग Urethra में रोग हो तो होता है। प्रोस्टेट वृद्धि में मूत्र देर से आरम्भ होता है, वेगमन्द होता है। रात को बार बार आता है) या मूत्र आते समय होता है (Prostatitis या Cystitis) या अन्त में होता है (Bladder Stone)।

मुहुर्मुहु मूत्र (Frequency) तो नहीं आता। (Pyelitis - मूत्र में पूय भाव-होतो बार बार आता है या बड़ी आयु में Prostate वृद्धि हो तो रात को बार बार मूत्र आता है) मूत्र स्वातन्त्र-Incontinence- तो नहीं अर्थात् अनिच्छा से तो मूत्र नहीं निकलजाता। मूत्र द्वार-Sphincter- पर नाड़ी नियन्त्रण की निर्बलता का सूचक लक्षण है अर्थात् Parasympathetic नाड़ी सूत्रों की उत्तेजना से या Pyramidal सूत्रों के रुग्ण हो जाने के कारण मूत्राशय के केन्द्र Bladder Centre पर जो सुषुम्ना काण्ड के S_3 प्रदेश में विद्यमान है हमारे नियंत्रण के शिथिल हो जाने से यह शिकायत हो सकती है।

मूत्र :-

साधारणत: ~~(८ से १० तक)~~ दिन रात में मूत्र १$\frac{१}{२}$ सेर या १५०० सी०सी० के लगभग आता है। इसका बड़ा भाग दिन (८ से १० बजे तक) में आता है कुल का $\frac{१}{५}$ भाग ही रात (१० से ८ बजे तक) को आता है। उसका रंग फीका पीला सा होता है। वह पारदर्शक और लगभग निर्गन्ध होता है। रंग अधिक फीका हो तो मधुमेह या बड़ी आयु हो तो जीर्ण वृक्क रोग का सन्देह करना

चाहिये। अधिक पीला हो तो कामला का, रंग अधिक गहरा हो तो ज्वर का या हृदय की निर्बलता (Failure) का सन्देह करना चाहिये। मूत्र की Specific Gravity १.०१५ से १.०२५ तक होती है। दिन के मूत्र की १.०१८, रात के मूत्र की १.०२६ होती है। उसका यह भार उसके अन्दर विद्यमान Urea और Chlorides के ऊपर निर्भर है। ज्यादा भोजन पान करने और शीतकाल में इसकी मात्रा कुछ बढ़ जाती है। मूत्र में विद्यमान Acid Sodium Phosphate के कारण वह अम्लीय या Acidic होता है। Protein भोजन अधिक किया जाय तो उनसे Sulphuric तथा Phosphoric Acid की उत्पत्ति के कारण उसकी Acidity बढ़ती है। सब्जियों और फलों का अधिक सेवन किया जाय तो उसकी Acidity घटती है। मूत्र अधिक अम्लीय हो तो मधुमेह, रक्ताम्लता Acidosis या जीर्ण वृक्क रोग का सन्देह करना चाहिये।

जब गुर्दे अपना काम भली प्रकार नहीं करते, उनका बल घट जाता है तो जीर्ण वृक्क रोग में, मूत्र रात को अधिक आने लगता है। (Nocturia) और फीके रंग का होता है और उसकी Specific Gravity घटी हुई होती है।

मधुमेह में (भोजन बाद के ३ घन्टे का मूत्र लेना चाहिये) मूत्र की मात्रा अधिक होती है और उसकी Specific Gravity बढ़ी हुई होती है। Acute Nephritis में तथा हृदय दौर्बल्य (Heart Failure) में मूत्र की मात्रा कम हो जाती है, क्योंकि Urea, Chlorides आदि की निकासी कम हो जाती है।

मूत्र का रंग गहरा हरा हो तो उसकी Acidity बढ़ी हुई समझनी चाहिये, रंग भुरा पीला हो तो Bile (पित्त) की अधिकता समझनी चाहिये। उसका रंग संगतरी हो जैसे ज्वरों में होता है तो Urobilin तथा मूत्र का रंग काला (Smoky) हो तो उसमें रक्त समझना चाहिये।

प्रतिदिन मूत्र में आने वाले पदार्थ :-

(१) लवण (Chlorides) दिन रात में १०-१५ ग्राम आता है। जीर्ण वृक्क रोग हो, शरीर में कहीं शोथ हो, ज्वर हो, वमन, अतिसार का रोग हो तो इसकी मात्रा घट जाती है।

(२) Sulphates मूत्र में दैनिक $1\frac{1}{2}$,३ ग्राम मात्रा में आते हैं। शरीर में प्रोटीन की टूट फूट (Metabolism) के बढ़ जाने पर इसकी मात्रा बढ़ जाती है।

(३) Calcium की मात्रा दैनिक २०० मिलि० होती है। Tetany में घट जाती है।

(४) Urea प्रतिदिन २०-३० ग्राम निकलता है। ज्वरों में तथा जब शरीर में टूट फूट की क्रिया अधिक हो, इसकी मात्रा बढ़ जाती है। इसकी मात्रा घट जाती है यकृद्रोग तथा वृक्क रोग में।

निक्षेप :-

मूत्र आने के बाद ठंडा होने पर धुंधला सा हो जाय और मूत्र

अम्लीय हो तो उसमें Sodium,Potassium या Ammonium के Urates मिले हुये समझने चाहिये । ये मूत्र के रंग को पकड़ लेते हैं + इसलिये इनके कारण मूत्र में ईंट के चूरे जैसा निक्षेप आ जाता है । परन्तु मूत्र को गर्म करने से ये घुल जाते हैं । ये तीव्र ज्वरों मे आते हैं ।

मूत्र के शीशी में पड़े रहने पर नीचे एक कली सी बैठ जाये तो उसे Mucus समझना चाहिये । इस कली के ऊपर यदि एक हिलती हुई श्वेत से निक्षेप की तह बैठ जाये और मूत्र अम्लीय हो तो इसे Calcium, Ammonium आदि का Oxalates का निक्षेप समझना चाहिये । मन्दाग्नि के कारण अन्न के भली प्रकार न पचने से Oxalic Acid की उत्पत्ति होती है । Calcium के साथ मिलने से यह Cal.Oxalate हो जाता है । मूत्र के नीचे गहरे भूरे रंग के दाने दाने बैठ जायें जिन्हें Cayenne Papper Deposit कहते हैं तो इसे Uric Acid समझना चाहिये । मूत्र में अन्दर से ही मट्ठे या चूने जैसा निक्षेप आये तो उसे Phosphates समझना चाहिये । यह निक्षेप थोड़ा सा १० प्रतिशतक Acetic Acid मिलने से घुल जाता है । मूत्र में मवाद (Pus) का निक्षेप हो तो वह इसमें नहीं घुलता ।

मूत्र में Albumin की जो गर्भावस्था की विष के कारण वृक्को के रुग्ण होने पर आने लगता है जांच करने के लिये टैस्ट ट्यूब के $\frac{3}{4}$ भाग को मूत्र से भर के उसके ऊपर के हिस्से को ज्वाला पर रख कर उबालें । यदि वह उबला हुआ मूत्र सफेद हो जाय और १० प्रतिशतक Acetic Acid से साफ न हो तो Albumin का निश्चय करना चाहिये ।

मूत्र में खाण्ड की जांच करने के लिये एक टैस्ट ट्यूब में Fehling's Solution A.B. दोनों बराबर बराबर मिलाकर एक इंच तक भर लें । दूसरी टैस्ट ट्यूब में उतना ही मूत्र भर कर दोनों को पृथक् पृथक् उबाल लें । फिर मूत्र को Solution में डाल दें अथवा ५ सी०सी० Benedict's Solution में ८ बून्द मूत्र मिला के दो मिनट उबाल लें और ठण्डा होने के लिये रख दें । अब यदि इनमें लाल पीला निक्षेप तुरन्त आ जाय तो दो या उससे कुछ ज्यादा प्रतिशत खाण्ड का अनुमान करें । पीला सा निक्षेप आये तो एक से दो प्रतिशत तक का अनुमान करें । यदि हरा सा निक्षेप आये तो $\frac{1}{2}$ से १ प्रतिशत तक का अनुमान करें । मूत्र केवल हरा सा धुंधला हो जाय तो •१ से •५ प्रतिशत तक का अनुमान करें ।

मूत्र के घटक तत्त्व :-

लवण	...	१० ग्राम	१ हजार सी०सी० में,	
फौस्फोरस	...	२ ग्राम	,,	,,
सोडियम	...	४ ग्राम	,,	,,
पोटासियम	...	२ ग्राम	,,	,,
कैल्सियम	...	•२ ग्राम	,,	,,

गन्धक	...	२ ग्राम	१ हजार सी०सी० में,	
यूरिया	...	३० ग्राम	,,	,,
यूरिक एसिड	...	·६ ग्राम	,,	,,
अमोनिया	...	·६ ग्राम	,,	,,
Creatinine	...	१·५ ग्राम	,,	,,
Diastase	...	30 Wohlgemuth Units में से कम २४ घन्टे में ।		

नाड़ी संस्थान (Nervous System) की परीक्षा :-

प्रश्न :-

रोगी में अपस्मार का दौरा होता हो तो पूछना चाहिये कि पहला दौरा किस आयु में आया, फिर कितनी कितनी देर बाद दौरे होते रहे। दौरे जागते में होते हैं या नींद के समय। दौरे से पहले कोई पूर्व रूप (Aura) होते हैं तो वे क्या होते हैं। क्या दौरे में मूर्च्छा ही होती है या आक्षेप भी होते हैं। दौरे के समय जीभ तो नहीं कटती। मुंह में फाग तो नहीं आती।

यदि न्यूनाधिक पक्षाघात हो तो पूछें कि पहले फिरंग रोग या रक्त भार के रोग तो नहीं हुये। पक्षाघात सहसा हुआ या मिनटों और घंटों में हुआ या महीनों में हुआ। पहला Haemorrhage से दूसरा Thrombosis से और तीसरा Tumour से होता है।

किसी शाखा में दर्द होता हो तो पूछना चाहिये कि वह कहां होता है और किस दिशा में होता है और किस चीज से बढ़ता है। हर समय होता है या दौरों में होता है। दर्द के प्रदेश में सुप्ति (Numbness) झनझनाहट (Tingling) की प्रतीति तो नहीं होती। जैसा कि Neuritis में होती है।

सिर में दर्द हो तो वह किस प्रकार का है। (रक्त भार वृद्धि में Throbbing किस्म का होता है) और किस स्थान पर होता है। और किस समय प्रारम्भ होता है। लेट जाने पर रात को विशेष हो तो अर्बुद Tumour का सन्देह करें। Uraemia या मूत्र विष जनित शिर:शूल में तन्द्रालुता, श्वास कृच्छ्रता, दृष्टि सम्बन्धी लक्षण होते हैं। हर समय रहता है। या दौरों में होता है। (Migraine के दौरे होते हैं) दृष्टि पर उसका क्या असर होता है। सिर दबा हुआ या घुटा हुआ अथवा भरा हुआ तो नहीं प्रतीत होता। उन्निद्रता या व्याकुलता के लक्षण तो नहीं रहते। पहले आधे सिर में शुरु में तो नहीं होता जीर्ण वृक्क रोग या रात्रि मेह तो नहीं होता। सिर को नीचे झुकाने (जैसा Cerebral Tumour में होता है) से तो नहीं होता।

मूर्छा हो तो वह गहरी और दीर्घ है या उथली और स्वल्पकाल स्थायी है। उसमें आक्षेप तो नहीं होते। मधुमेह या वृक्क रोग तो नहीं हैं। या कोई मूर्छा कारक औषधि तो नहीं ली है यह जानना चाहिये।

मस्तिष्क परीक्षा :- (Examination of the Brain).

मस्तिष्क के स्वाभाविक गुणों जैसे बुद्धि, स्मृति, एकाग्रता, निद्रा आदि की जांच करनी चाहिये। रोगी को देश, काल का ज्ञान है या नहीं। उसमें किसी प्रकार का भावावेश तो नहीं, अर्थात् वह भयभीत, चिन्तित, दु:खी या विषण्ण तो नहीं। उसे किसी प्रकार का भ्रम (Delusion) या मिथ्या विश्वास

(Hallucination) तो नहीं । उसे अपने शरीर की ठीक ठीक सुध बुध है या नहीं, क्या वह वास्तविक दुनियां में रहता है या काल्पनिक दुनिया में । उसकी वाणी कैसी है । इसकी भी जांच करें ।

मूक रोग :- (Aphasia):-

जो शब्द हम कान के द्वारा सुनते हैं उसकी प्रतीति हमें मस्तिष्क के Superior Temporal Gyrus में विद्यमान केन्द्र (Sensory) में होती है । लिखे हुये शब्द पढ़ने पर उसकी प्रतीति हमें मस्तिष्क के Angular Gyrus में विद्यमान केन्द्र (Sensory) में होती है । इन दोनों स्थानों से प्रतीत हुये शब्दों की उच्चारण का केन्द्र (Motor) स्थान हमारे बायें मस्तिष्क गोलार्ध के दूसरे तीसरे Frontal Convolutions के पिछले भागों में स्थित है जिसे (Broca's Centre या Motor Centre) अर्थात् इसी स्थान से हमारे कण्ठ और जिव्हा को हिलाने वाले चेष्टासूत्र आरम्भ होते हैं तथा इसी स्थान पर वे सेल उपस्थित हैं । जिनसे हाथों की लिखने वाली मांस पेशियों को चेष्टा सूत्र जाते हैं ।

मस्तिष्क में विद्यमान वाणी के इस केन्द्र को Left Middle Cerebral Artery की Cortex को जाने वाली शाखाओं से रक्त पहुंचता है । इन शाखाओं में अवरोध या Thrombosis हो जाने से या इनमें स्तम्भ (Angio-spasm) हो जाने से जैसे कि Migraine अपस्मार, Uraemia आदि में होता है Aphasia (मूक रोग) का रोग हो जाता है । मस्तिष्क में Disseminated Sclerosis के हो जाने से बोलना बन्द हो जाता है या बन्द सा हो जाता है । इस उपर्युक्त केन्द्र में रोग होने से जो बोलना बन्द होता है उसे भी Motor Aphasia कहते हैं ।

यदि केवल सुने हुये शब्द को या लिखे हुये शब्द की हमें प्रतीति न हो अर्थात् या तो Word Deafness हो या Word Blindness हो तो इन दोनों को Sensory Aphasia कहते हैं । बहुधा तो ये सभी केन्द्र न्यूनाधिक रूप से रुग्ण होते हैं । इसलिये Mixed Aphasia अधिक सुलभ रोग है ।

Dysarthria:- (उच्चारण वैषम्य):- जब वाणी के केन्द्र में तो रोग न हो परन्तु उच्चारण करने वाली मांस पेशियों में रोग के कारण शब्दोच्चारण विषम हो जाय तो उसे Dysarthria कहते हैं । Extra Pyramidal संस्थान में रोग के होने से शब्दोच्चारण करने वाली मांस पेशियों में स्तंभ Rigidity का लक्षण रहता है । जिससे एक बड़ी आयु का व्यक्ति शब्द तोड़ तोड़ कर बोलने लगता है । मस्तिष्क में Disseminated Sclerosis का रोग हो तो भी बोलने में विषमता (Scanning) हो जाती है ।

पुतली (Pupil) की परीक्षा :-

अंधेरे में अर्थात् दोनों पलकों को बन्द कर देने से पुतली फैल जाती है । फिर पलकों को खोल कर प्रकाश डालने से वह संकुचित हो जाती है ।

(Rigidity)

इसे Light Reflex कहते हैं। इसी प्रकार जब कोई दूरस्थ पदार्थ पर देखता है तो पुतली फैल जाती है। फिर तुरन्त ही यदि उसे आंख के समाने हमारी अंगुलियों पर देखने को कहा जाय तो पुतली संकुचित हो जाती है + इसे Convergent या Accommodation Reflex कहते हैं।

द्वितीय नाड़ी तथा तृतीय नाड़ी के रोग में Light Reflex लुप्त हो जाता है। Accommodation Reflex डिफ्थीरिया रोग में लुप्त हो सकता है। पुतलियां फैली हुई हों तो Glaucoma या Retinitis/(Optiatrophy)/ का सन्देह करें। Neurasthenia, Myopia गहरी मूर्छा (Haemorrhage-Thrombosis-Tumour) Hyperthyroidism या Atropine के प्रयोग का भी सन्देह करना चाहिये। पुतलियां संकुचित हों तो Iritis मस्तिष्क तथा सुषुम्ना में फिरंग रोग(Cerebrospinal Syphilis/ तथा Opium विष का सन्देह करें। Light Reflex लुप्त हो, Accommodation Reflex हो तो यह Argyle Robertson Pupil, Tabes का द्योतक होता है।

मांस पेशियों की परीक्षा :-

साधारणत: मांसपेशियों में स्तब्धता (Spasticity) नहीं होती परन्तु जब Upper Motor Neurons में रोग हो तो एक तरफ के आधे अंग में स्तब्धता दीखने लगती है। बाहु, धड़ पर संकुचित तथा Pronated रहती हैं। जंघा फैली हुई और अकड़ी हुई रहती है।

दूसरा Parkinsonism रोग में मांस पेशियों में स्तब्धता (Spasticity) रहती है। Extra Pyramidal संस्थान के कारण शरीर की मांसपेशियों में एक बल Tone हर समय कायम रहता है ताकि Pyramidal चेष्टा सूत्रों के द्वारा जब हम कोई ऐच्छिक चेष्टा करना चाहें तो वह सुगमता से हो सके। इसी संस्थान के कारण ही हमारे चलते फिरते समय होने वाली स्वयं चेष्टायें भी सम्पन्न होती हैं। इस संस्थान में विशेषत: Globus Pallidus के सैलों तथा सूत्रों में Cerebral Arteriosclerosis,Hypertension अथवा फिरंग रोग की विष के कारण क्षीणता (Degen.) के हो जाने से भी शरीर की मांस पेशियों में स्तब्धता का लक्षण हो जाता है।

इस रोग में शाखाओं की अपेक्षा चेहरे, ग्रीवा तथा धड़ की मांस पेशियों में स्तब्धता(Rigidity) अधिक होती है। जब शाखाओं में स्तब्धता होती है तो वह भी उनकी ऊपर ऊपर की मांसपेशियों में, सिरों की मांसपेशियों की अपेक्षा अधिक होती है। इसीलिये इस रोग में रोगी का चेहरा भाव हीन सा दीखता कण्ठ, जिव्हा, ओष्ठ आदि में स्तब्धता होने से वाणी में लचक नहीं रहती। पलकों तथा चबाने की मांस पेशियों में भी स्वाभाविक लचक नहीं रहती। ग्रीवा तथा धड़ में लचकीलापन न रहने से सिर कुछ आगे को झुका हुआ, बाहें, धड़ के साथ लगी हुई और कोहणी पर आधी संकुचित रहती हैं। बाहों के समान टांगों में भी स्वाभाविक

लचक नहीं रहती तथा गोडों पर कुछ कुछ संकुचित दीखती हैं । कठोरता के कारण रोगी का शरीर कुछ कुछ प्लास्टर का बना हुआ सा कुछ लगता है । इसीलिये उसकी सर्वं चेष्टायें मन्द हो जाती हैं । हाथों तथा अंगुलियों की मांस पेशियों में स्तब्धता के कारण लिखने में कुछ कठिनता होती है ।

तीसरा Disseminated Sclerosis के कारण भी अंगों,में, विशेषत: निम्न शाखाओं में स्तब्धता उत्पन्न हो जाती है । एक टांग में या दोनों टांगों में स्तब्धता तथा गुरुता रहती है तथा Pyramidal सूत्रों में रोग के समान ही इसमें रोगी की एक या दोनों जंघाओं में उरुस्तम्भ (Paralegia) का लक्षण होता है । जिस निम्न शाखा में यह रोग होता है उधार(Tendon Reflexes) बढ़े हुये होते हैं ।

मांस पेशियों में कम्प (Tremor) का लक्षण भी होता है । जिसका प्रधान कारण Parkinsonism का रोग है । अर्थात् कईयों में इस रोग के कारण स्तब्धता के लक्षण के स्थान पर कम्प का लक्षण होता है जो पहले एक हाथ की अंगुलियों तथा अंगूठों में प्रारम्भ होता है, जब हाथ आराम में होता है तब यह कम्प अधिक होता है । निद्रावस्था में नहीं होता । अंगुलियों तथा अंगूठे में ऐसा कम्प होता है जैसे मानो रोगी गोली बना रहा हो । फिर हाथ के बाद अग्रबाहु में क्रमिक Pronation - Supination का कम्प होने लगता है किसी प्रकार के मानसिक आवेश में यह कम्प और अधिक होने लगता है । यह कम्प का लक्षण निचले जबड़े में भी हो सकता है या सिर में भी हो सकता है । सर्वांग कम्प (Athetosis) का रोग कईयों में बालपन से ही होता है । इस रोग में चेहरे, ग्रीवा, बाहुओं, टांगों आदि की मांसपेशियों में बड़ी बड़ी विकृति चेष्टायें होती हैं जो विक्षोभावस्था में अधिक होती हैं । पेशियों में स्तब्धता भी कुछ रहती है । यह रोग Corpus Striatum में क्षीणता के कारण होता है ।

Disseminated Sclerosis रोग के कारण भी हाथ में कम्प हो सकता है जो किसी सूक्ष्म काम के करते समय विशेष होता है अर्थात् प्याले को मुख पर लाते समय अधिक होता है । इसलिये जिसे Intention Tremor भी कहते हैं । वृद्धावस्था से पहले होने वाला कम्प इसी कारण होता है ।

मांस में उद्वेष्टन-Cramps- भी होते हैं जो बड़ी आयु में हों और रात को सोते समय हों तो जीर्ण वृक्क रोग (Uraemia) का सन्देह करें । चलते समय हों तो Arterio Sclerosis का। वृद्धावस्था से पहले रात को हों तो मधुमेह अथवा Peripheral Neuritis का सन्देह करें ।

मांस शोष :-

एक मध्यमायु के पुरुष की बाहुओं की मांसपेशियों में शोष का लक्षण हो, बाद में टांगों की मांस पेशियों में भी शोष का तथा कम्प Fibrillation का लक्षण हो तो Pyramidal नाड़ी सूत्रों तथा Anterior - Horn.

Corneal reflex — एक तार से Cornea को छुएं तो दोनों आंखें बन्द हो जाती हैं। इसमें स्पर्श संज्ञा पञ्चम नाडी से अपर जाती Pons तक जाती और चेष्टा सप्तम नाडी से आती है। दीर्घ मूर्छा में तथा मृत्यु की निकटता में यह प्रतिक्षेप नष्ट हो जाता है।

Pupillary reflex — एक आंख पर Pencil torch से प्रकाश डालें तो उसकी पुतली सुकड़ती है इसमें संज्ञा Optic Nerve से Midbrain में जाती है और वहां से चेष्टा oculomotor नाड़ी के द्वारा आती है। Optic N. में रोग हो तो यह प्रतिक्षेप कम होता या नष्ट हो जाता है।

कोष्ठ की मध्य रेखा में

$T_6 - T_7$

कोष्ठ की मध्य रेखा में

$T_8 - T_9$

कोष्ठ की मध्य रेखा में

$T_{11} - T_{12}$

इन प्रतिक्षेपों में स्पर्श की प्रतीति सुषुम्ना काण्ड से अपर मस्तिष्क के संज्ञा क्षेत्र या Parietal area में जाती है और वहां से Motor centres में जाती है जहां से चेष्टा Pyramidal पथों द्वारा नीचे आती है अतः अपर Pyramidal मार्ग में रोग होता यह प्रतिक्षेप नहीं होता है या कम होता है। इस अवस्था में Lower abdominal reflex, upper से पहले लुप्त होता है। Parkinsonism में ये प्रतिक्षेप बढ़े हुए होते हैं

lerosis.
सैलों की क्षीणता से उत्पन्न होने वाले रोग का जिसे Amyotrophic Lateral Sc/ या जिसे वर्धमान मांस शोष Progressive Muscular Atrophy कहते हैं अनुमान करना चाहिये ।

संज्ञा सम्बन्धी परीक्षा :-

स्पर्श ज्ञान कैसा है इसकी परीक्षा रुई का स्पर्श करके की जाती है। अति स्पर्श (Hyperaesthesia) की परीक्षा पिन के नोक की हलकी सी रगड़ (Pindragging) से की जाती है । ठीक संज्ञा वाले प्रदेश से अधिक संज्ञा वाले प्रदेश पर पिन को ले जाना चाहिये । वेदना के अभाव या Analgesia की परीक्षा प्रबलता से दबा के की जाती है । ताप ज्ञान की प्रतीति के लिये गर्म या ठण्डेजल से भरी टेस्ट ट्यूब उस स्थान पर लगाई जाती है ।

विषम अति स्पर्श या Paraesthesia :- हाथों या पैरों में दोनों ओर हो तो Peripheral Nerves के रोग की आशंका करनी चाहिये अर्थात् इन नाड़ियों को उचित मात्रा में रक्त या Oxygen नहीं मिल रहा । दोनों पैरों के नीचे की त्वचा सोई हुई हो या चलते समय पैरों के नीचे रुई की ~~[illegible]~~ गदी सी लगी हुई प्रतीत होती हो तो Tabes Dorsalis अर्थात् Cord या सुषुम्ना के Posterior Column में फिरंग जनित विष के दुष्प्रभाव का अनुमान करना चाहिये । इसी प्रकार यदि पिण्डलियों को या एड़ियों को जोर से दबाने से भी दर्द न हो तो भी इसी रोग का अनुमान करना चाहिये ।

दोनों ओर या एक ओर गोड़े से नीचे टांग अथवा पैर में सहसा क्षाणिक तीव्र शूल के वेग हों तो भी Tabes का सन्देह करना चाहिये । बाहु में Ulnar Nerve और टांग में Anterior Tibial Nerve में दर्द हो या हाथ पांव की त्वचा में स्पर्श की न्यूनता हो तो महा कुष्ठ का सन्देह करना चाहिये ।

प्रतिक्षिप्त चेष्टायें :-(Reflexes):-

Superficial Reflexes त्वचा सम्बन्धी प्रतिक्षिप्त चेष्टायें :-
---

(१) Epigasteric Reflex:- निचली छाती की त्वचा पर थोड़ी सी टकोर देने से Epigastrium में गढ़ा पड़ जाता है ।

(२) Upper Abdominal Reflex :- पसलियों से नीचे की त्वचा पर हलकी सी टकोर देने से उधार की Rectus मांस पेशी संकुचित हो जाती है ।

(३) Lower Abdominal Reflex:-Poupart Ligament के ऊपर त्वचा को जरा टकोरने से उधार की Oliquus Abdominis मांस पेशी संकुचित हो जाती है ।

(४) Plantar Reflex : का वर्णन ऊपर (नाड़ी रोगों में) हो चुका है ।

(५) Deep Reflexes:- Knee Jerk का वर्णन भी ऊपर नाड़ी रोगों में हो चुका है ।

एवं अग्रबाहु संकुचित हो जाती है

Biceps reflex में संज्ञा Musculocutaneous Nerve के द्वारा जाती तथा चेष्टा इसी के द्वारा आती है C5 – C6 segments में से अन्दर जाती तथा आती है। C5 से ऊपर upper motor Neurone में रोग हो तो यह Reflex तीव्रता से होता है। C5 – C6 segment में रोग हो तो यह प्रतिक्षेप लुप्त होता है।

(जिसमें अग्रबाहु प्रसारित हो जाती है)

triceps reflex लुप्त हो जाता है जैसे cervical spondylosis में।

(६) Biceps तथा Triceps Jerks :- कोहनी को ६० डिग्री पर संकुचित करके अग्रबाहु को Semi Pronation की अवस्था में रख कर इसकी Tendon को टकोरें तो इस मांस में संकोच उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार Triceps की Tendon को टकोरें तो वह मांस पेशी संकुचित हो जाती है।

Superficial Reflexes न हों या बहुत कम हों तो उस तरफ के Pyramidal मार्ग में रोग का अनुमान करना चाहिये। Disseminated Sclerosis में भी ये लुप्त होते हैं। Planter Reflex उलटा हो अर्थात् Flexor न हो के Extensor या ऊपर की तरफ हो तो भी Pyramidal मार्ग में रोग का अनुमान करना चाहिये।

गहरे प्रतिक्षेप अर्थात् Tendon Reflexes बढ़े हुये हों तो Upper Motor Neurones में अर्थात् या तो Motor Cortex में रोग है या वहां से प्रारम्भ होकर सुषुम्ना काण्ड के Anterior Horn Cells में समाप्त होने वाले सूत्रों में रोग का अनुमान करना चाहिये। Reflex Arch के उत्तेजित होने पर जैसे Strychnine विष में या Tetanus (स्तम्भ रोग) में भी ये प्रतिक्षेप अत्यधिक बढ़े हुये होते हैं।

यदि गहरे प्रतिक्षेप Tendon Reflexes लुप्त हों तो Lower Afferent या Efferent Neurones में या Reflex Arch से सम्बन्धित सुषुम्नागत सेलों में रोग का अनुमान करें। इसीलिये Tabes Dorsalis में जिसमें Pasterior Roots रोग ग्रस्त होते हैं तथा Polyneuritis में जिसमें प्राय: निचले Motor Roots तथा Sensory सूत्र रुग्ण होते हैं गहरे प्रतिक्षेप लुप्त हो जाते हैं।

आयुर्वेदिक रोग परीक्षा विधि

दोष - दूष्य - निदान, रोगी का-रोग का ज्ञानविधि

शरीर जिन छोटे छोटे सेलों और सूत्रों से बना हुआ है आयुर्वेदानुसार वे पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश इन पांच तत्वों से बने हुये हैं । दूसरे शब्दों में ये सेल्स तथा सूत्र, पृथ्वी अप् तत्वों अर्थात् कफ धातु से, तेजस्तत्व अर्थात् पित्त धातु से, और वायु आकाश तत्वों अर्थात् वायु धातु से, बने हुये हैं । इनमें से पृथ्वी अप् तत्वों या कफ धातु (प्रोटीन्स तथा पार्थिव द्रव्यों) के कारण शरीर में वृद्धिकर्म या जल कर्म होता है । तेजस्तत्व या पित्त धातु (Combustive Element) से शरीर में पक्ति कर्म या अग्नि कर्म होता है तथा वायु और आकाश तत्वों या वायु धातु (Dynamic Element) के कारण शरीर में गति कर्म या वायु कर्म होता है । वायु तत्व न केवल शरीर की गति का ही कारण है पर उसके शरीर की जीवनी शक्ति होने के कारण वह कफ के वृद्धि कर्म और पित्त के पक्ति कर्म में भी सहायक होता है । इस प्रकार आयुर्वेद में शरीर के प्रत्येक अवयव को त्रिधातु जनित कहा जाता है ।

सम अवस्था या प्राकृतिक अवस्था में ये शरीर के प्रत्येक अवयव के स्वास्थ्य का कारण हैं । विषम या वैकृतिक अवस्था में ये उनके रोग का कारण हो जाते हैं । शरीर को दूषित करके रोगोत्पादक होने के कारण इन्हें दोष भी कहते हैं ।

(१) रोग परीक्षा करते समय आयुर्वेदानुसार सबसे पहले यह देखा जाता है कि शरीर में कौन सा दोष बढ़ा हुआ है । जिस दोष के लक्षण शरीर में दिखाई देते हों उसे बढ़ा हुआ समझा जाता है ।

जब शरीर में कफ का वृद्धि कर्म बढ़ा हुआ हो,(अर्थात् पित्त का पक्ति कर्म मन्द हुआ हो) परिणामत: शरीर में गुरुता, मन्दता, शिथिलता, मंदोष्णता, निद्राधिक्यता आदि के लक्षण हों तो शरीर में कफ दोष की वृद्धि का अनुमान कर लिया जाता है ।

जब शरीर में पित्त का अग्नि कर्म या पक्ति कर्म बढ़ा हुआ हो (एवं कफ का वृद्धि कर्म घटा हुआ हो) अर्थात् शरीर में उष्णता, दाह, शीतावभासता एवं निर्बलता के लक्षण हों तो शरीर में पित्त दोष की वृद्धि है, ऐसा अनुमान कर लिया जाता है ।

जब शरीर का प्राण तत्व या गति तत्व या वायु तत्व कुछ घटा हुआ हो (एवं कफ का वृद्धि कर्म और पित्त का पक्ति कर्म मन्द हो) तब शरीर में चलता, विक्षोभशीलता, अति प्रतीति (Hyperaesthesia) के लक्षण हो जाते हैं जिनको देखकर वायु दोष की वृद्धि का अनुमान किया जाता है ।

जब शरीर का यही प्राणतत्व या वायु धातु और अधिक

घट जाता है एवं प्राण शक्ति की न्यूनता से कफ का वृद्धि कर्म और पित्त का पक्ति कर्म भी मन्द हो जाते हैं तो शरीर में लघुता-रुक्षता, मन्दोष्णता, श्यामता आदि क्षीणता सूचक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं जिनको देखकर शरीर में वातक्षय का अनुमान कर लिया जाता है ।

इस प्रकार रोग विनिश्चय में सबसे पहले इस बात की जांच की जाती है कि शरीर में वायु, पित्त, कफ में से कौन से धातु की वृद्धि या क्षीणता हुई है।

(२) दूसरा यह जांच की जाती है कि इस वायु, पित्त या कफ की वृद्धि या क्षीणता ने किस अवयव या अंग में स्थान संश्रय किया है और इससे विशेषतः कौन सा अवयव दूषित हुआ है । दूसरे शब्दों में दूष्य कौन सा है । इस प्रकार का अन्न स्रोतस्, श्वास स्रोतस्, मूत्र स्रोतस्, रक्त स्रोतस्, ज्ञान वह स्रोतस्, चेष्टावह स्रोतस्, मस्तिष्क, त्वचा, श्लेष्म कला आदि में से कौन सा अवयव विशेष दूषित हुआ है और उसमें किस प्रकार की विकृति (Pathological Change) हुई है इसका पता लगाना चाहिये ।

अर्थात् इनमें से किसी अवयव में मन्दोष्मा, श्वेतिमा, या हलकी लालिमा या कण्डू या श्वेत स्राव युक्त शोथ (Defensive Inflammation) हो तो उसे कफ दोष की वृद्धि और पित्तक्षय का दूष्य स्थान समझना चाहिये । किसी अवयव में राग, पाक, ज्वर, आदि से युक्त शोथ (Suppurative Inflammation) हो तो उसे पित्त दोष की वृद्धि और कफ क्षय का दूष्य स्थान समझना चाहिये । इनमें से किसी अवयव में चलता, विक्षोभशीलता, स्तम्भ, संकोच, तोद, भेद, शूल आदि (Asthenic) लक्षण बढ़े हुये हों तो वहां पर वायु दोष की वृद्धि तथा कफ और पित्त क्षय का दूष्य स्थान समझना चाहिये । तथा यदि इनमें से किसी स्थान पर लघुता (Atrophy), रुक्षता, खरता, कठोरता, शुष्कता, श्यावारुणवर्णता के लक्षण बढ़े हुये हों तो उसे वायुक्षय का दूष्य स्थान समझना चाहिये । इस प्रकार शरीर में जो विकृति हुई है उसकी परीक्षा को विकृति परीक्षा कह सकते हैं ।

परीक्षा :-

शरीर में कौन सा दोष बढ़ा तथा कौन सा घटा है इसकी परीक्षा त्वचा, नेत्र, मूत्र, मल, रस, नाड़ी आदि को देखकर भी की जाती है ।

(१) त्वचा :- आर्द्र, शीत, श्वेत या समवर्ण हो तो कफ दोष, उष्ण स्वेद युक्त तथा पीत वर्ण हो तो पित्त दोष और शीत, श्यावारुणवर्ण, रुक्ष हो तो वायु दोष की वृद्धि का अनुमान करना चाहिये ।

(२) नेत्र :- आर्द्र, स्निग्ध, श्वेत वर्ण हों तो कफ दोष, पीत या रक्त वर्ण हों तो पित्त दोष, रुक्ष श्यावारुणवर्ण, अन्दर धंसे हुये हों तो वायु दोष की वृद्धि का सूचक होते हैं ।

(३) मूत्र :- मात्रा में अधिक, स्निग्ध, धुंधले से निक्षेप से युक्त हो तो शरीर में कफ दोष की, पीत रक्त वर्ण, पूययुक्त, उष्ण हो तो शरीर

पित्त दोष तथा जल की तरह का हो, रुक्षा हो, श्यावारुणवर्ण हो तो शरीर में वायु दोष की वृद्धि का सूचक होता है ।

(४) मल :- ढ़ीला, मात्रा में अधिक, पिच्छिल, श्वेत वर्ण, दुर्गन्धित हो तो कफ दोष, पीत वर्ण, द्रव रुप, ऊष्ण हो तो पित्त दोष और शुष्क, कठोर, मात्रा में न्यून, श्याम वर्ण हो तो शरीर में वायु दोष की वृद्धि का अनुमान करें ।

(५) रस :- मुख में मधुर, लवण रस हो तो कफ दोष, कटु, तिक्त, अम्ल रस हो तो पित्त दोष, कषाय रस हो तो वायु दोष की वृद्धि का अनुमान करें।

(६) नाड़ी :- की गति मन्द हो, मन्द वेग हो, स्थिर हो अर्थात् उसकी स्थिरता स्पष्ट हो इसलिये जो देखने में कुक्कुट गति या मयूर गति हो, विशेष उष्ण न हो तो शरीर में कफ दोष की वृद्धि, यदि नाड़ी गति तीव्र हो अर्थात् वेगवति हो अधिक रक्त से भरी होने से दीर्घा हो, बलवती हो (Systolic Pressure वाली हो) अर्थात् मन्डूक गति हो, विशेष उष्ण हो तोउसे पित्त दोष की वृद्धि, तथा यदि नाड़ी चपला हो अर्थात् कुछ तीव्र गति हो, अस्थिर व निर्बला हो अर्थात् उसकी स्थिरता व बल कम हों तो शरीर में वायु दोष की वृद्धि का अनुमान करना चाहिये । इसी प्रकार यदि धामनियों में Tension के कम होने से Dicrotic Wave कुछ स्पष्ट हो, एवं वह सर्प गति प्रतीत होने लगे तो उससे भी शरीर में वायु दोष की वृद्धि का अनुमान किया जाता है ।

(३) तीसरा रोगी वायु पित्त या कफ किस प्रकृति का है उसकी आयु, उसका देश, उसका आहार, व्यवहार, मानसिक अवस्था क्या है इस ज्ञान से भी उसमें किस दोष की वृद्धि होकर रोग हुआ है यह जाना जा सकता है ।

(क) अर्थात् यदि किसी की प्रकृति कफ की हो, उसके शरीर में स्वभावत: ही पक्ति कर्म की अपेक्षा वृद्धि कर्म प्रबल हो, शरीर में स्वभावत: गुरुता, स्निग्धता, शीतता, अग्नि मन्दता के लक्षण हों तो उसमें कफ दोष की वृद्धि से रोग हुआ है, ऐसी कल्पना करनी चाहिये ।

यदि रोगी छोटी आयु का हो, शीत काल, वसन्त काल, पूर्वाह्ण या रात्रि या भोजन के तुरन्त बाद रोग बढ़ता हो तो भी रोग को कफ दोष की वृद्धि से हुआ समझना चाहिये ।

यदि रोग अधिक आहार लेने से या गुरु, स्निग्ध, शीत,गुण मधुर, अम्ल, लवण, रस आहार से और बैठे रहने या व्यायाम न करने से बढ़ा हो तो उसे भी कफ दोष की वृद्धि से हुआ समझना चाहिये ।

रोगी का देश, आनूप अर्थात् जल बहुल हो तो भी कफ दोष की वृद्धि से उसे रोग हुआ है, ऐसा समझना चाहिये ।

(ख) जो व्यक्ति जन्म से ही पित्त प्रकृति का हो अर्थात् जिसमें वृद्धि की अपेक्षा

पक्ति कर्म प्रबल हो तो उसमें पित्त दोष की वृद्धि का ही अनुमान करना चाहिये ।

यदि रोगी मध्यमायु का हो, मध्यान्ह, मध्य-रात्रि या भोजन के हजम होते समय या ग्रीष्म काल या शरत काल में अर्थात् पित्त प्रधान काल में रोग हो तो भी उसे पित्त दोष जनित समझना चाहिये ।

इसी प्रकार ऊष्ण गुण आहार पान करने वाले तथा कटु, अम्ल, लवण रस, आहार लेने वाले अति श्रम-शील व्यक्ति में रोग हो तो उसे पित्त दोष जनित समझना चाहिये । रोगी का देश रुखा, सूखा और गर्म हो तो भी उसमें पित्त दोष की अधिकता का अनुमान करना चाहिये ।

(ग) यदि रोगी जन्म से ही वायु प्रकृति का हो अर्थात् उसकी प्राण शक्ति या जीवनी शक्ति या प्रतिरोधक शक्ति स्वभावत: ही कम हो, शरीर व मन में चलता का गुण विशेष हो, शीत आहार, विहार, अनुकूल न हों, अग्नि विषम हो तो उसमें रोग वायु दोष की अधिकता से हुआ है ऐसा समझना चाहिये ।

इसी प्रकार यदि आयु बढ़ी हो, सांयकाल या रात्रि के पिछले भाग में या भोजन के जीर्ण हो जाने के बाद या वर्षाकाल में अर्थात् वायु के काल में रोग हो तो उसे भी वायु दोष की वृद्धि से उत्पन्न हुआ समझना चाहिये ।

इसी प्रकार शीत रुक्ष गुण अपौष्टिक आहार, अति शारीरिक श्रम, अति क्रोध, चिन्ता, भय, शोक, (mental stress) आदि से वायु प्रकोपक आहार विहार से रोग हो तो उसे भी वायु दोष जनित समझना चाहिये।

इसी प्रकार आनूपदेश में रोग हो तो उसे कफ या वायु दोष की अधिकता से उत्पन्न हुआ समझना चाहिये ।

इसीलिये चरक ने जो यह कहा है कि रोगी में (१) दोष कौन सा बढ़ा है, (२) कौन सा दूष्य है तथा (३) दोष के बढ़ने और दूष्य की विकृति के कारण क्या क्या हुए हैं, यह भली प्रकार पता लगाकर इनके विपरीत औषध आहार विहार का सेवन कराया जाय तो रोग अवश्य ही ठीक हो जाता है ठीक ही है ।

(च०चि० ३०-२६३)

इसके अतिरिक्त चरक ने (विमान।अ० ८-६४) कहा है कि रोगी की प्रकृति, रोग से उत्पन्न विकृति और यह विकृति किन कारणों से हुई इसे निदान ज्ञान के अतिरिक्त रोगी के बल की भी परीक्षा करनी चाहिये अर्थात् उसकी आहार शक्ति कितनी है, व्यायाम शक्ति कितनी है, सहन शक्ति या सत्व शक्ति कितनी है, स्वाभाविक शरीर सम्पत्ति कितनी है, इस प्रकार रोगी की बल परीक्षा भी करनी चाहिये तथा उसके रोग के बलाबल की भी जांच करनी चाहिये ।

रक्त सम्बन्धी परीक्षा :-

रक्त के संघटक तत्व :-

(१) कैल्सियम	---	९ - ११ मिलि०प्रति १०० सी०सी०में,		Hypoparathyroidism C. Nephritis, Osteimalacia, Rickets ग्रहणी रोग में घट जाता है।
(२) लवण(Chlorides)	---	५६० - ६२०	,, ,,	Nephritis, Congestive Heart - Failure - में बढ़ जाता है।
(३) पोटासियम	---	१५ - २०	,, ,,	Uraemia, Hyperparathyroidism, Addison's Disease में बढ़ जाता है। Acidosis मूत्रल औषधियों के प्रयोग, Corticosteroids के अति प्रयोग, Ulcerative colitis में घट जाता है।
(४) सोडियम	---	३२५ - ३५०	,, ,,	C.C.Failure तथा Acute Subacute Nephritis में बढ़ जाता है। मधुमेह, जीर्ण वृक्क रोग में घट जाता है।
(५) खाण्ड	---	८० - १२०	,, ,,	मधुमेह में बढ़ जाती है
(६) Cholesterol	---	१५० - ३००	,, ,,	रक्तभार वृद्धि में, स्थूलता में, Diabetes में, जीर्ण वृक्क रोगों में, गर्भावस्था में बढ़ जाते हैं।
Phospholipids	---	६० - ३५०	,, ,,	जीर्ण वृक्क रोगों में बढ़ जाते हैं।
Fatty Acids	---	३०० - ४५०	,, ,,	भोजन बाद, मधुमेह जनित, Acidosis - जीर्ण वृक्क रोग में बढ़ जाते हैं।
(७) प्रोटीन	---	६·३ - ७·८	,, ,,	Nephritis - Cirrhosis, Malnutrition में घट जाता है।

(८) अलब्युमिन	---	३ - ४ ग्राम प्रति १०० सी०सी० में,	इनकी कमी वृक्क रोगों, यकृद्वृद्धि Cirrhosis अतिसार तथा Malnutrition. में होती है
(९) ग्लोब्युलिन	---	१.५ - ३ ,, ,,	
(१०) फाइब्रिनोजन	---	.३ ,, ,,	यकृद्रोग में घट जाता है। Infections तथा गर्भावस्था में बढ़ जाता है
(११) फोस्फोरस	---	३ - ४ ,, ,,	Hypoparathyroidism. में बढ़ जाता, Hyperparathyroidism, Osteomalacia ग्रहणी रोग में घट जाता है।
(१२) यूरिया	---	२० - ४० मिलिग्राम ,,	वृक्क रोगोंमें बढ़ जाता है।
(१३) यूरिक एसिड	---	३ - ४ ,, ,,	गठिया या Gout-Rheumotoid Arthritis वृक्क रोग, हृदय दौर्बल्य में बढ़ जाता है ।
(१४) बिलिरुबिन	---	.३ - .८ ,, ,,	नार्मल Icteric Index १-५ यूनिट्स यकृद्रोग जनित कामला में बढ़ जाता जीर्ण वृक्क रोग में घट जाता है, कैन्सर प्रोस्टेट में बढ़ जाता है ।
(१५) Phosphatase-Acid.	---	.५ - २ ,, ,,	King Armstrong Units.
(१६) Alkaline-Phosphatase.	---	१.५ - ४ ,, ,,	यह बढ़ जाता है Osteomalacia, Rickets, Hyperparathyroidism, Hyperpituitarism Fibrocystic Osteitis. जीर्ण वृक्क रोग में घट जाता है ।
(१७) रक्त कण	---	४.५ - ५.५ मिलियन प्रतिक्यूबिक मिलीमीटर।	
(१८) श्वेत कण	---	४ हजार- ८ हजार । ,, ,,	
(१९) Neutrophils	---	५० - ७० प्र०श०	Pyogenic Infections में बढ़ जाते हैं ।
(२०) Lymphocycles	---	२० - ४० प्र०श०	Whooping Cough, Measles. मसूरिका, जीर्ण क्षयरोग फिरंग रोग, Rickets, C.Appendicitis में बढ़ जाते, Acute

Amilase की मात्रा रक्त में 70—180 Somogyi units हैं। (यह मात्रा तो प्रति मिलि. [illegible]) मात्रा बढ़े तो समझना चाहिए Pancreas में सूजन है।

Lipase सीरम में १ मिलिलि में ·०६ युनिट होता है। Pancreas के शोथ में रक्त में १·५ युनिट तक हो जाता है।

Pepsin — Pepsenogen सीरम में भी पाया जाता है साधारणतः सीरम में 461 युनिट्स पुरुषों में 354 युनिट्स स्त्रियों में। Pernicious Anaemia में यह बहुत कम हो जाता है Duodenal Ulcer में बढ़ जाता है।

(Phosphate splitting enzymes) (glucose splitting enzyme) जो अस्थि-आन्त्र में (विशेष है)

(1) Alkaline Phosphatase — अस्थियों में osteoblasts अर्थात् अस्थिजनक सेलों से उत्पन्न होकर रक्त के प्लाज्मा में आता है। यह रक्त सीरम में प्रति १०० मिलिलि में 2-4 ~~Bondo~~ Bodansky units है (अर्थात् 4—13 King Armstrong units प्रति १०० मिलिलि। एक King Armstrong unit = ·4 Bodansky unit)

जब अस्थि निर्माण हो रहा हो अर्थात् osteoid tissue बन रहा हो तब सीरम में इसकी वृद्धि होती है। 13 वर्ष की आयु तक सीरम में १०० मिलिलि में 11—20 K.A. युनिट्स इसके होते हैं युवक में १०० मिलिलि में 3-13 K.A. युनिट्स इसके होते हैं

Rickets — Fracture — Metastatic cancer — obstructive Jaundice में यह मात्रा बढ़ती है

(2) Acid Phosphatase — यह क्षारीय माध्यम में नहीं पर एसिड माध्यम में कार्य करता है। अर्थात PH 8—10 में नहीं पर PH 5 तक कार्य करता है। रक्त के सीरम में 1-4 यूनिट १०० मिलिलि प्लाज्मा में। प्रोस्टेट कैन्सर में रक्त में बहुत बढ़ जाता है। प्रोस्टेट वृद्धि में वैसे नहीं बढ़ता। यह Enzyme प्रोस्टेट के अवयव में विशेष उत्पन्न होता है। रक्तकणों से भी उत्पन्न होता है

glycolytic enzymes

(1) Phosphoglucomutase :— जो Glucose-1-Phosphate को glucose-6-Phosphate में परिवर्तित करता। Plasma में 16—84 युनिट होता है।

(2) Phosphohexo isomerase (Isomerase) — जो glucose-6-Phosphate को Fructose-6-Phosphate में बदलता है। प्लाज्मा में 8—40 युनिट्स प्रति मिलिलि होता है। जब स्तनग्रन्थि में कैन्सर होता है या प्रोस्टेट में कैन्सर होता है तब यह glycolytic enzyme प्लाज्मा में बढ़ जाता है।

			Infection तथा Exhaustion में घट जाते हैं।
(२१) Monocytes	---	४ - ८ प्र०श०	Malaria, क्षय रोग में बढ़ जाते हैं।
(२२) Eosinophils	---	$\frac{1}{2}$ - ३ प्र०श०	Allergy से होने वाले रोगों, Amaebiasis, Eczema, Psoriasis, Prurigo, Migraine, आन्त्र कृमि होने पर बढ़ जाते हैं।
(२३) रक्त का Sedimentation Rate.	---	१ घन्टे में १-१० मि०मि०	इसकी वृद्धि Fibrinogen, Globulin की वृद्धि पर तथा Albumin की घटती पर निर्भर है। वृद्धि, क्षय रोग Inflammations, जीर्ण वृक्क रोग, Cirrhosis, Acute Rheumatic Carditis, Cardiac Infarction, Acute Rheumatism, कैन्सर, Shock में होती है। Allergy में Sedimentation Rate मन्द हो जाता है।
(२४) Bleeding-Time.	---	१ - ५ मिनट	
(२५) Coagulation Time.	---	५ - १० मिनट	
(२६) Prothrombin Time.	---	१२ सैकण्ड।	

(3) Aldolase — ~~यह~~ Fructose-6-phosphate को Fructose-1-6-diphosphate में बदलता जाता है कि Aldolase के द्वारा triose phosphate के 2 molecules में टूट जाता है। ~~Aldb~~ Aldolase प्रतिमिलि लिटर सीरम में 28—70 यूनिट पाया जाता है। प्रोस्टेट कैन्सर में तथा दूसरे कैन्सरों में भी सीरम में इसकी मात्रा बढ़ जाती है।

Myopathies अर्थात् मांसरोगों में भी जैसे हृदय के अन्दर हुए घात में अर्थात् Myocardial infarction में भी इस रक्त के अन्दर इसकी मात्रा बढ़ती है। Muscular dystrophy मांस शोष रोगों में भी इसकी मात्रा बढ़ती है।

Lactic dehydrogenase — एक Dehydrogenase है जो शरीर के अनेक अवयवों में रहता है तथा Pyruvate को Lactate में परिवर्तित करता है। साधारणतः रक्त के सीरम में इसकी मात्रा 200—680 यूनिट्स प्रति मिलिलि० होती है (Wroblewski) जब गुर्दों में रोग होता है तो इसकी मात्रा 500 युनिट्स के लगभग तक सीरम में पाई जाती है। हृदय में Infarction हो गया हो तो इसकी मात्रा रक्त के सीरम में ~~2 दिन के बाद परिणाम आगे न बढ़े तो~~ तीसरे चौथे दिन 500—1500 यूनिट्स तक पाई जाती है।

भार ज्ञान ग्रेन व मिलिग्राम में :-

१ ग्रेन	---	६० मिलिग्राम ।
$\frac{१}{२}$ ग्रेन	---	३० मिलिग्राम ।
$\frac{१}{४}$ ग्रेन	---	१५ मिलिग्राम ।
$\frac{१}{१२}$ ग्रेन	---	५ मिलिग्राम ।
$\frac{१}{६०}$ ग्रेन	---	१ मिलिग्राम ।

भार ज्ञान औंस व सी०सी० में :-

१ औंस	---	३० सी०सी० ।
१५ बून्द	---	१ सी०सी० ।
१ ड्राम	---	४ सी०सी० ।
२० औंस (१ पा०)	---	६०० सी०सी० ।
१$\frac{३}{४}$ पाइंट	---	१ लिटर ।

भार ज्ञान औंस व ग्राम में :-

१ औंस	---	३० ग्राम ।
१ ड्राम	---	४ ग्राम ।
१५ ग्रेन	---	१ ग्राम ।
७$\frac{१}{२}$ ग्रेन	---	$\frac{१}{२}$ ग्राम ।
५ ग्रेन	---	·३२ ग्राम ।
३ ग्रेन	---	·२ ग्राम ।
२ ग्रेन	---	·१३ ग्राम ।

========

(3) Ala

Fre

Al

Cu

Mu

Lact

-१८४-१०४६



(3) Ala

-mebic-
, Peri-

forming-

ain

inf-

rhoids,
otic
rdiac
, acute

on Rate

